राष्ट्रीय संगोष्ठी

'नाथ पंथ और भक्ति आन्दोलन'

कार्तिक, कृष्ण, पंचमी-अष्टमी:२०६७

(२८,२९,३० अक्टूबर:२०१०)

आमंत्रण

आयोजक:

महाराणा प्रताप महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

एवं

भारतीय इतिहास संकलन समिति, गोरक्षप्रान्त

नाथपंथ और भक्ति आन्दोलन

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथजी महाराज ने कहा कि नाथपंथ की प्राचीनता अविवेच्य है। नाथपंथ की सनातन जीवनधारा आदि काल से प्रवाहित होती आ रही है। 'नाथ' शब्द का प्रयोग वैदिक काल से ही होता आ रहा है। परमयोगाचार्य महायोगी गुरु गोरखनाथजी धार्मिक-सांस्कृतिक संधि काल की महान यौगिक विभूति थे। ऋग्वेद में 'नाथ' शब्द का प्रयोग सृष्टि कर्ता, ज्ञाता तथा सृष्टि के निमित्त रूप में किया गया है। महायोगी गुरु गोरखनाथ की **'गोरखवाणी'** में **'नाथ'** शब्द दो अर्थों में लिया गया है। पहला रचयिता के रूप में तथा दूसरा परमतत्त्व के रूप में। नाथ मार्ग योग प्रधान मार्ग है। नाथपंथ के अंतर्गत वे सभी अनुयायी जन आते हैं जो नाथ संप्रदाय की मान्यताओं के प्रति अपनी आस्था एवं श्रद्धा समर्पित करते हुए अपना जीवनयापन करते हैं। इसमें संत एवं गृहस्थ सभी समाहित हैं। नाथ योग मत अपने उद्‌भव काल में अवतारवाद का समर्थक नहीं था। नाथ योगी सर्वनिरपेक्ष अलक्ष्य सत्ता को ही अपने अन्तस में लक्षित करता था। परन्तु कालान्तर में न केवल गोरखनाथ को आदिनाथ शिव का अवतार समझा जाने लगा वरन् नाथयोग के साधना केन्द्रों एवं सिद्ध पीठों में भगवान् शिव के साथ अन्य देव मूर्तियों की प्रतिष्ठा और उनकी उपासना की परम्परा भी चल पड़ी। संकीर्ण साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को त्यागकर नाथ योगी **'शिव'** और **'विष्णु'** तथा **'हर'** एवं **'हरि'** में कोई भेद नहीं मानते थे। वैसे तो नाथपंथ की परम्परागत मान्यता के अनुसार महायोगी गुरु गोरखनाथ सर्वकालिक एवं अयोनिज हैं। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से महायोगी गुरु गोरखनाथ का आविर्भाव काल सातवीं से तेरहवीं शताब्दी के बीच ठहरता है। भारत में शंकराचार्य के बाद महायोगी गुरु गोरखनाथ जैसा प्रभावशाली और युग प्रवर्तक व्यक्ति दूसरा नहीं हुआ। गोरखनाथजी के आविर्भाव काल में वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, शैव मत, पाशुपत, कापालिक, कश्मीरी शैव, वीर शैव एवं रसेश्वर मत आदि अनेक धर्म एवं मत थे। शाक्तमत का एक साधन पंथ वाममार्ग था। इन सभी पंथों या मतों में कालान्तर में काफी विकृतियाँ आ गयी थीं। वैष्णव धर्म का विकास **'भक्ति मार्ग'** के रूप में हुआ। परन्तु हमारे इस भक्ति मार्ग की तत्कालीन रूढ़िवादी धार्मिक मान्यताओं, राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के कारण दिशा और दशा दोनों ही विकृत हो गयी थी। ऐसे समय में महायोगी गुरु गोरखनाथजी की सारग्राही दृष्टि ने तत्कालीन सभी साधना, सम्प्रदायों के सार्थक एवं उपयोगी अंगों एवं तत्त्वों को संग्रहीभूत कर एक ऐसे योगपरक भक्ति-मार्ग का प्रवर्तन किया जिसमें साधना की पवित्रता, चरित्र की परमोच्चता, संयमपूर्ण जीवन की शक्तिमत्ता एवं आडम्बर रहित जीवन की महिमा का उद्‌घोष था। अंधविश्वासों, कुरीतियों, पाखण्डों एवं शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने के कारण समाज में तिरस्कृत एवं निम्न जाति के लोगों को भी नाथपंथ एवं समाज में सम्मानपूर्ण स्थान दिलाने के कारण, भक्ति एवं आस्था का मार्ग जन-साधारण के लिए प्रशस्त करने के कारण, लोक भाषा, लोक जीवन एवं लोक संस्कृति से जुड़े होने के कारण लोक चेतना का जो ज्वार गोरखनाथजी द्वारा उद्‌दीप्त हुआ उसमें कंचन-कामिनी के प्रति अनुरक्त साधक एवं पोंगापंथी भक्त बह गये। सभी पाखण्डों एवं धार्मिक कुरीतियों पर नाथपंथ के परमाचार्य महायोगी गुरु गोरखनाथजी ने बड़े ही निर्ममतापूर्वक अपनी वाणी एवं आचरण से प्रहार किया। इस प्रकार नाथपंथ ने भक्ति को योग, साधना एवं ध्यान की शुचिता में डुबोकर एक नये भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात किया। नाथ-पंथ का योग तत्त्वज्ञान प्राप्ति का एक अनिवार्य साधन है।

भगवान् राम नाथपंथी योगियों के लिए त्याज्य नहीं थे वरन् आराध्य थे। नाथपंथ में भगवान् राम के नाम को मात्र महत्त्व नहीं दिया गया है अपितु 'राम' और उनके अनन्य भक्त महान पराक्रमी 'वीर हनुमान' के

नाम पर **'रामपंथ'** एवं **'ध्वजपंथ'** नाम से दो पृथक् पंथों की स्थापना भी की गयी है। हमें यह कहते हुए बड़े ही गर्व की अनुभूति हो रही है कि महायोगी गुरु गोरखनाथजी की त्रेतायुग की तपस्थली वर्तमान गोरखनाथ मन्दिर नाथ सम्प्रदाय के 'रामपंथ' का ही है और इसके देव स्वयं विष्णु हैं। वस्तुतः विष्णु भी शिव के ही स्वरूप हैं। रामचरितमानस के रचयिता महात्मा तुलसीदासजी ने **''गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग''** कहकर योग की निन्दा नहीं अपितु इसकी महत्ता को ही प्रतिपादित किया है। गोस्वामीजी ने अपनी पुस्तक 'रामचरितमानस' तथा 'विनय पत्रिका' आदि में अनेक स्थानों पर योग की महिमा का उल्लेख किया है। यही नहीं अपने आराध्य प्रभु श्रीराम को **''बड़योगी''** यानी बड़ा योगी की संज्ञा से भी विभूषित किया है। यही नहीं महायोगी गुरु गोरखनाथजी ने अपनी पुस्तक **'गोरखवाणी'** में 'राजा राम' को मान्यता देते हुए कह डाला कि **'मन रे राजा राम होइ ले नृदंद'**। भक्ति भी योग ही है। **'ध्यान'** योग साधना का केन्द्र बिन्दु है जो सगुण एवं निर्गुण दोनों ही भक्ति साधनाओं की उपासना का मूलाधार है। मूलतः भक्ति एवं योग का भेद मात्र दृष्टि का भेद है। परमतत्त्व की प्राप्ति के लिए ज्ञान, कर्म एवं अहैतुकी प्रेम की भक्ति तीनों ही आवश्यक है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने योग के तात्त्विक स्वरूप का कहीं विरोध नहीं किया है।

सम्पूर्ण भारतवर्ष में दसवीं शताब्दी के बाद विकसित होने वाली सभी भक्ति साधनाएँ नाथयोग से किसी न किसी प्रकार प्रभावित रही हैं। भारतीय साधना के इतिहास में महायोगी गुरु गोरक्षनाथजी अत्यन्त ही महिमामय, अलौकिक, प्रतिभा सम्पन्न, युगद्रष्टा, लोक-कल्याणरत तथा अपूर्व संघटन शक्ति सम्पन्न महापुरुष हुए हैं जिन्होंने साधना के एक अत्यन्त निर्मल मार्ग का प्रवर्तन किया और लोक मानस में शिव रूप में प्रतिष्ठित हुए।

इसके पहले सन् १९८१ में मेरे द्वारा **'मध्यकालीन भारतीय साहित्य एवं नाथ योग'** पर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया था जिसमें सम्पूर्ण भारतवर्ष से नाथ-पंथ के अनेक विद्वानों ने अपनी सहभागिता निभायी थी। उक्त संगोष्ठी में नाथयोग-साहित्य दर्शनपरक विश्वकोष के प्रकाशन का निर्णय लिया गया था परन्तु यह कार्य अभी तक पूर्ण नहीं हो पाया है। वर्तमान समय में जब हमारी धार्मिक आस्था पर लगातार कुठाराघात हो रहा है ऐसे आयोजनों एवं संगोष्ठियों की प्रासंगिकता एवं उपयोगिता और भी बढ़ जाती है। मैं **'नाथपंथ और भक्ति आन्दोलन'** विषयक इस त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के आयोजन हेतु गोरक्षपीठ गोरखपुर के उत्तराधिकारी एवं सांसद योगी आदित्यनाथ तथा अन्य सम्बद्ध लोगों को साधुवाद देता हूँ एवं इस संगोष्ठी की सफलता की कामना करता हूँ।

-महंत अवेद्यनाथ

महायोगी गोरखनाथ एवं नाथ संतों का संत-साहित्य और समाज पर प्रभाव

-योगी आदित्यनाथ*

मरौ वे जोगी मरौ, मरण है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी गोरख मरि मीठा।।

भारतीय धर्म-संस्कृति की साधना पद्धतियों में नाथपंथ और इसके प्रवर्तक महायोगी गुरु गोरक्षनाथजी तथा अन्य नाथ सिद्धों का प्रमुख स्थान है। महायोगी गोरखनाथ ने योग-साधना के सैद्धान्तिक पक्ष को व्यावहारिक रूप प्रदान कर जन सामान्य तक पहुँचाया। समग्र भारत ही नहीं, अपितु सीमावर्ती देशों को अपनी योग-विभूति से तथा चरित्र, चिन्तन एवं व्यवहार से बड़ी गहराई तक प्रभावित करने वाले अग्रगण्य महायोगी गोरक्षनाथजी ही थे। धार्मिक मानव उन्हें साक्षात् शिव स्वरूप ही स्वीकार करता है। सच्चा आध्यात्मिक जीवन जीने की प्रेरणा देने वाला महायोगी गोरखनाथ का जीवन चरित्र प्राचीन काल से ही प्रचलित किंवदंतियों, कथाओं, चमत्कारों, विश्वासों तथा उनकी रचनाओं के माध्यम से प्राप्त होता है।

भारतीय धर्म-साधक-सम्प्रदायों की पतनोन्मुख तथा विकृत स्थिति के समय वामाचारी तांत्रिक साधना जोरों पर थी। पंचमकारों का खुलकर प्रयोग हो रहा था। भोगवाद अपनी चरम सीमा पर था। साधक सम्प्रदायों में आचार सम्बन्धी नियमों का पालन नहीं हो पा रहा था। वामाचार-पंचमकार के परम परिशुद्ध और साधनाहितकारी तत्त्वों का दुरुपयोग हो रहा था। ऐसे संकटापन्न समय में महायोगी गोरखनाथ ने भारतीय संस्कृति, धर्म, समाज एवं साधकों के उद्धार हेतु साधना की पवित्रता, संयमपूर्ण जीवन की शक्तिमत्ता, चारित्रिक श्रेष्ठता और आडम्बर रहित जीवन का उद्घोष किया। उनकी संस्कृत और हिन्दी रचनाओं से प्रमाणित होता है कि प्राचीन तांत्रिक साधना-परम्परा और उसके अवस्थागत क्रमिक विकास के महत्त्व की पुनर्प्रतिष्ठा का सम्पूर्ण श्रेय महायोगी गोरखनाथजी को ही दिया जा सकता है। **"धन जीवन की करें न आस, चित्त न राखै कामिनी पास"** जैसे कथनों से स्पष्ट होता है कि कंचन एवं कामिनी के प्रति निर्लोभी एवं निर्मोही पवित्र मानसिकता उनके व्यक्तित्व के विशिष्ट अंग हैं। विभिन्न प्रकार की सिद्धियों के विषय में उनका अभिमत था कि सिद्धियों का प्रयोग सर्वजनहिताय होना ही श्रेयस्कर है। महायोगी गोरखनाथजी के अन्तःकरण में सबके प्रति समभाव था। उनके आचार सम्बन्धी उपदेश योग के सैद्धान्तिक अष्टांग योग की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक थे। उनके व्यक्तित्व की सभी विशिष्टताएँ सार्वभौम चारित्रिक आदर्श की सर्वमान्य विशेषताएँ हैं। इन सद्प्रवृत्तियों एवं आदर्शों की उस समय सर्वत्र और सर्वाधिक उपेक्षा हो रही थी। इस संदर्भ में महायोगी गोरखनाथ और नाथ-पंथ के चारित्रिक उच्चादर्श के योगदान की सामाजिक उपयोगिता एवं महत्ता को नकारा नहीं जा सकता है। हिन्दी साहित्य के कतिपय विद्वानों ने महायोगी गोरखनाथ एवं नाथ-पंथ की रचनाओं का उल्लेख करते हुए बाह्य पूजा, तीर्थाटन, जातिपाति इत्यादि के प्रति उपेक्षा बुद्धि का प्रचार रहस्यदर्शी बनकर शास्त्रज्ञ विद्वानों का तिरस्कार करने और मनमाने रूप द्वारा अटपटी वानी में पहेलियाँ बुझाना, घट के भीतर चक्र, नदियाँ, शून्यदेश आदि मानकर साधना का प्रचार, नाद-विन्दु, सुरति-निरति जैसे शब्दों, उपदेशों की विशेषताओं का वर्णन तो किया है किन्तु महायोगी गोरखनाथ एवं नाथ-पंथ की चारित्रिक संयम और सदाचार की विशेषता पर

*उत्तराधिकारी गोरक्षपीठ, संसद सदस्य (लोक सभा), गोरखपुर

ध्यान नहीं दिया। सम्पूर्ण संत-साहित्य के चिन्तन, मनन से यह स्पष्ट होता है कि गोरखनाथजी ने अपने सम्प्रदाय से ही नहीं, इतर सम्प्रदायों से भी आचार एवं संयम को लेकर लोहा लिया। तभी तो इन्द्रिय निग्रह तथा **"यहु मन सकती, यहु मन सीव, यहु मन पंच तत्त्व का जीव। यह मन लै जै उन्मन रहै, तीनि लोक की बाता कहै।"** के रूप में सर्वान्तर्यामी आगत अनागत विन्दु स्वरूप में तथा संयम एवं सदाचार के आदर्श के रूप में महायोगी गोरखनाथ के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा संभव हो सकी।

यद्यपि वैदिक साधना के साथ समानान्तर रूप से प्रवाहित तांत्रिक साधना का समान रूप से शैव, शाक्तों, जैनों, वैष्णवों आदि पर प्रभाव पड़ा, तथापि उनसे सदाचार के नियमों का पालन यथाविधि नहीं हो सका। इसलिए महायोगी गोरखनाथजी को कहना पड़ा-

अजपा जपै सुनि मन धरै, पांचो इन्द्री निग्रह करै।
ब्रह्म अगनि में होमै काया, तास महादेव बन्दै पाया।।

चतुर्दिक फैले हुए अनाचार को देखकर महायोगी गोरखनाथजी ने ब्रह्मचर्य प्रधान योगयुक्त ज्ञान का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। भक्ति आन्दोलन से पूर्व सबसे शक्तिशाली धार्मिक आन्दोलन महायोगी गोरखनाथजी का योगमार्ग ही था। भारत की कोई ऐसी भाषा नहीं जिसमें महायोगी गोरखनाथजी से सम्बन्धित साहित्य न पाया जाता हो। इसीलिए तो तुलसीदासजी बोल पड़े-**"गोरख जगायो जोगु, भगति भगायो लोगु।"** भक्ति को भगाने वाला संबोधन से तात्पर्य कदाचित साकारोपासना से है। गुरु गोरखनाथजी की भक्ति मुख्य रूप से केवल गुरु तक ही सीमित है। महायोगी गोरखनाथ ने भक्ति का कहीं भी विरोध नहीं किया है। तुलसीदासजी के कथन से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि यदि महायोगी गोरखनाथ न होते तो संत साहित्य नहीं होता। गुरु गोरखनाथ और नाथपंथ की योग-साधना एवं क्रिया-कलापों की प्रतिक्रिया ही सभी निर्गुण एवं सगुणमार्गी संतों के साहित्य में स्पष्ट होती है। उस प्रतिक्रिया के प्रवाह में प्राचीन जातिवाद, वर्णाश्रम धर्म, अस्पृश्यता, ऊँच-नीच के सभी भेदभाव मिट गये। योग मार्ग के गूढ़ एवं गुह्य सिद्धान्तों को साकार करके जन भाषा में व्यक्त एवं प्रचलित करना गोरखनाथजी का समाज के प्रति सबसे बड़ा योगदान था। महायोगी गोरखनाथ के विराट व्यक्तित्व के कारण ही अनेक भारतीय तथा अभारतीय सम्प्रदाय नाथपंथ में अंतर्भुक्त हो गये। गोरखनाथजी के योग द्वारा सिद्धि की प्राप्ति संयमित जीवन और प्राणायाम से परिपक्व देह की प्राप्ति, अन्त में नादावस्था की स्थिति में दिव्य अनुभूति और सबसे समत्व का भाव इत्यादि विशिष्टताओं ने तत्कालीन समाज एवं साधना पद्धतियों को अपने में लपेट लिया। तभी तो मलिक मोहम्मद जायसी ने पद्मावत में महायोगी गोरखनाथजी की महिमा के बारे में कहा है कि-

बिन गुरु पंथ न पाइये, भूले सो जो भेंट।
जोगी सिद्ध होई तब, जब गोरख सौ भेंट।।

तथा कबीरदासजी ने भी महायोगी गोरखनाथजी की अमरता का वर्णन इस प्रकार किया है-

कांमणि अंग विरकत भया, रत भया हरि नाहि।
साषी गोरखनाथ ज्यूं, अमर भये कलि माहि।।

आगे कबीर कहते हैं-

मन गोरख मन गोविन्दो मन ही ओघड़ होय।
जो मन राखे जतन कर तो आपै करता होय।। (कबीर ग्रंथावली)

कबीरदासजी ने यहाँ मन को गुरु गोरखनाथ और गोविन्द के समान बताया है। जो मन को वश में कर ले

तो अपने आप ही महायोगी गोरखनाथ और गोविन्द के समान हो जाता है। इसी प्रकार बीजक में संत कबीरदासजी कहते हैं-

गोरख रसिया योग के .....कोरो भांजी देह।

अर्थात् महायोगी गोरखनाथजी तो योग के रसिया हैं। कबीर की दृष्टि में महायोगी गोरखनाथजी सदा योग में निमग्न रहने वाले योगी हैं।

संत कबीर के अनगिनत साखियों, सबदियों में योगपरक रहस्य पदों का दिग्दर्शन है जिसमें प्राणायाम, षट्चक्र भेदन, कुण्डलिनी जागरण, सहज समाधि, उनमनी स्थिति इत्यादि योग-साधना के अन्तरंग रहस्यों का लोक जीवन के प्रतीकों के माध्यम से लोक भाषा में ही आकर्षण एवं सजीव वर्णन किया है। नाथ संतों की गुरुभक्ति को कबीर ने सर्वात्मना स्वीकार किया और कहा कि-

सब धरती कागद करूं, लेखनी सब बनराय।
सात समुद्र की मसि करूं, गुरु गुन लिखा न जाय।।

और

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय।।

वस्तुतः समग्र हिन्दी साहित्य की मूल चेतना समृद्ध लोकानुभव है। महायोगी गोरखनाथ एवं नाथ संतों का ज्ञान वह किसी शास्त्र ही नहीं, पुराण का ही नहीं, अपितु वह सहज लोकानुभव और लोक व्यवहार का था जिसे वे जी रहे थे, भोग रहे थे। क्योंकि ब्रह्मचर्य, आसन, प्राणायाम, मुद्राबन्ध, सिद्धावस्था के विविध अनुभव ऐसा कुछ भी नहीं, जिसके व्यवहार को छोड़कर शास्त्र का आधार लेना पड़े। उनका लोकानुभव यज्ञ और पण्डित, ऊँच-नीच इत्यादि की विभाजक रेखा नहीं खींचता वह मनुष्य मात्र के लिए है। लोक जीवन की विविधता का अनुभव सही मार्ग की पहचान इस लोक को संकट से उबारने तथा स्वानुभूत सत्य को जन-जन तक सम्प्रेषित करना ही महायोगी गोरखनाथजी और नाथ संतों का मुख्य ध्येय था।

महायोगी गोरखनाथ तथा अन्य नाथ संतों की योग-साधना का प्रभाव हिन्दी साहित्य के साथ-साथ मराठी साहित्य, तेलुगु, उड़िया, बंगाली, तमिल, कन्नड़, तिब्बती, चीनी साहित्य पर भी पड़ा। बंगला काव्य 'गोरक्ष विजय' में महायोगी गोरक्षनाथजी के अयोनिज प्राकट्य पर प्रकाश पड़ता है। तमिल के तिरूमूलर १८ सिद्धों में प्रथम सिद्ध कवि हैं। यह ईसा से ६००० वर्ष पूर्व हुए थे। तिरूमूलर की परम्परा में महासिद्ध कोरवकर ही महायोगी गोरक्षनाथ थे। कन्नड़-कर्नाटक की परम्परा में मंजूनाथ ही महायोगी गोरखनाथ के रूप में पूजनीय हैं। भारद्वाज संहिता में कहा गया है- **मंजुनाथो हि गोरक्षं मंजुनाथ मवैक्षत।**

इसी प्रकार मलयालम साहित्य में भी नाथपंथ का प्रभाव स्पष्ट है। उड़िया भाषा में तो नाथ साहित्य प्रचुर मात्रा में है। 'शिशुवेद' महायोगी गोरक्षनाथ प्रणीत ग्रन्थ उड़िया में है। चन्द्रशेखरनाथ प्रणीत 'गोरक्ष संहिता' १६वीं सदी की रचना है। उड़ीसा की लोक परम्पराओं में महायोगी गुरु गोरक्षनाथ और योगीराज मत्स्येन्द्रनाथ का उल्लेख आता है। उड़ीसा के मल्लिकानाथ राजा थे जो महायोगी गुरु गोरक्षनाथजी से दीक्षित हुए और उनके शिष्य बने। मराठी साहित्य में ज्ञानदेवजी अपनी ज्ञानेश्वरी में कहते हैं कि 'मुझे यह ज्ञान परम्परागत प्राप्त हुआ। गुरु गोरक्षनाथजी से यह ज्ञान गहनीनाथजी को तथा गहनीनाथजी से निवृत्तिनाथ और निवृत्तिनाथ से मुझे प्राप्त हुआ।' इसी प्रकार तेलुगु के संत बेमन, वीर ब्रह्म आदि ने भी गुरु गोरक्षनाथजी के भावों का अनुकरण किया।

उत्तरांचल का लोक साहित्य भी महायोगी गुरु गोरखनाथ तथा नाथ-संतों की गाथाओं के लिए बड़ा समृद्ध

है। यहाँ न केवल स्थानीय मन्दिर एवं पर्वत शिखरों के नाम भी नाथ सिद्धों के नाम से प्रसिद्ध हैं अपितु बद्रीनाथ, केदारनाथ आदि के साथ नाथ शब्द नाथ-संतों के प्रभाव के कारण ही जुड़े। गढ़वाली लोकगीतों में गोरखनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, सत्यनाथ, चौरंगीनाथ, नृसिंहनाथ, बटुकनाथ आदि नाथ संतों का बार-बार उल्लेख मिलता है जो तंत्र-मंत्र, जादू-टोना, झाड़-फूँक के लिए प्रसिद्ध थे। लोकगाथाओं में यहाँ जागर गाथाएँ प्रसिद्ध हैं और उन सिद्धों के अवतरण के लिए गाये जाते हैं।

गुरु गोरखनाथजी तथा नाथ संतों का प्रभाव संत साहित्य के साथ-साथ तत्कालीन राजवंशों पर भी था। ऐसे बहुत से प्रमाण मिलते हैं जहाँ नाथ संतों ने राजा के अयोग्य तथा निरंकुश होने पर राज्य की बागडोर अपने हाथों में ली। बहुत से ऐसे स्थान भी हैं जो नाथ संतों के आशीर्वाद से प्राप्त हुए। मेवाड़ का राजवंश बप्पा रावल को गुरु गोरखनाथजी से ही प्राप्त हुआ था। उज्जैन के राजा भर्तृहरि, बंगाल के राजा गोपीचन्द्र और उनकी माता मैनावती, नेपाल के दांग रियासत के युवराज रत्न परीक्षित आदि तमाम राजाओं ने महायोगी गोरक्षनाथजी का शि यत्व ग्रहण किया। नेपाल का शाह राजवंश महायोगी गुरु गोरखनाथजी के आशीर्वाद से ही एकीकृत नेपाल की स्थापना में सफल हुआ।

महायोगी गोरखनाथजी द्वारा निर्दिष्ट तत्त्वविचार तथा योग-साधना को आज भी उसी रूप में समझा जा सकता है। नाथ सम्प्रदाय को महायोगी गुरु गोरखनाथजी ने भारतीय मनोवृत्ति के अनुकूल बनाया। उसमें जहाँ एक ओर धर्म को विकृत करने वाली समस्त परम्परागत रूढ़ियों पर कठोरता से विरोध किया, वहीं सामान्य जन को अधिकाधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए योग मार्ग का प्रचार-प्रसार किया। इसीलिए तो गोरखवाणी में स्पष्ट है-

अवधू पूरब दिसि व्याधि का रोग, पछिम दिसि मिर्तृ का सौग।
दक्षिण दिसि माया का भोग, उत्थर दिसि सिध का जोग।।

तथा

अवधू अहार तोड़ौ निद्रा मोड़ौ कबहुं न होइगा रोगी।
छठै छमासै काया पलटिबा ज्यूं को को बिरला वियोगी।।

महायोगी गोरखनाथजी एवं उनकी साधना-पद्धति का संयम एवं सदाचार से संबंधित व्यावहारिक स्वरूप जन-जन में इतना लोकप्रिय हो गया था कि विभिन्न धर्मावलम्बियों, मतावलम्बियों के अपने-अपने धर्म एवं मत को लोकप्रिय बनाने तथा जन सामान्य को अपने कर्म पंथ में सम्मिलित कर लेने के लिए नाथपंथ की साधना का मनचाहा प्रयोग किया। इसीलिए गोरखनाथजी ने कहा-

गगन मंडल में ऊँधा कूवा तहां अमृत का बासा।
सगुरा होई सु भरि भरि पीवै निगुरा जाई पियासा।।

सम्प्रति समाज में नाना प्रकार की कुरीतियाँ, कुप्रभाव, अवांछनीयताएँ परिव्याप्त हैं जो समाज को विखण्डित कर राष्ट्र को कमजोर कर रही हैं। यदि विभिन्न प्रकार की सामाजिक, शारीरिक समस्याओं से मुक्ति प्राप्त करना ही हमारा अभीष्ट है तो नाथ-पंथ की योग-साधना हमें इन समस्याओं से मुक्ति दिलाने में सहायक हो सकती है। महायोगी गोरखनाथ तथा नाथसंतों की यह साधना आज भी मनुष्य को सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, मानसिक, शारीरिक और सामाजिक रूप से समुन्नत और स्वस्थ बनाने में निरंतर क्रियाशील है। महायोगी गोरक्षनाथजी के ही शब्दों में-

पाप पुंन करम का बासां। मोष मुक्ति चेतहु हरि पासा।

नाथ सम्प्रदायः उद्‌भव और विकास

-डॉ. के. आर. नजुण्डन*

भारत के धार्मिक इतिहास में लगभग ई.सन् २०० से ई.सन् १२०० तक के हजार वर्ष तक का दीर्घ समय पौराणिक-आगमिक-तांत्रिक युग कहा जा सकता है। कारण यह कि इस लंबी अवधि में प्रायः सभी मुख्य पुराणों, उप-पुराणों, आगमों और तंत्रों की रचना पूरी हो चुकी थी। जहाँ एक ओर विभिन्न वैदिक, अवैदिक मतों के बीच संघर्ष हो रहा था वहीं दूसरी ओर उनमें समन्वय लाने का प्रयत्न भी किया जा रहा था। महापुराणों के प्रणयन के द्वारा वैदिक धर्म एवं वर्णाश्रम की व्यवस्था का पुनर्गठन सिद्ध किया जा रहा था। साथ ही साथ प्राचीन काल से चली आ रही तंत्र परम्परा से प्रभावित शैव, शाक्त और वै णव मतों का संघटन कार्य सम्पन्न होना आरम्भ हो गया था। वेद बाह्य एवं वेद-विरोधी जैन, बौद्ध, आजीवक और उन जैसे अन्य सम्प्रदाय जो व्यापक तांत्रिक आचार विचारों से प्रभावित होने लगे थे, अपने मूल रूप से बहुत कुछ बदल भी चुके थे। उस युग के विभिन्न साधना-प्रधान मतों के अनुयायियों में पाषण्ड, अर्हत, तांत्रिक और अन्य बौद्ध, भैरव, भिक्षु, भोजक (सूर्योपासक) चार्वाक, चीनमार्गरत, डामर, जैन, कापालिक, लांगल, लिंगधारी, मीन-केतन, नाकुल, नास्तिक, निर्ग्रंथ, पांचरात्र, पाशुपत, पूर्व-पश्चिम, शैव, शाक्य, सांख्यक, सौगत, तप्त-मुद्रान्तिक, त्रिशूलधारी आदि थे। यह कहना उचित है कि वह युग धार्मिक संघर्ष और समन्वय का युग था।

इसी युग में योग-मार्गी शैव-सिद्धों ने अपना एक अलग साधनापरक सम्प्रदाय का संगठन किया। वही नाथ-सम्प्रदाय नाम से भारत भर में विख्यात हुआ। इस सम्प्रदाय विशेष में प्राप्त साहित्य में बहुधा इसे आदिनाथ द्वारा अवतरित बताया गया है। उसके अनुसार आदिनाथ शिव ही हैं। उक्त साहित्य के निर्माताओं ने शिव को ही योग-मार्ग का प्रथम नाथ माना है। उससे प्रवृत्त होने से यह नाथ-सम्प्रदाय नाम से प्रसिद्ध हुआ। आदिनाथ शिव ही हैं अथवा कोई महान मानव गुरु, यह एक जटिल समस्या बनी हुई है। वर्तमान स्थिति में, इस समस्या का हल करना कठिन लगता है। अतः नाथ साहित्य का अनुकरण करते हुए शिव को आदिनाथ मानकर चलना ही उचित मालूम होता है।

आदिनाथ शिव द्वारा अवतरित योग-मार्ग का प्रथम मानव नाथ गुरु मत्स्येन्द्रनाथ माने जाते हैं। वे शिव के शिष्य थे।[१] उन्होंने ही पहले पहल शिव से हठ-विद्या का उपदेश पाया और उनके सतत अभ्यास से दिव्य-काय होकर सिद्ध बने।[२] उनके विख्यात शिष्य महायोगी गोरक्षनाथ थे जिन्होंने अपनी अपूर्व प्रतिभा एवं असाधारण शक्ति से लाभ उठाकर नाथ-सम्प्रदाय का संगठन किया। भारत के मध्य-कालीन धर्म-सम्प्रदायों में नाथ-सम्प्रदाय का गौरवपूर्ण स्थान है।

इस सम्प्रदाय के अन्य नाम सिद्ध-मत, सिद्ध-मार्ग, योग-मार्ग, योग-सम्प्रदाय, अवधूत-मत, अवधूत-सम्प्रदाय, नाथ-मार्ग आदि हैं।[३]

कहने की आवश्यकता नहीं कि ये सब नाम सार्थक हैं। नीरस तर्क तथा शुष्क ज्ञान का अवलम्बन न करके भावना से पुष्ट साधना से जो नाथ या परमपद को इसी जीवन में सिद्ध कर लेते हैं, वे सिद्ध पुरुष कहलाते हैं। ऐसे सिद्धों से अवतरित, स्वानुभूति पर बल देने वाला मार्ग सिद्ध-मार्ग या सिद्ध-मत है। शैव नाथ सिद्धों और बौद्ध सहजयानी सिद्धों में कई बातों में मौलिक अन्तर है। नाथ सिद्धों का मुख्य धर्म योग के अंगों का अभ्यास निरंतर करते रहना है। योग-साधना के द्वारा वे जीवात्मा-परमात्मा के ऐक्य अथवा अभेद को सिद्ध

*मद्रास

करते हैं।[४] अतः यह योग-मत या गोग-मार्ग भी कहलाता है। जो प्रकृति के सब प्रकार के विकारों को जलाकर नष्ट कर देते हैं, वे अवधूत हैं।[५] उनका मार्ग अवधूत-मार्ग या अवधूत-मत नाम से जाना जाता है।

जिसका अथ अर्थात् आरंभ नहीं वह आदि अन्तहीन परम तत्त्व ही नाथ शब्द से सूचित किया जाता है। इस शब्द का व्यवहार सम्प्रदाय में मुख्यतः दो अर्थों में किया गया है। विश्व के परम कारण जिसे ब्रह्म, शिव, परमपद, अनाम, अव्यक्त आदि शब्दों से सूचित किय जाता है, वही नाथ है। दूसरा, सम्प्रदाय के आचार्य-पुरुष या गुरु नाथ कहलाते हैं। इस अर्थ में नाथ गुरु का वाचक है। वस्तुतः इस सम्प्रदाय में गुरु और शिव में अन्तर नहीं माना जाता है।[६]

नाथ-सिद्ध का परम-लक्ष्य नाथ में अवस्थान की प्राप्ति है। नाथ वह अनिर्वचनीय परम तत्त्व है जो केवल अनुभवगम्य है उसे दर्शन की भाषा में न द्वैत कहा जा सकता न अद्वैत ही। वह दोनों से परे द्वैताद्वैत विलक्षण अथवा लक्ष्यालक्ष्य विलक्षण है। वह अण्ड-पिण्ड सर्वत्र व्याप्त है, परन्तु वह अलभ्य कदापि नहीं। अविरत-यत्न एवं गुरु-कृपा से उसकी उपलब्धि इसी जन्म और इसी देह में संभव है। अतः देह या काय को सिद्ध कर लेना जिससे साधक जरा-मरण से मुक्त हो जाये, परम आवश्यक है। कहा गया है कि बिन्दु ही रक्षित अवस्था में मोक्ष-दाता है और अरक्षित स्थिति में मरण-दाता है। यह बिन्दु स्वर्ग-दाता है और धर्माधर्म का विधायक है। उसके मध्य सूक्ष्म रूप से समस्त देवता वास करते हैं। बिन्दु ही बुद्ध, शिव, विष्णु एवं प्रजापति है। वह सर्वगत देव है, तीनों लोकों को प्रतिबिम्बित करने वाला दर्पण भी वही है।[७]

बिन्दु की रक्षा के लिए चित्त को नियंत्रित करना आवश्यक है। निर्दोष चित्त या मन ही मनुष्य के बंधन या मोक्ष का कारण है।[८] चित्त के चंचल होने पर संसार का भान होता है और निश्चल होने पर मोक्ष का उदय होता है। अतः परम उदासीन होकर चित्त को स्थिर करना चाहिए।[९]

चित्त की स्थिरता षडंग या अष्टांग योग के अनवरत अभ्यास से सुलभ होता है। इसीलिए नाथ सम्प्रदाय में अष्टांग योग, चित्तशुद्धि, बिन्दु-रक्षण आदि पर बल दिया जाता है जिससे जीवात्मा का ऐक्य सिद्ध हो जाता है और इस तरह के स्वस्वरूप ज्ञान के उदय के साथ ही सुख-दुख रूपी सांसारिकता का जाल सदा के लिए कट जाता है।

इस परम कल्याणकारी साधना-मार्ग का आरंभ कब हुआ, सो तो निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता, परन्तु यह तो सर्वविदित है कि मत्स्येन्द्रनाथ और गोरक्षनाथ दोनों ने इस योग-मार्ग का पोषण और विकास किया। अतः नवीं शती से इसका ज्ञात इतिहास परिलक्षित होता है। तो भी इस मत के उद्‌भव के पीछे एक समृद्ध योग-परम्परा अति प्राचीन काल से अपने विविध रूपों में विकसित होती हुई चली आ रही है। नाथ सम्प्रदाय उसी पूर्व-परम्परा का एक सुविकसित एवं सुगठित रूप है जिसने मध्य-कालीन जीवन एवं साहित्य को बहुत प्रभावित किया। इसने पूर्व के वैदिक, अवैदिक, आगमिक, तांत्रिक आदि सभी स्रोतों से आवश्यक व उपयोगी उपकरणों को जुटा लिया और उन्हें युगानुकूल ढाँचे में ढालकर समाज के सम्मुख उपस्थित हुआ। इस संदर्भ में, वैदिक युग से लेकर मत्स्येन्द्रनाथ और गोरक्षनाथ के समय तक योग-परम्परा की समीक्षा कर लेना समीचीन होगा।

कुछ वर्ष पूर्व सिंधु और रावी नदियों के तट पर स्थित मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में जो खुदाइयाँ हुईं, उनसे एक नयी सभ्यता एवं संस्कृति का परिचय मिला है, जिसका समय ई.पू. ३५०० से २००० तक का बताया जाता है। कुछ विद्वान उस सिंधु घाटी सभ्यता को आर्य सभ्यता का ही एक रूप मानते हैं जबकि कुछ विद्वान उसे द्रविड़ सभ्यता सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। पर, वास्तविकता यह है कि जब तक वहाँ से प्राप्त मुद्राओं

और अन्य सामग्रियों की सही पहचान नहीं हो पाती तब तक उसका निर्णय करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।

जो हो, ये खुदाइयाँ भारत के धार्मिक इतिहास की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। जॉन मार्शल ने ठीक कहा है कि सिंधु घाटी का धर्म ऐसी विशेषताओं को लिये हुए है कि उसमें और वर्तमान हिन्दू धर्म में तात्त्विक दृष्टि से कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं दीख पड़ता।[१०] दूसरे शब्दों में, वर्तमान सामासिक हिन्दू धर्म के बहुत से तत्त्व सिंधु घाटी सभ्यता की देन हैं।

वहाँ से प्राप्त मुद्राओं और मृण्मूर्तियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वहाँ शिव, देवी, के साथ पशु-पक्षी, जानवर, जल की अनेक प्राकृत-अप्राकृत वस्तुओं का पूजन और आराधन होता था। पशुपति शिव की उपासना भी उस सभ्यता की एक विशिष्ट अंग के एक ताम्रपट्ट पर अंकित शिव की एक और आकृति वहीं से मिली जो योगासन साधे हुए दीखती है। शिव-पशुपति के दोनों ओर घुटनों के बल बैठे हुए दो भक्त हैं।[११] इसी तरह एक चतुर्भुज देवता की मुद्रा भी मिली है जिसे विद्वानों ने ऋग्वेदीय रुद्र कहा है। पत्थर पर अंकित एक और विग्रह है। यह पुरुषाकृति दाढ़ीयुक्त तथा शरीर पर चादर ओढ़े हुए दीखती है। उसके नयन अर्द्ध उन्मीलित हैं और नेत्रों की दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर स्थित है। यह वस्तुतः योग-मुद्रा धारण किये हुए किसी योगी की ही मूर्ति है जो ऐसी योग-मुद्राओं में मूर्तियों की प्राप्ति सिद्ध करती है कि उसके काल में शिव पशुपति-योगियों के आराध्य माने जाते थे और ऐसे उपासक योगीजन समाज में थे परन्तु उस काल की योग-साधना का स्वरूप क्या था, इसकी कोई स्पष्ट रूप-रेखा नहीं मिलती। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के निवासी जनों के धर्म संबंधी चर्चा को समाप्त करने से पहले यह उल्लेख करना आवश्यक है कि सिंधु घाटी के निवासी मिट्टी की पकी मूर्तियाँ बनाने में विशेष रुचि रखते थे और ये मूर्तियाँ कई रंग व आकार-प्रकार के थे। जिन योगासनों में ये बैठे दिखायी देती हैं, उससे यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उस समय भौतिक तथा मानसिक अनुशासन को दृढ़ करने के लिए योगाभ्यास का आश्रय लिया जाता था। तब तो यह माना जा सकता है कि सिंधु घाटी सभ्यता की सबसे बड़ी तथा महती देन योग-विज्ञान है।[१४]

आज, यह निर्विवाद रूप से स्वीकृत हो गया है कि संस्कृत के प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य ऋग्वेद में संग्रहीत १०२८ ऋचाओं एवं ऋग्वेद के मूल सूक्तों का प्रणयन ई.पू. २५००-२००० के आसपास सिंधु प्रदेश में हुआ यद्यपि याज्ञिक दृष्टि से उसका संपादन निबंधन उपन्यास बाद में सप्तनद प्रदेश में हुआ।[१५] यजुर्वेद और अथर्ववेद उसके बाद बने। वे तीनों वेद वेदत्रयी नाम से गौरवान्वित हुए। कई विद्वानों के विचार में अथर्व वेद ही सबसे प्राचीन वेद है, परन्तु इस धारणा के पीछे पुष्ट प्रमाण नहीं। जो भी हो, इस वेद को अन्य वेदों के साथ चतुर्थ वेद होने का गौरव बहुत बाद ही प्राप्त हो सका। सभी वेदों के मंत्रों का संकलन प्रायः ई.पू. १५०० तक पूरा हो चुका था।

वेदों के भाषात्मक स्वरूप पर विचार करते हुए एजर्टन ने लिखा है कि बाद के मंत्रों के प्रणेता जिन्होंने वेदों का नवीन संस्करण प्रस्तुत किया था, पुरोहित वर्ग से संबंधित थे और समाज में अपने स्थान का उन्हें बड़ा गर्व था। उन्होंने जान बूझकर एक पुरानी कृत्रिम पुरोहिती भाषाा का उपयोग किया जो उनकी मातृ-भाषा से भिन्न थी।[१६] इस संस्करण और संपादन की प्रक्रिया में बहुत सी अनार्य सामग्रियाँ वेदों में प्रवेश कर आयीं।[१७] अतः वैदिक विचार-धारा में आर्य, शामी और आस्ट्रो-एश्यायी- ये तीन भाव-धाराएँ दर्शित होती हैं।[१८]

कहने का तात्पर्य यह है कि वैदिक साहित्य में आर्येतर भावों का पर्याप्त मात्रा में समावेश हो चुका था। अतः यह अनुमान करना असंगत नहीं दीखता कि आत्म-विश्रांति के लिए योग की जो कल्पना की गयी उसमें

आर्यों का ही नहीं आर्येतर जनों का चिंतन भी समाविष्ट है।[१९]

भाव-धारा की दृष्टि से वेदों के तीन रूप परिलक्षित होते हैं। एक श्रद्धा समन्वित होने के नाते भक्तिभाव-सम्पन्न है; दूसरा तर्क प्रधान होने के कारण ज्ञानमूलक है और तीसरा आस्था-परक है जिसका संबंध बीज रूप में तंत्र अथवा योग से है। उनकी साधना प्रणालियाँ भी भिन्न रही हैं। कालक्रम से जो साधना कभी उपासनादि के माध्यम से पूरी की जाती थी वह कालांतर में यज्ञादि का अनुसरण करने लगी। प्राकृतिक देवता, ईश्वरीय भाव के अंग बन गये। किन्तु तीसरा रूप इनसे भिन्न साधना प्रणाली अपनाकर चलता रहा जिसमें से कुछ लोग वायु-निरोध के लिए प्राणायामादि का अभ्यास किया करते थे तो कुछ दूसरे श्रमसाध्य तपोव्रत द्वारा मृत्यु तक पर विजय प्राप्त कर लिया करते थे।[२०]

इस तरह वेद-कालीन साधना प्रणाली में दो भेद स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। पहला वेदों में निर्दिष्ट विधि-विधानों का अनुसरण करते हुए अन्यान्य देवों की उपासना, यज्ञ-जिज्ञासा, सिद्धिदायक योगाभ्यासपूर्वक तांत्रिक क्रिया-कर्म। इन दोनों में आर्यों का जो प्रधानतया पशुपालक थे- संबंध उपासना तथा यज्ञ से रहा और आर्येतर जनों का- जिनमें व्रात्य आदि सम्मिलित थे- संबंध योग और तंत्र से था।[२१] असुर, दानव, यक्ष आदि तंत्रज्ञ वर्ग के थे जिनके गुरु शुक्राचार्य माने जाते हैं। कहा जाता है कि जादू-टोना आदि से भरे हुए अथर्वण के मंत्रों के निर्माता व्रात्यजन थे।

वेद और ब्राह्मण ग्रंथों में जिन तपस्वियों का उल्लेख होता है वे इसीलिए कठोर तप करते थे कि उन्हें ऐसी शक्तियाँ प्राप्त हों जिनसे वे मित्रों पर अनुग्रह कर सकें और शाप द्वारा शत्रुओं पर निग्रह कर सकें। परन्तु योगी संसार से विरत होकर आत्म-लाभ के लिए तप किया करते थे। वे योगी न तो किसी से भयभीत होते थे न किसी में भय उत्पन्न करते थे।[२२]

ऋग्वेद के एक मंत्र में सोम का संबोधन करते हुए ऋषि उस देवता से अनुरोध करते हैं- "हे सोम! व्रत आदि से जिसका शरीर तपाया हुआ और परिपक्व नहीं वह तुम्हारे सर्वत्र व्याप्त शोधक अंग को नहीं ग्रहण कर सकता।"[२३] व्रत में योग के यम, नियम का पालन अवश्य होता है, ध्यान, धारणा और प्रत्याहार का थोड़ा बहुत स्थान रहता है।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल में केशिन मुनि का वर्णन करनेवाला एक सूक्त है। उसका हिन्दी रूपांतर यों है-

(अ) केशी जल और द्यावा-पृथ्वी को धारण करते हैं। केशी ही सारे संसार को प्रकाश के द्वारा दर्शनीय बनाते हैं। इस ज्योति को ही केशी कहा जाता है।

(आ) वातरशन के वंशज मुनि लोग पीले वल्कल पहनते हैं। वे देवत्व को प्राप्त होकर वायु वेग से गमन करने में समर्थ हुए हैं।

(इ) समस्त लौकिक व्यवहारों का उत्सर्जन करके हम उन्मत्त परमहंस हो गये हैं। हम वायु से भी ऊपर चढ़ गये हैं। आप लोग केवल हमारा शरीर देखते हैं। हमारी प्राकृत आत्मा तो वायु रूपी हो गया।

(ई) मुनिगण आकाश में उड़ सकते हैं और सभी पदार्थों को प्रत्यक्ष देख सकते हैं। जहाँ कहीं भी जितने भी देवता हैं वे सबके प्रिय बंधु हैं। वे सत्कर्म करने मात्र के लिए जीवित हैं। वे अमृतत्व को प्राप्त कर चुके हैं।

(उ) मुनिगण वायु मार्ग पर घूमने के लिए अश्वस्वरूप हो गये हैं। वे वायु के सहचर हैं। देवता उनसे मिलने के इच्छुक हैं। वे पूर्व और पश्चिम के दोनों समुद्रों में निवास करते हैं।

(ऊ) केशी, देवताओं, अप्सराओं, गंधर्वों और हरिणों के बीच विचरण करते हैं। वे समस्त ज्ञातव्य विषयों

को जानते हैं। वे इसके उत्पादक और आनन्ददाता मित्र हैं।

(ऋ) जिस समय केशी रुद्र के साथ जल पीते हैं, तब वायु उस जल को कंपित कर देते हैं और कठिन माध्यमिकी वाक् को भंग कर देते हैं।[२४]

ऋग्वेद के इस प्रसिद्ध सूक्त पर अपना मन्तव्य देते हुए हाउर ने लिखा है कि इस ऋक् में रुद्रशिवोपासी योगी के लक्षण मालूम होते हैं।[२५] परन्तु, इससे अपनी असम्मति व्यक्त करते हुए इलियड ने कहा है कि वस्तुतः इस ऋक् में किसी भावोन्मादी व्यक्ति का चित्रण है जिसमें योगी के कुछ लक्षण दीख पड़ते हैं।[२६]

उक्त ऋक् को ध्यान से पढ़ने पर ऐसा लगता है कि इसमें किसी वायु विजयी योगी का ही यथार्थ वर्णन है। तीसरे मंत्र से यही ज्ञात होता है कि उसमें एक जीवन-मुक्त पुरुष का वर्णन किया गया है। आगे के तीन मंत्रों में अष्ट सिद्धि प्राप्त योगी का वर्णन है जो अपनी इच्छा से आकाश में गमन करने का सामर्थ्य रखता है। अतः कहा जा सकता है कि मंत्रद्रष्टा ऋषियों में से कुछ ऐसे भी थे जो योग के रहस्यों से परिचित थे। ऐसे ऋषिगण यह मानते थे कि योगी का चित्त जब सांसारिक विषयों या सुखों से विरक्त हो जाता और दोषरहित हो योग-समाधि के लिए पूर्णतः योग्य बन जाता है तब वह योगी श्रद्धा, वीर्य और प्रज्ञा के साथ निरंतर अभ्यास द्वारा मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।[२६] इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है कि वेद मंत्रों के निर्माण काल में योग-मार्ग विद्यमान था।[२७] यजुस् और साम में भी योग-संबंधी उल्लेख है। स्मरण रहे कि इन दोनों वेदों में संकलित मंत्र अधिकांशतः ऋग्वेद से लिये गये हैं।

अथर्व संहिता में आकर योग का स्वरूप और भी स्पष्ट दिखाई देता है। उक्त वेद में जिस एक व्रात्य का वर्णन है उसे जैमिनीय उपनिषद् ने व्रात्यों का मूल देवता कहा है। एक व्रात्य से ही योग-मूर्ति शिव की कल्पना की गयी मालूम होता है।[२८] व्रात्य खंड में वर्णित धार्मिक क्रियाओं में योग का प्रधान स्थान था।[२९] हाउर तो यहाँ तक दावा करते हैं कि व्रात्यों में ही योग मार्ग का उदय हुआ था।

अथर्व वेद में एक स्थल में प्राण के महत्त्व की बड़ी भव्य व्याख्या मिलती है।[३०] उस सूक्त का प्रणेता ऋषि घोषणा करते हैं-"जिस प्राण के वश में यह समस्त सचराचर जगत् रहता है मैं उस प्राण को नमस्कार करता हूँ।" इससे प्राण के सकल-जगत-नियन्तृत्व सूचित किया जाता है।

एक और स्थान में उल्लेख है कि "परगमन जिसका स्वभाव अर्थात् जो देह के बाहर अवस्थित है, उस प्राण को मैं नमस्कार करता हूँ।" प्राण विराट् है, वह स्थूल पंचाभिमानी ईश्वर है, वह सबको अपने-अपने व्यापार में प्रेरित करने वाला परदेवता है। प्राण में यह सारा जगत् प्रतिष्ठित है। जो इस प्राण के महत्त्व को जानता है और जिसमें यह प्राण प्रतिष्ठित है उसे स्वर्ग में सब उत्तम वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं।[३१] व्रात्य और प्राण के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि अथर्व वेद प्राण, अपान, व्यान के साथ अन्य सप्त श्वासों के सम्पर्क से दस प्राणों की गणना करता है। ये विशेष नाड़ियों में प्रवहमान रहते हैं और इनके सम्मिलित रूप से सूक्ष्म शरीर का निर्माण होता है। इस प्रकार, इस वेद में पूर्ण विकसित योग-प्रणाली का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है जिसका प्रधान आधार प्राण और अपान वायु है। प्राणायाम का मुख्य ध्येय प्राण और अपान को वश में लाना है।[३२]

इसी तरह अथर्व वेद में ब्रह्मचर्य, व्रत और तप की महिमा एवं आवश्यकता की चर्चा कई स्थलों में पायी जाती है।[३३] सबसे बढ़कर रोचक बात यह है कि स्कम्भ की स्तुति करते हुए ऋषि कहते हैं कि जो मानव में स्कम्भ को प्रतिष्ठित जानता है वही सर्वश्रेष्ठ है।[३४] उक्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि अथर्व संहिता में योग का अधिक सुस्पष्ट विवेचन मिलता है।

वेद के दो विभाग हैं- मंत्र तथा ब्राह्मण। मंत्रों का संग्रह ही संहिता है। ब्राह्मण के अंतर्गत विभिन्न ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् गिने जाते हैं। विभिन्न ब्राह्मण ग्रंथों में तप का उल्लेख अनेक स्थलों में किया गया मिलता है। तपस्या के आध्यात्मिक मूल्य का महत्त्व परवर्ती योग सूत्र में स्वीकृत हुआ है।[३५] शांख्यायन ब्राह्मण में रुद्र की विशेष महिमा का वर्णन है। वह देवों में ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ माना गया है। शिव के भव, शिव, पशुपति, उग्र, महादेव, रुद्र, ईशान तथा अशनि नाम देकर इन नामों की उत्पत्ति विचित्र रूप से बतायी गयी है तथा उनके विशिष्ट व्रत का भी यहाँ निर्देश किया गया है।[३६] योग के अधिदेवता शिव के इस वर्णन से प्रतीत होता है कि उक्त ब्राह्मण को योग का परिचय है। यद्यपि ब्राह्मणों का विषय-विवेचन यज्ञ-यागादि कर्म-काण्ड की क्रियाओं से संबंध रखता है तो भी उनमें इस बात का संकेत मिलता है कि भौतिक योग एक प्रतीकात्मक व्यापार है और इसका पर्यवसान अंतर्याग में होता है।

आरण्यक तथा उपनिषद् ब्राह्मणों के परिशिष्ट ग्रंथ के समान हैं जिनमें ब्राह्मण ग्रंथों के सामान्य प्रतिपाद्य विषय से भिन्न विषयों का प्रतिपादन स्वतंत्र दृष्टिगोचर होता है। आरण्यकों में यज्ञ-यागों के आध्यात्मिक तथ्यों की मीमांसा एवं दार्शनिक विचारों के विश्लेषण करने के साथ-ही-साथ प्राण-विद्या की भी महत्ता का विशेष प्रतिपादन उपलब्ध होता है।[३७] प्राण की ही शक्ति के जैसे यह आकाश अपने स्थान पर स्थित है, वैसे ही सबसे बड़े प्राणी से लेकर छोटी-सी चींटी कीड़े तक समस्त जीव इस प्राण द्वारा ही विधृत हैं। यदि प्राण नहीं होता तो इस विश्व का जो यह मान-संस्थान हमारे नेत्रों के सामने सतत आश्चर्य पैदा किया करता है वह कहीं भी नहीं रहता। सर्वत्र व्याप्त प्राण ही विश्व का धारक एवं रक्षक है। वही आयु का कारण है।[३८] इस प्रकार प्राण की महिमा का वर्णन करते हुए ऐतरेय आरण्यक के रचयिता ने ध्यन करने के लिए घ्राण के भिन्न-भिन्न गुणों का उल्लेख विस्तृत रूप से किया है।[३९] आरण्यककार का कथन है कि जितनी ऋचाएँ हैं, जितने वेद हैं, वे सब प्राणरूप हैं। प्राण को ही इन विविध रूपों में व्यक्त हुआ समझना चाहिए तथा उसकी उपासना करनी चाहिए।

आरण्यकों में व्यक्त प्राण संबंधी उपर्युक्त विचार गोरक्षनाथ के समकालीन सिद्ध तथा शिष्य विरुपाक्ष द्वारा विरचित अमृत-सिद्धि-योग के निम्नलिखित श्लोक में प्रतिध्वनित होता-सा दीखता है।

जगताम् प्राणभूताय ज्ञान रूपाय देहिनाम्।
तत्त्वानाम् सारभूताय नमो नाथाय वायवे।।[४०]

उपनिषदों में पिण्ड-ब्रह्माण्डवाद, नाड़ी-विज्ञान, प्राण-विद्या, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि आदि योग-मार्ग के तथ्यों का निरूपण अनेक स्थलों में किया गया है। उसमें आधिदैविक का अर्थ सृष्टि अर्थात् ब्रह्माण्ड तथा अध्यात्म का अर्थ पुरुष-शरीर अर्थात् पिण्ड से है। आधिदैविक और अध्यात्म, ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड इन दोनों में एक ही नियम काम कर रहा है- इस बात को उपनिषदों में स्थान-स्थान पर दुहराया गया है। अध्यात्म शब्द का अर्थ उपनिषदों में आत्मा संबंधी नहीं, परन्तु आत्मा जिस शरीर में अधिष्ठित है उस शरीर से-पिण्ड से है। आधिदैविक (ब्रह्माण्ड) का वर्णन करते-करते अध्यात्म (ब्रह्माण्ड) का वर्णन करना उपनिषदों की अपनी विशेष शैली है।[४१]

योग शब्द का पारिभाषिक अर्थ में प्रथम बार कठोपनिषद् और तैत्तिरीय में किया गया देखा जाता है।[४२] कठोपनिषद् के एक मंत्र में अध्यात्म योग शब्द का प्रयोग हुआ है। उस मंत्र के तात्पर्य को स्पष्ट करते हुए आचार्य शंकर ने कहा है कि उस पुरातन देव की प्राप्ति का द्वार जानकर धीर पुरुष अपने उत्कर्ष-अपकर्ष का अभाव हो जाने के फलस्वरूप हर्ष-शोक परित्याग कर देता है। उस संदर्भ में उन्होंने बताया है कि चित्त को विषयों से हटाकर आत्मा में लीन कर देना अध्यात्म योग नाम से जाना जाता है।[४३]

प्राणायाम की विशिष्टता को बताते समय उपनिषद्कार का कथन है कि वह एकाग्रता का सबसे बड़ा साधन है। प्राणायाम से ही इन्द्रियों को मन के साथ और मन को आत्मा के साथ नियोजित किया जा सकता है। बिना प्राणायाम किये चंचल इन्द्रियाँ दुष्ट घोड़ों की भाँति इधर-उधर भागने लगती हैं। प्राणायाम करते समय कोई भी व्यक्ति दुश्चिंतन में नहीं पड़ता।[४४]

जिस प्रबल मंत्र की महिमा का वर्णन गोरक्षनाथ ने यह कहकर किया है कि ॐकार सारे संसार में व्याप्त रहता है, वही एकमात्र उपास्य देवता है।[४५] उसका परिचय उपनिषदों के महान रचयिताओं ने इन शब्दों में दिया है- 'यह 'ॐ' एक अक्षर है परन्तु यही ब्रह्म है, सबसे परे है, इस एकाक्षर को जो जानता है वह जिस किसी वस्तु की कामना करता है उसे निश्चय ही प्राप्त कर लेता है।[४६]

इस उपनिषद् में एक अन्य स्थान में एक सौ नाड़ियों में से सुषुम्ना के भेदन से अमृतत्व की प्राप्ति का विवरण मिलता है।[४७] इस पर विचार करते हुए इलियड ने लिखा है कि कठ की यह उक्ति योग के विकास की दृष्टि से बहुत ही महत्त्व रखती है। कारण यह है कि योगोपनिषद् और तंत्र साहित्य में जिस रहस्यात्मक शरीर विज्ञान का विवरण मिलता है उसका मूल रूप यहाँ पाया जाता है।[४८] यहाँ एक और बात का पता चलता है कि योग आत्म-ज्ञान तथा अमृतत्व-प्राप्ति का महान साधन है।[४९]

प्रश्नोपनिषद् में भी प्राण की सर्वात्मकता एवं सर्व व्यापकता का विवरण दिया गया है। ऋषि का कथन है कि प्राण के विषय में यह जानता है कि उत्पत्ति कहाँ से होती है, इसके भिन्न-भिन्न उत्पत्ति स्थान कौन-कौन से हैं। यह किस प्रकार संसार में सब जगह स्थित रहा है, यह शरीर में तथा बाह्य जगत् में अर्थात् पिण्ड तथा ब्रह्माण्ड से किस तरह तादात्म्य स्थापित किये हुए है- वह अमृत को पी लेता है।[५०] इसी तरह प्रणव जप के माहात्म्य पर प्रकाश डालते हुए पिप्पलाद ऋषि ने कहा है कि ॐकार की उपासना से उपासक शांत, अजर, अमृत, अभय परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।[५१]

छांदोग्योपनिषद् बताता है कि अब इस ब्रह्मपुर के भीतर_जो यह सूक्ष्म कमलाकर स्थान है, इसमें जो सूक्ष्म आकाश है और_भीतर जो वस्तु है उसका अन्वेषण करना चाहिए और उसकी जि_करनी चाहिए। जितना यह (भौतिक) आकाश है उतना ही हृदया_आकाश है। द्युलोक और पृथ्वी ये दोनों लोक सम्यक् प्रकार से भीतर ही स्थित हैं। इसी प्रकार अग्नि और वायु- ये दोनों, सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों तथा विद्युत और नक्षत्र एवं इस आत्मा का जो_इस लोक में हैं और जो नहीं हैं, वह सब सम्यक् प्रकार से_स्थित हैं।[५२]

स्पष्ट है कि यह उपनिषद् आत्म-तत्त्व की खोज मानव-शरीर को करने का आदेश देता है। यही नहीं ऋग्वेद के पिण्डान्वेषण_व_वाजसंनेयी के अण्डान्वेषण का एक प्रकार से समरसीकरण बतलाता है कि जो पिण्ड में है वह अण्ड में है और जो अण्ड में हैं वे सब पिण्ड में हैं। इस तरह अण्ड-पिण्ड का एकीकरण उक्त उपनिषद् की विशेषता है और यह योग-मत के लिए महत्त्वपूर्ण तथ्य है।[५३] 'मच्छन्दिनी नाथ मतम्' तथा 'अमृत सिद्धि योग' में इस विचार-धारा का विकसित रूप मिलता है।

आगे, नाड़ियों का उल्लेख करते हुए छांदोग्य कहता है- 'हृदय में एक सौ नाड़ियाँ हैं। उनमें से एक मस्तक की ओर निकल गयी है। उसके द्वारा ऊपर की ओर जानेवाला जीव अमरत्व को प्राप्त करता है। शेष इधर-उधर जानेवाली नाड़ियाँ केवल उत्क्रमण का कारण होती हैं।[५४] वृहदारण्यक, मुण्डक, तैत्तिरीय आदि भी इन नाड़ियों का यथास्थान उल्लेख करते हैं।[५५] तैत्तिरीय १-६-१ पर भाष्य करते हुए आचार्य शंकर कहते हैं कि हृदय देश से ऊपर की ओर जानेवाली सुषुम्ना नाम की नाड़ी योग शास्त्रों में प्रसिद्ध है। वह दोनों तालुओं के बीच में होकर जाती है।[५६] वाचस्पति मिश्र इसी को ब्रह्मनाड़ी संज्ञा देते हैं।[५७]

शैव योग के प्रतिपादक के रूप में श्वेताश्वतर का स्थान प्राचीन उपनिषदों में सर्वोपरि है। श्वेताश्वतर ऋषि के अनुसार ब्रह्मवेत्ताओं ने ध्यान-योग के अनुशीलन के द्वारा परम मूल कारण को स्वयं ही अनुभव कर लिया था। आचार्य शंकर ने अपने भाष्य में लिखा है कि ध्येय वस्तु के ग्रहण का उपाय ही योग है।[५८] ध्येय वस्तु परम पुरुष के ध्यान की विधि को बताते हुए ऋषि कहते हैं- ''अपनी देह को अरणि और प्रणव को उत्तरारणि बनाकर ध्यान रूप मन्थन के अभ्यास से स्वप्रकाश परमात्मा को छिपे हुए अग्नि के समान देखें।''[५९] आगे ध्यान योग की विधि तथा उसका महत्त्व यों बताया गया है- 'सिर, ग्रीवा और वक्षस्थल इन तीनों को ऊँचा रखते हुए शरीर को सीधा रख मन के द्वारा इन्द्रियों को हृदय में सन्निविष्ट कर विद्वान ॐकार रूप नौका के द्वारा सम्पूर्ण भयानक प्रवाहों को पार कर जाता है।'[६०] फिर प्राणायाम का क्रम तथा महत्त्व का विवरण प्रस्तुत करते हुए ऋषि कहते हैं कि साधक को चाहिए कि युक्त आहार-विहार हो प्राणों का निरोध कर जब प्राण शक्तिहीन हो जाय तब नासिकारन्ध्र के द्वारा उसे बाहर निकाल दें। फिर वह विद्वान पुरुष अश्व से युक्त रथ के सारथी के समान सावधान होकर मन का नियंत्रण करे।[६१] ऐसे प्राणजयी योगी को न रोग होता है, न वृद्धावस्था प्राप्त होती है और न उसकी असामयिक मृत्यु ही होती है। वह योगी आत्म-भाव से ब्रह्म तत्त्व का साक्षात्कार करता है और सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है।[६२] उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि उपनिषद् में योगांगों में से आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान आदि का महत्त्व समझाया गया है।

योग के विकास-क्रम में अगला सोपान मैत्री उपनिषद् में दृष्टिगोचर होता है। इसकी रचना ई.पू.२०० और ई. सन् २०० के बीच में हुई थी।[६३] इसमें योग के आठ अंगों में से प्रथम तीन यानी यम, नियम और आसन का विवरण नहीं दिया गया है। शेष पाँच के साथ 'तर्क' को मिलाकर षडंग योग अर्थात् प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, तर्क और समाधि की व्याख्या की गयी है। 'प्राणायाम, प्रत्याहारो, ध्यानम्, धारणा, तर्क, समाधि ा षडंग इत्युच्यते योगः।' इसमें कहा गया है कि षडंग योग के अभ्यास से योगी का स्वर्ण-वर्ण पुरुष जगदुत्पन्न कारण ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। उस ब्रह्मविद् में दोष वैसे ही आश्रय नहीं पाते जैसे ज्वलित पर्वत पर पक्षी और मृग आश्रय नहीं ढूँढ़ते।[६४] इसमें खेचरी मुद्रा का परिचय भी दिया गया है। अंत में साधकों को प्रणवजप करने का उपदेश दिया गया है जो चित्त की एकाग्रता के लिए उपयोगी एवं लाभप्रद है। इसमें यह भी आदेश है कि योग को गुरु-शिष्य परम्परा क्रम से जानना चाहिए।

मैत्री उपनिषद् के रचना काल में एक और उपनिषद रचा गया जिसका नाम है चूलिकोपनिषद्। इसमें रसेश्वर योग का विवेचन है।[६५] लगभग इसी काल में संन्यास और योगोपनिषद् का निर्माण हुआ। संन्यास उपनिषदों में ब्रह्म, संन्यास, कठ, श्रुति, जाबाल, परमहंस आदि प्रमुख हैं। जाबाल और दर्शन में जीवन-मुक्ति प्रदान करने वाले आठ अंगों सहित योग-दर्शन का उपदेश है। उसमें दस यमों और दस नियमों का विस्तृत वर्णन है। नौ प्रकार के आसनों, चौदह प्रधान नाड़ियों, दस वायुओं, प्रत्याहार के विविध भेदों, दो प्रकार के धारणा, ध्यान और समाधि आदि का विशद परिचय देकर उपनिषदकार योग का परम लक्ष्य यों बताते हैं- 'जब ज्ञानी महात्मा सब भूतों को अपने में और अपने को ही सब भूतों में प्रतिष्ठित देखता है तब वह साक्षात् ब्रह्म हो जाता है।'[६६]

परमहंस नामक उपनिषद् में प्रातः-सायं से बढ़कर जीवात्मा-परमात्मा के ऐक्य का ज्ञान श्रेष्ठ माना गया।[६७] वामाचार की कड़ी निन्दा करते हुए परमहंस बताता है कि जो ज्ञानहीन होकर चंचल इन्द्रियों के अधीन होते हैं वे महारौरव नामक नरक विशेष में जा गिरते हैं। सभी उपनिषदों में वैराग्य की अनिवार्यता पर जोर दिया गया है। कुछ उपनिषदों में पुरुष के विश्राम स्थान का विवरण है। जैसे ब्रह्म में कहा गया है कि पुरुष गुदा,

हृदय, कंठ और सिर में रहता है। यह हठयोग संबंधी ग्रंथों में नाड़ी ग्रंथियों के बारे में दिये विवरणों से भिन्न नहीं।

'योगोपनिषद्' नाम से अडयार(मद्रास) से महादेव शास्त्री द्वारा सम्पादित बीस उपनिषदों का एक संकलन ब्रह्मानन्द योगी (अठारहवीं शती) के टिप्पण के साथ कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ। उक्त संकलन के उपनिषदों के नाम हैं- अद्वय तारक, अमृतनाद, अमृत बिन्दु, क्षुरिक, तेजोबिन्दु, त्रिशिख ब्राह्मण, दर्शन ध्यान-बिन्दु, नाद-बिन्दु, पाशुपत ब्रह्म, ब्रह्मविद्या, मण्डल ब्राह्मण, महावाक्य, योग-कुण्डली, योग चूड़ामणि, योगतत्त्व, योगशिखा, वराह, शाण्डिल्य, और हंस। एक और योग ग्रंथ राजोपनिषद् है जो अब तक अप्रकाशित है।

ऊपर उल्लिखित उपनिषदों के रचनाकाल के संबंध में निश्चित रूप से कहना कठिन है। इलियड के मतानुसार कुछ जैसे क्षुरिक, तेजोबिन्दु, नाद-बिन्दु, योगतत्त्व, ध्यान-बिन्दु, अमृत-बिन्दु, योगशिखा आदि महाभारत के अंतिम संकलन काल अर्थात् ई.सन् २०० और ४०० के बीच में रचे गये और अन्य सब उसके बाद के काल में। परन्तु, इस मान्यता के पीछे कोई युक्तियुक्त तर्क उपस्थित नहीं किया गया है। फिर भी यह मानने में कोई आक्षेप नहीं हो सकता कि इन सबकी रचना ई.सन् आठवीं शती के पूर्व हो गयी थी। इन उपनिषदों का विवरण संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है।

अद्वय तारकः

गद्य में निबद्ध इस छोटे से उपनिषद् में अंतर्लक्ष्य, बहिर्लक्ष्य एवं मध्य-लक्ष्य - इन विलक्ष्यों के लक्षण तथा उनके अभ्यास से उत्पन्न हो सकने वाले लाभों का वर्णन करके रचयिता ने तारक योग उसके प्रकार और उससे प्राप्त संभव सिद्धियों का विवरण दिया है। शांभवी मुद्रा का परिचय संक्षेप में दिया गया है। 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में गोरक्षनाथ ने उसी को योगी कहा है जो नवचक्र, षडाधार, त्रिलक्ष्य और व्योम पंचक को जानता है। 'पद्धति' में वर्णित विलक्ष्य तथा इस उपनिषद् में विवेचित विलक्ष्य समान हैं। अतः कहा जा सकता है कि गोरक्षनाथ ने विलक्ष्य के तत्त्वों को इससे लिया है।

अमृत नादः

अड़तीस श्लोकों के इस लघु आकारवाले उपनिषद् में षडंग योग का वर्णन है जो मैत्री में वर्णित षडंग योग से भिन्न नहीं। कहा गया है-

प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामो च धारणा।
तर्कश्चैव समाधिश्च षडंगो योग उच्यते।।[६८]

इसके अनुसार तर्क का अर्थ है 'आगम से अविरुद्ध ऊहन'।[६९] इससे पता चलता है कि इस उपनिषद् के रचना काल तक आगम साहित्य और योग में सामंजस्य बैठा दिया गया था। एक और धारणा दृढ़ हो गयी थी कि योगाभ्यासी के लिए यम, नियम और आसन की आवश्यकता नहीं, क्योंकि जिन मानसिक एवं कायिक दोषों को दूर करने के लिए इनकी जरूरत है, वे प्रणव या गायत्री के जप से ही दूर हो जाते हैं। इसलिए तांत्रिक दृष्टिकोण को अपनानेवालों ने अष्टांग योग के स्थान पर षडंग को पर्याप्त समझा है।

ध्यान बिन्दुः

यह एक छोटा सा ग्रंथ है जिसमें केवल २२ श्लोक हैं। बंधन और मोक्ष का मूल कारण मन ही है, यह बताकर लेखक ने योगाभ्यास के माध्यम से मन के निरोध को मोक्षपाय सिद्ध किया है।

क्षुरिकः

चौबीस श्लोकों वाले इस उपनिषद् में यम, नियम को छोड़कर अन्य योगांगों का संक्षेप में वर्णन किया गया

है। इसके अनुसार समाधि का फल यह है कि योगी योगाभ्यास रूपी तीक्ष्ण खड्ग से सांसारिक पाशों का छेदन करता है और समस्त पाप समूह को जलाकर लय को प्राप्त होता है।[७०]

तेजोबिन्दुः

यह आकार में बड़ा है और छः अध्यायों में विभक्त है। पंचदशांग योग का विवरण इसकी विशेषता है। यम, नियम, त्याग, मौन, देशकाल, आसन, मूल बंध, देह साम्य, दृक्स्थिति, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, आत्म-ध्यान, समाधि- ये ही पन्द्रह योगांग हैं। इनके लक्षण भी अन्य योग ग्रंथों में दिये गये लक्षणों से विलक्षण हैं। उदाहरण के लिए यम का लक्षण यों बताया गया है- इस ज्ञान से कि यह सब ब्रह्म है, इन्द्रियों का संयम करना यम कहाता है। इसका बार-बार अभ्यास करना चाहिए।[७१] इस उपनिषद् का झुकाव वेदांत की ओर अधिक दीखता है।

त्रिशिख ब्राह्मणः

सतातन मुनि ने भगवान् आदित्य से इस उपनिषद् का उपदेश पाया था। इसके अनुसार यह समस्त विश्व शिव ही है जो नित्य, शुद्ध, निरंजन, विभु और अद्वयानन्द है। यह अपने तेज से इस विश्व की सृष्टि करता है और ऐक्य पाकर भी भिन्नवत् भासमान है। सृष्टि क्रम के विशद वर्णन करने के बाद मुनि निर्विशेष ब्रह्मज्ञान के उपाय के रूप में अष्टांग योग की व्याख्या करते हैं। हठयोग रीति से आसन, दसविध यम-नियम, नाड़ी-शुद्धिपूर्वक प्राणायाम विधि, कुण्डलिनी का परिचय, धारणा, अठारह मर्मस्थान, देह के अवयवों में पंचभूत धारण का विवरण, खेचरी मुद्रा से प्राप्त योगफल इत्यादि का विवरण बताकर अंत में कहते हैं कि योग के अभ्यास से साधक निर्वाण पद का आश्रय पाकर कैवल्य को उपलब्ध करता है। इस तरह देखा जा सकता है कि नाथ-मत के सिद्धान्त तथा व्यवहार पक्ष का निरूपण इस उपनिषद् में मिलता है।

दर्शनः

इसमें अष्टांग योग के विभिन्न अंगों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने के बाद बताया गया है कि सब तीर्थ मानव देह में स्थित हैं। कहा गया है कि सिर में श्री पर्वत, ललाट में केदार, भ्रुव और नासिका के मध्य वाराणसी, कुच स्थान में कुरुक्षेत्र, हृदय सरोवर में प्रयाग, हृदय मध्य में चिदम्बरम और मूलाधार में कमलालय नामक पुण्यमय सरोवर है। जो इस आत्म-तीर्थ का परित्याग करके बाहर के तीर्थों में भटकता रहता है वह हाथ में रखे हुए बहुमूल्य रत्न को त्याग कर काँच को खोजता फिरता है।[७२] ऊपर उल्लिखित चिदम्बरम और तिरुआरूर जहाँ के (मन्दिर में कमलालय नामक सरोवर है) तमिलनाडु के प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान ही नहीं योग-स्थान भी हैं। इस ग्रंथ में प्रतिमा की कल्पना एवं पूजा के संबंध में बड़ी रोचक बात यह है कि योगी आत्मा में ही शिव के दर्शन करता है न कि प्रतिमा में। प्रतिमा की कल्पना केवल अज्ञानी के भावनार्थ होती है।[७३]

ध्यान-बिन्दुः

योगोपनिषदों में इसका स्थान महत्त्वपूर्ण है। इसमें योग संबंधी प्रक्रियाओं और रहस्यात्मक अनुभूतियों की जो अभिव्यक्ति देखी जाती है वह बहुत ही अनुपम है।[७४] इस ग्रंथ का आरम्भ ही कुछ विचित्र ढंग से होता है। इसका कथन है कि जितना भी बड़ा पाप कोई क्यों न करे, वह सारा-का-सारा ध्यान योग से विनष्ट हो जाता है।[७५] यह सचमुच अतिवादी तांत्रिक दृष्टिकोण का परिचायक है। इसके लेखक का आदेश है कि साधक प्रणव को ब्रह्म मानकर सदा-सर्वदा उसी का जप करे। हृत्पद्म कर्णिका के मध्य अंगुष्ठ मात्र ईश्वर को ॐकार के रूप में ध्यान करते ही समस्त सिद्धियाँ मिल जाती हैं। ब्रह्म में लय प्राप्त करने का मार्ग नादानुसंधान है।

इस उपनिषद् के अनेक श्लोक अक्षरशः अमनस्क, हठयोग प्रदीपिका आदि नाथ-सम्प्रदाय के ग्रंथों में पाये जाते हैं। यही नहीं, गोरक्षपद्धति नाम से जिस पुस्तक का सम्पादन हिन्दी अनुवाद सहित महीधर शर्मा ने किया था और जिसके प्रथम शतक को गोरक्षनाथ की प्रामाणिक रचना मानकर ब्रिग्स ने उसका अंग्रेजी अनुवाद अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में प्रस्तुत किया और जिसके आधार पर गोरक्षनाथ के विचारों का विश्लेषण एवं विवेचन किया, उसमें पचास से अधिक श्लोक इस उपनिषद् में प्राप्त होते हैं। ये श्लोक गोरक्ष कथित समझी जानेवाली योग-मार्तंड, योग-चूड़ामणि और भोगेश्वर योगी कृत योगरत्न-प्रदीपिका, योग-शास्त्र आदि में भी उद्धृत हैं। इन सबको देखने पर एक प्रश्न उठता है कि क्या गोरक्षनाथ के नाम पर प्रचलित नाथ-पंथी संस्कृत ग्रंथ ध्यान-बिन्दु आदि उपनिषदों से संकलित संकलन मात्र हैं अथवा इन उपनिषदों की रचना गोरक्षनाथ के परवर्तीकाल में हुई।

नाद-बिन्दुः

योगोपनिषदों में इसका काफी महत्त्व है। इसमें प्रणवोपासन तथा नादानुसंधान का बहुत ही सुन्दर स्वरूप अंकित किया गया है। सुपर्ण पक्षी के रूपक द्वारा ॐकार का गौरवपूर्ण वर्णन करते हुए लेखक ने कहा है कि 'अ'कार दक्षिण पक्ष है, 'उ'कार उत्तर पक्ष है, 'म'कार पुच्छ है और अर्ध मात्रा मस्तक है। निर्विशेष तथा निर्गुण ब्रह्म और उसके ध्यान का वर्णन करने के बाद लेखक बताते हैं कि ब्रह्मभाव में लीन होने में परमानन्द की प्राप्ति होती है। इसके अनुसार ब्रह्मस्वरूप प्रणवनाद में सबका लय होता है। ऐसी विलय स्थिति को प्राप्त योगी सभी अवस्थाओं एवं चिंताओं से छूटकर मुक्त हो जाता है। ध्यान देने की बात है कि इस उपनिषद् के श्लोक अमनस्क योग और हठ योग प्रदीपिका में भी पाये जाते हैं।

पाशुपत ब्रह्मः

यह पूर्व और उत्तर नाम से दो खंडों में विभाजित है। इसमें ज्ञान योग का प्रतिपादन है। हंस के रूप में परमात्मा की भावना, अंतर्याग, ज्ञान-यज्ञ और अश्वमेध आदि का भी विवरण इसमें मिलता है।

ब्रह्मविद्याः

आधुनिक युग के एक विद्वान के मत के अनुसार यह उपनिषद् महाभारतकालीन रचना है।[७६] प्रणव की चारों मात्राओं का वर्णन, सुषुम्ना नाड़ी के भेदन की क्रिया का विवरण इंसविद्या का निरूपण इसकी खास विशेषताएँ हैं। चोदक, बोधक, मोक्षक नामक तीन प्रकार के आचार्यों का विवरण इसमें दिया गया है।

मण्डल ब्राह्मणः

ज्ञान सहित यम-नियम आदि अष्टांग योग का निरूपण इस उपनिषद् का प्रधान विषय है। इसमें चार प्रकार के यम, नौ तरह के नियम, आसन, पूरक, कुम्भक, रेचक प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की व्याख्या निराले ढंग से की गयी है। नवचक्र, षडाधार, विलक्ष्य और व्योम पंचक संबंधी ज्ञान योगी बनने के लिए अनिवार्य बताया गया है। जिस श्लोक में इनका वर्णन सिद्धसिद्धान्तपद्धति में किया गया है वह इसमें भी है।[७७]

नाथ सम्प्रदाय के धर्म एवं दर्शन का विवेचन करने वाले ग्रंथ सिद्धसिद्धान्तपद्धति के कई श्लोकों के भाव एवं उनकी व्याख्या इसमें पाये जाते हैं। तारक तथा अमनस्क योग के लक्षण इसमें विस्तार से दिये गये हैं। अमनस्क सिद्धि के संदर्भ में लेखक का कथन है कि चिर समाधि से उत्पन्न ब्रह्मामृत का पान करके संन्यासी योगी परमहंस अवधूत बन जाता है।[७८] ऐसे अवधूत के दर्शन मात्र से सारा जगत् पावन हो जाता है। उसकी सेवा करनेवाला मूढ़ भी मुक्त हो जाता है। उसके कुल की एक सौ पीढ़ियाँ संसार रूपी सागर को पार करने

इस उपनिषद् के अनेक श्लोक अक्षरशः अमनस्क, हठयोग प्रदीपिका आदि नाथ-सम्प्रदाय के ग्रंथों में पाये जाते हैं। यही नहीं, गोरक्षपद्धति नाम से जिस पुस्तक का सम्पादन हिन्दी अनुवाद सहित महीधर शर्मा ने किया था और जिसके प्रथम शतक को गोरक्षनाथ की प्रामाणिक रचना मानकर ब्रिग्स ने उसका अंग्रेजी अनुवाद अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में प्रस्तुत किया और जिसके आधार पर गोरक्षनाथ के विचारों का विश्लेषण एवं विवेचन किया, उसमें पचास से अधिक श्लोक इस उपनिषद् में प्राप्त होते हैं। ये श्लोक गोरक्ष कथित समझी जानेवाली योग-मार्तंड, योग-चूड़ामणि और भोगेश्वर योगी कृत योगरत्न-प्रदीपिका, योग-शास्त्र आदि में भी उद्धृत हैं। इन सबको देखने पर एक प्रश्न उठता है कि क्या गोरक्षनाथ के नाम पर प्रचलित नाथ-पंथी संस्कृत ग्रंथ ध्यान-बिन्दु आदि उपनिषदों से संकलित संकलन मात्र हैं अथवा इन उपनिषदों की रचना गोरक्षनाथ के परवर्तीकाल में हुई।

नाद-बिन्दुः

योगोपनिषदों में इसका काफी महत्त्व है। इसमें प्रणवोपासन तथा नादानुसंधान का बहुत ही सुन्दर स्वरूप अंकित किया गया है। सुपर्ण पक्षी के रूपक द्वारा ॐकार का गौरवपूर्ण वर्णन करते हुए लेखक ने कहा है कि 'अ'कार दक्षिण पक्ष है, 'उ'कार उत्तर पक्ष है, 'म'कार पुच्छ है और अर्ध मात्रा मस्तक है। निर्विशेष तथा निर्गुण ब्रह्म और उसके ध्यान का वर्णन करने के बाद लेखक बताते हैं कि ब्रह्मभाव में लीन होने में परमानन्द की प्राप्ति होती है। इसके अनुसार ब्रह्मस्वरूप प्रणवनाद में सबका लय होता है। ऐसी विलय स्थिति को प्राप्त योगी सभी अवस्थाओं एवं चिंताओं से छूटकर मुक्त हो जाता है। ध्यान देने की बात है कि इस उपनिषद् के श्लोक अमनस्क योग और हठ योग प्रदीपिका में भी पाये जाते हैं।

पाशुपत ब्रह्मः

यह पूर्व और उत्तर नाम से दो खंडों में विभाजित है। इसमें ज्ञान योग का प्रतिपादन है। हंस के रूप में परमात्मा की भावना, अंतर्याग, ज्ञान-यज्ञ और अश्वमेध आदि का भी विवरण इसमें मिलता है।

ब्रह्मविद्याः

आधुनिक युग के एक विद्वान के मत के अनुसार यह उपनिषद् महाभारतकालीन रचना है।[७६] प्रणव की चारों मात्राओं का वर्णन, सुषुम्ना नाड़ी के भेदन की क्रिया का विवरण इंसविद्या का निरूपण इसकी खास विशेषताएँ हैं। चोदक, बोधक, मोक्षक नामक तीन प्रकार के आचार्यों का विवरण इसमें दिया गया है।

मण्डल ब्राह्मणः

ज्ञान सहित यम-नियम आदि अष्टांग योग का निरूपण इस उपनिषद् का प्रधान विषय है। इसमें चार प्रकार के यम, नौ तरह के नियम, आसन, पूरक, कुम्भक, रेचक प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की व्याख्या निराले ढंग से की गयी है। नवचक्र, षडाधार, विलक्ष्य और व्योम पंचक संबंधी ज्ञान योगी बनने के लिए अनिवार्य बताया गया है। जिस श्लोक में इनका वर्णन सिद्धसिद्धान्तपद्धति में किया गया है वह इसमें भी है।[७७]

नाथ सम्प्रदाय के धर्म एवं दर्शन का विवेचन करने वाले ग्रंथ सिद्धसिद्धान्तपद्धति के कई श्लोकों के भाव एवं उनकी व्याख्या इसमें पाये जाते हैं। तारक तथा अमनस्क योग के लक्षण इसमें विस्तार से दिये गये हैं। अमनस्क सिद्धि के संदर्भ में लेखक का कथन है कि चिर समाधि से उत्पन्न ब्रह्मामृत का पान करके संन्यासी योगी परमहंस अवधूत बन जाता है।[७८] ऐसे अवधूत के दर्शन मात्र से सारा जगत् पावन हो जाता है। उसकी सेवा करनेवाला मूढ़ भी मुक्त हो जाता है। उसके कुल की एक सौ पीढ़ियाँ संसार रूपी सागर को पार करने

में समर्थ हो जाती हैं। उस साधु के माता-पिता, पत्नी और संतान सब-के-सब सांसारिक बंधनों से छूट जाते हैं।[७६]

महावाक्यः

यह एक छोटा-सा उपनिषद् है। इसमें हंसविद्या द्वारा परमात्मा के आविर्भाव की बात कही गयी है। कांडान्तर में जो ज्योति-मंडल स्वरूप आदित्य है वही विद्या है, अन्य कोई विद्या विद्या नहीं। यही आदित्य ब्रह्म है। उसका निर्देश 'हंसः सोहम्' इस अजपा मंत्र से होता है। प्राण तथा अपान के अनुलोम-प्रतिलोम गति से वह विद्या पहचानी जा सकती है। इस विद्या के अभ्यास से साधक सच्चिदानन्द परमात्मा के दर्शन करता है और वह अनुभव करता है कि मैं ही अर्क, परम ज्योति, शिव हूँ, आत्म-ज्योति एवं सर्व-ज्योति हूँ। ऐसा अनुभूतिमान व्यक्ति ब्रह्म-सायुज्य प्राप्त करता है।

योग कुण्डलीः

इसके तीन अध्याय हैं। प्रारम्भ में चित्त का विश्लेषण कर लेखक यह समझाते हैं कि चित्त के वासना तथा प्राणरूपी जो दो भेद हैं उनमें से किसी एक को नष्ट कर देने से दूसरा स्वतः विनष्ट हो जाता है। फिर भी प्राण-जय का ही प्राधान्य है जो तीन उपायों के द्वारा सहज सुलभ होता है। वे तीन उपाय हैं- मिताहार, आसन और शक्ति चालन।[८०] इसमें सूर्य, उज्जायी, शीतली और भस्त्र नामक चार प्रकार के प्राणायाम की विधि तथा उनके फल बताये गये हैं जो हठयोग प्रदीपिका में भी वर्णित है। मूल बंध, उड्डियान बंध के लक्षण तथा योगी के लिए उनकी उपयोगिता का विवरण प्रस्तुत किया गया है। कुण्डलिनी के तीनों ग्रंथियों का भेदन करके सहस्रार में पहुँचने का तरीका भी स्पष्ट रूप से विवेचित किया गया है।

दूसरे अध्याय में सर्वसिद्धिप्रद खेचरी मुद्रा के अभ्यास की आवश्यकता तथा तीसरे में मेलन-मंत्र, पूर्णिमा-दृष्टि-विधि, गुरूपदेश की महत्ता, जीवन-मुक्ति और विदेह-मुक्ति इत्यादि पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

योग चूड़ामणिः

तमिल तिरुमंदिरम के आधुनिक व्याख्याकार दण्डपाणि देशिकर ने इसे गोरक्षनाथ कृत बताया है।[८१] महीधर शर्मा द्वारा सम्पादित और ब्रिग्स द्वारा अंग्रेजी में अनूदित गोरक्षशतक के प्रथम शतक के श्लोकों में लगभग सभी श्लोक इस उपनिषद् में हैं। यम-नियमों का छोड़कर योग के अन्य छः अंग, षोडशाधार, षट्चक्र, विलक्ष्य, व्योम पंचक, नाड़ी-विज्ञान, अजपा मंत्र की महिमा, कुण्डलिनी जागरण आदि का विवरण इसमें उपलब्ध होता है। नाथ योग के साधना पक्ष को समझने के लिए इसका अध्ययन करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। उपनिषद् में कहीं लेखक के नाम का निर्देश नहीं, परन्तु परम्परा इसे गोरक्षनाथ की कृति मानती आ रही है। योग-मार्तंड और योग-शास्त्र आदि ग्रंथों में इसके अनेक श्लोक ज्यों-के-त्यों मिलते हैं।

योग-तत्त्वः

योगोपनिषदों में सब दृष्टियों से श्रेष्ठतम यही है। नाथ-योग के सभी तथ्यों का बड़ा सुन्दर निरूपण किया गया है। इसके अनुसार मुमुक्षु के लिए ज्ञान और योग परम उपयोगी साधन है। योग के बिना ज्ञान ध्रुव मोक्षदायी नहीं हो सकता और बिना ज्ञान योग मोक्षप्रद नहीं।[८२] इसमें योग के मंत्र, लय, हठ और राज आदि चारों भेदों के सलक्षण विवरण देकर फिर हठयोग के आठों अंग, महामुद्रा महाबंध, महावेध, खेचरी, जालंधर, उड्डियान, मूलबंध, वज्रोली, अमरोली, सहजोली आदि का वैज्ञानिक विवेचन सूक्ष्मता के साथ किया गया है।[८३] योग-मार्गी साधक को चेतावनी दी गयी है कि अभ्यास काल में उत्पन्न हो सकने वाले आलस्य, कत्थन (अमित-भाषण),

धूर्तों का संग, स्त्री-लोलुपता, जैसी बाधाओं का निवारण कर लेना चाहिए।[८४] उपनिषदकार साधकों को उपदेश देते हैं कि योग-मार्ग के विघ्नों और प्रतिबंधों को दूर करने के लिए प्रणव मंत्र का जप सदा करते रहना बहुत आवश्यक है। इस ग्रंथ के अनुसार सगुण तथा निर्गुण ध्यान के दो भेद होते हैं। इनके अभ्यासी सिद्ध योगी अणिमादि सिद्धियों से सम्पन्न होकर अपनी इच्छा के अनुसार आचरण कर सकता है। वह सब लोकों में विचरण करने के अतिरिक्त वह देव, यक्ष, किन्नर, गंधर्व जो चाहे सो बन सकता है। परन्तु इन शक्तियों की प्राप्ति ही योगी का लक्ष्य नहीं इनमें उलझ जाने से वह पथ-भ्रष्ट हो जाता है; पुरुषार्थ-साधन में वह असफल हो जाता है। साधक को चाहिए कि वह हृदय-पद्म में प्रणव की उपासना करके परमपद को प्राप्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य माने। ध्यान देने की बात है कि यह उपनिषद् नाथ-योग का मर्म बड़ी खूबी के साथ समझाता है।[८५]

योग शिखाः

इसमें प्रायः योग तत्त्व में वर्णित सभी बातें दुहराई गयी हैं। किन्तु साथ ही कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो अन्य उपनिषदों में नहीं मिलतीं। ग्रंथ के आरम्भ में ही लेखक बताते हैं कि काम, क्रोध, भय, मोह, लोभ, तृष्णा, लज्जा, दुख, विषाद, हर्ष आदि से मुक्त जीव शिव कहाता है। उपर्युक्त दोषों को समूल नष्ट करने के दो ही उपाय हैं योग और ज्ञान। योगविहीन ज्ञान और ज्ञानविहीन योग दोनों व्यर्थ और निष्फल हैं। योग से ही चित्त के दोष मिटते हैं; अतः मोक्ष-प्राप्ति के लिए योग-मार्ग से बढ़कर श्रेष्ठ कोई दूसरा नहीं।[८६] योग की परिभाषा देते हुए इसमें कहा गया है कि अपान और प्राण, रज और रेतस, सूर्य और चन्द्र एवं जीवात्मा और परमात्मा का ऐक्य ही योग है।[८७] यह भी कहा गया है कि मंत्र, लय, हठ और राजयोग ये चार भूमिकाएँ हैं जिनका सम्मिलित रूप महायोग कहलाता है। प्रत्येक का स्वरूप लक्षण कुछ भिन्न ढंग से किया गया है। मंत्र योग का लक्षण यों है-

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः।
हंस हंसेति मंत्रोऽयं सर्वे जीवैश्च जप्यते।।
गुरु वाक्यात् सुषुम्नायाम् विपरीतो भवेज्जपः।
सोऽहं सोऽहमिति यः स्यान्मंत्र योगः स उच्यते।।

'ह'कार सूर्य और 'स'कार चन्द्र माना जाता है। सूर्य और चन्द्र का ऐक्य हठ कहाता है।[८८] हठ से प्राण में स्थिरता आती है और उससे लय का उदय होता है। लय से सुख, स्वात्मानन्द एवं परमपद प्राप्त होते हैं।

रज और रेतस का योग राजयोग है। यही शक्ति-शिव योग है। राजयोगी अणिमादि सिद्धियों से शोभित होता है। शिव-शक्ति का निकेतन यह मानव-देह है, बिन्दु, नाद ही महालिंग है। अतः योगोपायों से देह और मन को शुद्ध एवं पवित्र कर लेने पर योगी शिव-शक्ति के दर्शन कर आत्मलाभ पाता है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि शिव-शक्ति सामरस्य का तंत्र-मत का भाव योगमत में बहुत पहले ही ग्रहीत हो चुका था।

वराहः

पाँच अध्यायों में विभक्त इस उपनिषद् में तत्त्वों का विवरण दिया गया है। इनके अनुसार चौबीस तत्त्वों का ज्ञाता ब्रह्मविद् है। छत्तीस तत्त्वों का बोध जिसे हो गया है वह मुक्त है। समाधि साधन तथा नादानुसंधान वाले प्रकरणों में क्रमशः कहा गया है कि जिस तरह सलिल में सैंधव साम्य पाता है उसी तरह आत्मा में मन का विलीनीकरण समाधि है और समाधि-साम्राज्य के अभिलाषियों को नाद का अनुसंधान करना अनिवार्य है।[८९] इसमें राजयोग का कहीं उल्लेख नहीं।

इस उपनिषद् का कहना है कि गुदा और लिंगमूल के मध्य त्रिकोण के रूप में मूलाधार चक्र है जो बिन्दु रूप शिव का स्थान है, वहीं कुण्डलिनी नामक पराशक्ति प्रतिष्ठित है। उसी स्थान से वायु, वह्नि, बिन्दु, नाद, हंस, मन आदि उत्पन्न होते हैं। मूलाधार आदि छः चक्र शक्ति स्थान कहलाते हैं। कण्ड के ऊपर मूर्धा तक का भाग शांभव स्थान है। योगाभ्यास काल में उत्पन्न हो सकने वाले विघ्नों के निवारण के लिए प्रणव जप का आदेश लेखक देते हैं। ऐसा लगता है कि वेदांत के साथ योग-साधना को समन्वित करने का प्रयास इसके लेखक का अभिप्राय रहा है।

शाण्डिल्यः

शाण्डिल्य के योग संबंधी प्रश्नों के उत्तर में अथर्वण ऋषि ने अंगों सहित योग की जो व्याख्या की है, वही इस उपनिषद् का विवेच्य विषय है। इसमें दस यम, दस नियम, आठ आसन, तीन तरह के प्राणायाम, पंचविध प्रत्याहार, पंचविध धारणाएँ, दो प्रकार के ध्यान और समाधि का वर्णन है। यह दत्तात्रेय परम्परा में विकसित विचारधारा का ग्रंथ है जिसमें तांत्रिक तथा वैदिक भावों का समन्वित स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

हंसः

इसमें हंस-विद्या, अजपा जप, नादानुसंधान आदि का संक्षेप में विवरण है।

योगजः

शैव धर्म से संबंधित इस अप्रकाशित उपनिषद् में मंत्र, लय, हठ और राज आदि चारों प्रकार के योग का वर्णन मिलता है।

इनके अलावा और भी छोटे-मोटे योग ग्रंथ हैं जो उपनिषद् के नाम से विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों में प्रचलित हैं। ऊपर जिन-जिन ग्रंथों का परिचय दिया गया है उससे ज्ञात होगा कि गोरक्षनाथ के पूर्व ही योग, आगम, तंत्र और वैदिक धर्म तथा दर्शन को समन्वित रूप देने का यत्न आरम्भ हो गया था। यह समन्वय भावना भारतीय धर्म-सा धना का विशिष्टतम अंग है।

ऊपर उल्लिखित ग्रंथों में नाद-बिन्दु, ध्यान-बिन्दु, योग-तत्त्व, योग-चूड़ामणि, योग कुण्डली और योगशिखा विशेष महत्त्व के हैं, कयोंकि उनमें प्रतिपादित विषय ही नहीं प्रत्युत् उनके अनेक श्लोक गोरक्षकथित योग ग्रंथों में उद्धृत मिलते हैं। संभव है उनमें आये बहुत से श्लोक परवर्तीकालीन हो सकते हैं। जो भी हो, यह कहना सही होगा कि गोरक्षनाथ का उपदिष्ट योग प्रणाली इन उपनिषदों में प्रतिपादित योग, समयानुकूल परिवर्तित एवं परिवर्धित रूप मात्र है।

वैदिक युग में आर्येतर जन-समूह के निकट संपर्क में आने पर आर्यों में जादू-टोना, कृत्या, चमत्कार आदि में विश्वास धीरे-धीरे बढ़ने लगा था। अनेक वैदिक मंत्रों का विशेषकर अथर्व संहिता के मंत्रों का प्रयोग ऐसे कार्यों के लिए होने लगा था। वर्षा लाना, मनोवेग से संचरण करना, संतान पाना, शत्रुओं को पराजित करना इत्यादि काम्य कर्मों की सिद्धि के लिए विविध मंत्र काम में लाये जाने लगे। साम विधान नामक सामवेदीय ब्राह्मण ग्रंथ में ऐसे मंत्र संकलित हैं जो किसी को ग्राम से भगाने, शत्रु को मिटाने, प्रचुर धन-सम्पत्ति पाने, नाना प्रकार के उपद्रवों के निवारण करने या शांति स्थापना करने के लिए कतिपय अनुष्ठानों के साथ गाये जाते हैं।[६०] इसी तरह अन्य वेदों में से भी इस तरह के आभिचारिक प्रयोगों के लिए मंत्रों का संकलन किया गया। ऋग्विधान एक ऐसा संकलन है जिसमें इस तरह के कार्यों के लिए ऋग्वेदीय मंत्र जुटाये गये हैं। ऋग्विधान में कुछ ऐसी भी बातें हैं जिनका संबंध योग से है। उसके अनुसार योगी को प्रतिदिन नियमित रूप से प्रणव-ध्यान सहित प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए और तुरीय संध्या में अर्थात् आधी रात के समय भी योगाभ्यास करना

परमावश्यक है। योगी किसी उपयुक्त एकांत स्थान में अनुकूल आसन पर बैठकर, नयन मूँदे, हृदय-कमल में नारायण का आह्वन करके ॐकार का मौन जप करे। वह प्राणायाम द्वारा पवन को मूलाधार से सहस्रार को पहुँचाये, फिर मूलाधार में लाये। इस तरह के प्राण-योग द्वारा वह योगी परमतत्त्व से साक्षात्कार पाकर पावन बनता है।

योग सिद्धियों का वर्णन करते हुए ग्रंथकार बताते हैं कि होमादि करने से योगी वह दिव्य चक्षु प्राप्त करता है जिससे वह अनदेखे को भी देख लेता है। इसमें भक्ति पर भी बल दिया गया है क्योंकि भक्ति योग का ही एक भेद है, और भक्ति करने पर नारायण प्रसन्न होकर योगी को अपनाता है।

ऋग्विधान के रचना काल का ठीक पता नहीं लगता परन्तु इतना निश्चित है कि वह महाभारत काल के अनंतर कालीन रचना नहीं। उसमें योग, मंत्रोपासना एवं भक्ति का समन्वित रूप दृष्टिगोचर होता है।

आगे चलकर सूत्र ग्रंथों में भी यत्र-तत्र योगियों का थोड़ा बहुत विवरण मिलता है। उनसे ज्ञात होता है कि योग-धारा अविच्छिन्न गति से प्रवहमान रहा। सूत्र साहित्य में एक वैखानस स्मार्त सूत्र है जिसका रचना काल ई.सन् ४०० के आस-पास माना जाता है। किन्तु इसमें प्राप्त आचार-विचारों एंव धर्म-सम्प्रदायों का विवरण उससे भी प्राचीन काल के रूप का द्योतक है।[६१] इसमें ऐसे देव सायुज्यक तथा परकायप्रवेशी योगियों का उल्लेख है जिनका मृत्यु के बाद अग्निसंस्कार नहीं होता था।

उक्त सूत्र कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंस नामक मुमुक्षु वर्गों का विवरण देते हुए बताता है कि कुटीचक वे लोग थे जो प्रतिदिन आठ-ग्रास अन्न भिक्षा के रूप में ग्रहण करते थे और तत्त्व ज्ञान के अन्वेषी योगी-जन थे। बहूदक विदण्ड और कमण्डल धारण करते थे, काषाय वस्त्र पहनते थे, ब्रह्म ऋषि और दूसरे साधु वृत्ति वाले सात जनों के गृह में मांस, लवण, पर्यषितान्न का वर्जन कर, अन्य खाद्य पदार्थों की भिक्षा लेते और सदा मोक्ष-कामी रहते थे। हंस कहाने वाले भिक्षु गाँव में एक दिन और एक रात और बड़े-बड़े नगरों में पाँच रातें ठहरते थे। वे गोमूत्र और गोमय का आहार करते थे या मास-मास भर उपवास करते थे या नित्य चांद्रायण व्रत पालते थे। वे लोग सदा भ्रमणशील थे। परमहंस वृक्ष-मूल में, शून्यागार में या श्मशान में वास करते थे। उनका न कोई धर्म या न कोई अधर्म, न सत्य, न असत्य, न शुद्धि न अशुद्धि। वे अपने को द्वन्द्वों से परे मानते थे और सब प्राणी-वर्ग पर सम-भाव रखते थे। उन्हें न कंचन का मोह था न लोष्ठ से घृणा थी।

इन भिक्षुओं के जीवन-विधान के अवलोकन से प्रतीत होता है कि कुटीचक योग-मत के अनुयायी थे और परमहंस अवधूत तांत्रिक थे; बहूदक तथा हंस रहस्यवादी साधक थे। एक विद्वान ने लिखा है कि भ्रमणशील परमहंस भिक्षु प्राचीन काल के ब्राह्मण विरोधी भिक्षु-परम्परा के प्रतिनिधि थे जिनमें तांत्रिक योग का प्रारम्भिक स्वरूप दिखाई देता है।[६२]

इसी सूत्र में अन्यत्र निवृत्ति-मार्गी योगियों में सारंग, एकार्ष्य और विस्मरण नामक योगी की जीवनचर्या का वर्णन मिलता है। इनके भी अनेक उपभेद थे। उनमें कुछ केवल भावोपासना करते थे कि मैं विष्णु हूँ तो अन्य अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि- इन सोलहों का अभ्यास करते थे। भागंग नामक योगी आसनादि षडंग योग का अभ्यास करते थे तो विभागंग योगी अष्टांग योग का। एकार्ष्यों में दूरग कहलाने वाले नाड़ी साधन में निपुण थे। वे पिंगला नाड़ी के मार्ग से हृदय में स्थित सूर्यमण्डल में प्रविष्ट हो वहाँ तेजरूप पुरुष से संयोजित होने के बाद इड़ा नाड़ी से चन्द्रमण्डल में प्रवेश करके वहाँ विद्युल्लतावत् भासमान पुरुष से संस्पृक्त होते थे। यह नाड़ी वर्णन ध्यान देने योग्य है।

एक और प्रकार का भ्रूमध्यग संज्ञक योगी सुषुम्ना नाड़ी रंध्र से प्राण को भ्रूमध्य तक ले जाकर फिर उसे पादों के अंगूठे तक ले आता था। इस तरह प्राणों को अपने वश में करके कालजयी बनता था। कुछ और लोग इन सबको अनावश्यक समझते थे क्योंकि उनके विचार में आकाशवत स्थित सर्वव्यापक परमात्मा से भिन्न किसी वस्तु की सत्ता विश्व में है ही नहीं अतः द्वैत नहीं। ऐसी अवस्था में अभेद स्वतः सिद्ध है। फिर तो ऐक्य स्थापन का प्रश्न ही नहीं उठता।

विविध सारणा या मुद्राओं के अभ्यास करने वाले योगी विसरण कहलाते थे। इनमें भी अनेक भेद थे। कोई काय-क्लेश से, कोई किसी-न-किसी तरह के ध्यान से, कोई वायु-जय से, आत्मा-परमात्मा के ऐक्य संभव करने के प्रयत्न में लगे थे। सूत्रकार ने उनकी आचारहीनता पर खीझकर उन्हें पशु कहा है और लोगों से कहा कि उन्हें उन अनाचारी योगियों से दूर रहना बहुत जरूरी है। पता नहीं ये विसरण कौन थे। संभवतः सूत्रकार ने अवधूत संन्यासियों को विसरण शब्द से याद किया हो।

वैखानस स्मार्त सूत्र से विदित होता है कि कुटीचक, परमहंस एवं विसरण उन योगियों के सम्प्रदाय के सदस्य थे जिनमें षडंग या अष्टांग योग की साधना चालू थी। वे शायद अवैदिक, वर्णाश्रम विरोधी एवं तांत्रिक मत के थे। यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि वे लोग योग तथा तंत्र साहित्य के उदय के पूर्व विद्यमान थे।

इतने विवरणों से बोध होगा कि सूत्र वाङ्मय के निर्माण के पूर्व ही तांत्रिक योगियों की परम्परा पनप चुकी थी और उनमें कुछ ऐसे विश्वास बद्धमूल हो चुके थे जो वेदपूर्व वेदेतर जन-समुदाय में वर्तमान थे। धीरे-धीरे योग तत्त्वों का समावेश वैदिक, अवैदिक एवं वेदेतर साहित्य में होने लगा क्योंकि भारतीय विचार-धारा सदा विभिन्न विरोधी भावों में समन्वय बढ़ाने का प्रयत्न करती रहती है। घोर-से-घोर और अमंगल-से-अमंगल को सौम्य एवं मंगलमय रूप देने का सतत प्रयत्न यहाँ की मिट्टी की विशेषता है। अतः योग के विविध अभ्यासों में जो लोक-हित के विरुद्ध थे, सुधार और परिवर्तन द्वारा उन्हें अपनाने की प्रवृत्ति बलवती रही है।

वैदिक स्मृति-ग्रंथों में योग का खण्डन-मण्डन दोनों देखा जाता है। मनु का विचार है कि यदि मनुष्य अपने इन्द्रियों और आत्मा पर यथोचित संयम रखे तो योगाभ्यास के कष्टदायक क्रिया-व्यापारों में लगे बिना लक्ष्य की सिद्धि प्राप्त कर सकता है। पर योग की प्रशंसा करते हुए वसिष्ठ ने कहा है कि मोक्ष की प्राप्ति न वेद-पारायण से होती है न यज्ञयागादि क्रियाओं से; परन्तु वह तो केवल योग से ही संभव है।[६३] विष्णु-स्मृति योग की महिमा का वर्णन करते हुए बताती है कि ध्यायी ध्यान-योग से सब कुछ पा सकता है। ध्यायी का लक्ष्य क्षुद्र सिद्धियों की प्राप्ति मात्र नहीं किन्तु उससे आगे की मुक्ति ही है। इसलिए वह क्षर को छोड़कर अक्षर का ही सदा ध्यान करता रहता है।

भारतीय साहित्य में वेद समान मान्यता प्राप्त इतिहास ग्रंथ महाभारत है। यह पंचम वेद ही नहीं, उन वेदों से भी श्रेष्ठ है क्योंकि इसे पढ़ने के बाद वेदों के अध्ययन की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।[६४] उसे वर्तमान रूप ई.सन् २०० और ई.सन्४०० के बीच में मिला।[६५] इसी का एक अंग है 'श्रीमद्भगवद्गीता' जिसके ७०० श्लोकों में श्रीकृष्ण का अर्जुन को दिया गया जीवन-दर्शन संबंधी अद्भुत संदेश है। गीताकार ने उसे योग-शास्त्र संज्ञा दी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय जीवन को अत्यधिक प्रभावित करने वाले ग्रंथों में गीता का कितना गौरवपूर्ण स्थान है। प्रायः सभी धर्माचार्य एवं मेधावी पुरुषों ने इसके आधार पर धर्म और दर्शन की व्याख्या की है। गीता के संबंध में यह मान्यता है कि वह सभी मुख्य-मुख्य उपनिषदों का सारभूत रचना है। उसमें ब्रह्म विद्या का क्रमिक तथा बोधगम्य विवेचन है। गीता में अनेक स्थानों में सांख्य तथा योग का उल्लेख किया गया है। स्वयं भगवान् कृष्ण बताते हैं कि हमने विवस्वान को यह योग उपदेश रूप प्रदान किया।

संजय की भी साक्षी है कि मैंने व्यासदेव की कृपा से यह योग पाया।[६६] इससे सिद्ध है कि गीता में विवेचित योग अत्यंत प्राचीन है।

गीता के अनुसार 'कर्म की कुशलता', 'समत्व', 'कर्मफल का त्याग', 'भगवान् के चरणों में प्रपत्ति अथवा शरणागति' आदि योग शब्द से सूचित किये जाते हैं। गीता में योग शब्द किसी निश्चित पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है जैसे पातञ्जल में हुआ है। कर्मयोग (५-१) में सांख्य योग से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। बुद्धि योग, भक्ति योग आदि में योग का अर्थ है संग। इसी अर्थ में योग शब्द का व्यवहार गीता में सर्वत्र हुआ है। संभवतः गीताकार पतञ्जलि से पूर्व हुए थे अतः उनसे परिचित नहीं थे।[६७] अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भगवान् द्वारा उपदिष्ट योग न पतञ्जलि का चित्तवृत्ति निरोध वाला योग है न सिद्धिप्रद तांत्रिक योग है, न जीव को शिवत्व प्रदान करने वाला है, किन्तु समन्वयवादी भगवत् चरणारविन्द में भक्ति सहित सर्वात्म समर्पण है। संसार में रहते हुए उसके सद्-असद् व्यापारों से अपने को अलग रखना ही गीता के निष्काम कर्मयोग का अंतिम लक्ष्य है। सांख्य शास्त्र में ज्ञान के द्वारा प्रकृति एवं पुरुष के तत्त्वों को अलग करने का जो उपाय बताया गया है उसी के आधार पर गीता ने अपने सिद्धांत की व्याख्या प्रस्तुत की है। जीवन के समस्त व्यापारों को यज्ञवत् समझकर उनके शुभाशुभ कर्म-फलों को भगवान् के चरणों में भक्ति भाव से अर्पण करने से व्यक्ति को कर्म-फल प्रभावित नहीं कर सकते और ईश्वर के अनुग्रह से जीव लोक माया में लिप्त होने से बच जाता है। इससे प्रतीत होता है कि गीता का योग षडंग या अष्टांग योग से भिन्न रहस्यानुभूतिपरक भक्ति-योग है।

महाभारत के मोक्ष-धर्म में दो प्रकार की योगचर्या की चर्चा मिलती है। दोनों में काफी अन्तर है। अनेक वर्षों तक एक पैर पर निश्चल खड़े रहना और ऐसा सहनशील होना कि पक्षी उनकी जटा पर भले ही नीड़ बनाये पर वह उन्हें कभी कष्ट नहीं देगा, इस प्राचीन योगानुशासन के अनुयायी एक वर्ग के थे। दूसरे, आसन और प्राणायाम को जीवनचर्या में स्थान देने वाले थे। प्रथम प्रकार के योगाभ्यासी की योग-साधना कालांतर में असंस्कृत तथा असभ्य माना गया। दोनों तरह के योगाभ्यासियों के लक्ष्य में भेद था। एक पाद पर खड़े होने वाला तपस्वी अलौकिक शक्तियों के सम्पादन का आकांक्षी था जबकि प्राणायाम पर बल देने वाला योगी भवपाश के विच्छेदन को जीवन-लक्ष्य मानता था। उसके विचार में योग-सिद्धियाँ तुच्छ और क्षणिक होती हैं। दोनों ईश्वरवादी थे परन्तु प्रथम वर्ग का योगी भगवत् साक्षात्कार की अपेक्षा अलौकिक चमत्कारों को प्राप्त कर स्वर्गिक सुखों का अनुभव करना चाहता था। दोनों 'अपुनर्भव' की कामना करते थे, पर प्रथम वर्ग वाले योगी का सारा प्रयत्न योगैश्वर्यों से उपलब्ध करने के लिए होता था; परन्तु दूसरे प्रकार के योगी योगैश्वर्यों से विभूषित होने पर भी मुक्ति या केवलत्व को परम श्रेष्ठ एवं प्राप्य समझते थे। बुद्धि, मन, इन्द्रिय और विश्वात्मा में एकत्व की अनुभूति उसका लक्ष्य था।[६८]

योगी का ध्यान नित्य-पुरुष पर केन्द्रित रहता है। समाधि की स्थिति में वह निर्वात-दीप या पर्वतशिखर के समान स्थिर हो जाता और ब्रह्मानुभूति प्राप्त करता है। फिर जब शरीर का पात होता है तब वह केवल में प्रवेश कर अनन्त विश्राम पाता है। यही योग है जिससे बढ़कर दूसरा योग नहीं।[६९]

महाभारत के एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि जो योगी काम, क्रोध, लोभ, भय और स्वप्न- इन पाँच दोषों को मिटा देता है वह उसी तरह 'तत्पदम्' को प्राप्त करता है जिस तरह मीन जाल को काटकर बंधन से मुक्त होता है। गुद, कण्ठ, सिर, हृदय, नयन, कान, नासिका आदि शरीर के अन्यान्य अवयवों में संवरण करने वाली आत्मा से युक्त योगी पर्वत सम सुकर्म या कुकर्म के फल राशि को विनष्ट करके मोक्ष-पद पाता

है।

महाभारत में वर्णित पाशुपत योगी तथा पाँचरात्र वैष्णव योगी सात प्रकार की धारणाओं से पंच महाभूतों, मन, अहंकार, और बुद्धि पर विजय पाकर अंत में 'प्रतिभा' की अवस्था में पहुँचता है और इस स्थिति में वह गुणातीत हो कई प्रकार के चमत्कार साधने में निपुण बन जाता है। प्रतिभा, उपसर्ग, आसन, प्राणायाम, नाड़ी-शोधन, भ्रूमध्य में दृष्टि का स्थिरीकरण इत्यादि योग संबंधी पारिभाषिक शब्दावली का व्यवहार देखकर यही लगता है कि पतञ्जलि के पूर्व ही योग-प्रक्रिया का काफी विकास हो चुका था।

फिर भी, योग को व्यवस्थित रूप प्रदान कर उसे विशिष्ट दर्शन के पद पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय उस पतञ्जलि को प्राप्त है जिन्होंने योग-सूत्र की रचना की थी। निस्संदेह योग-सूत्र इस विषय का प्रामाणिक शास्त्र-ग्रंथ है। महर्षि पतञ्जलि के स्थिति-काल के संबंध में तरह-तरह के मत-मतांतर हैं। तो भी यह मानना सही होगा कि वे शुंगवंशीय महाराजा पुष्यमित्र के समकालीन थे; अतः उनका समय ई.सन् दूसरी शती था।[१००] विद्वानों में यह मान्यता है कि सूत्रकार ने प्रथम तीन पाद ही लिखे थे, चौथा पाद पीछे किसी से लिखे जाकर जोड़ा गया।[१०१] जो हो, जिस रूप में योग-सूत्र आज हमें मिला है, वह एक समग्र ग्रंथ प्रतीत होता है। उस पर अनेक मनीषी विद्वानों ने भाष्य, टीका, वृत्ति, वार्तिक आदि लिखकर उसकी गरिमा को बढ़ाया है।[१०२] योग-सूत्र में कुल मिलाकर १६५ सूत्र हैं जो क्रमशः समाधि-पाद, साधना-पाद, विभूति-पाद और कैवल्य-पाद नाम से चार पादों में विभक्त है।[१०३]

पतञ्जलि ने चित्त-वृत्ति के निरोध को योग माना है। अविद्या के कारण अनात्मा में आत्मा का आरोप किया जाता है। यदि आत्मा से अनात्मा का पृथक्करण हो जाये तो अविद्याजनित समस्त भ्रम-जाल टूट जाता है तथा दुख-समुदाय का विनाश हो जाता है। दुख-निवृत्ति ही योग का अन्तिम लक्ष्य है। इसी का अन्य नाम कैवल्य है।

कैवल्यावस्था में पहुँचने के लिए चित्त-शुद्धि अनिवार्य है। चित्त-शुद्धि की प्राप्ति के उपाय के रूप में सूत्रकार ने आठ योगांगों के अभ्यास का विधान किया है। ये आठ योगांग हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनमें प्रथम पाँच बाह्य अनुष्ठान हैं और अन्तिम तीन आभ्यंतर हैं। इस योग के विवेचन में पतञ्जलि ने अपने पूर्वाचार्यों का अनुकरण किया है। यह स्पष्टतः विदित होता है कि सूत्रकार ने सांख्य के तत्त्व दर्शन की नींव पर योग दर्शन का महल खड़ा किया है।

पतञ्जलि ने अंतिम पाद में पाँच प्रकार की सिद्धियों की चर्चा की है।[१०३] शास्त्रकार पतञ्जलि ने उक्त सिद्धियों का विवरण देने के साथ-ही-साथ साधक को चेतावनी दी है कि जो इनमें उलझकर वास्तविक लक्ष्य से भटक जाता है वह लक्ष्य-भ्रष्ट अवश्य ही नष्ट हो जाता है। इस तरह देखा जाता है कि योग-दर्शन का लक्ष्य केवल-भाव में अवस्थित होना है। प्रणव जप के प्रसंग में सूत्रकार ने प्रणवः ईश्वर वाचकः कहकर ईश्वर की जो कल्पना की है वह केवल साधना में सफलता पाने की ओर लक्ष्य करके की गयी है। इस ईश्वर शब्द के प्रयोग को देखकर कुछ विद्वान लोग समझते हैं कि पातञ्जल दर्शन ईश्वरवादी आस्तिक दर्शन है किन्तु यह विचार भ्रामक है। कारण यह है कि योग-सूत्र का ईश्वर परमात्मा नहीं, न वह विश्व का शासक है न नियामक। वह विश्व के असंख्य पुरुषों में एक विशिष्ट पुरुष है जिसे क्लेश, अविद्या, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष, मोह आदि अवगुण स्पर्श नहीं कर पाते। कर्म और उसका फल उस पुरुष को छू नहीं सकते। वह पुराण-पुरुष काल से बाधित नहीं। योग-दर्शन के ईश्वर में जीव न अनन्यता का अनुभव कर सकता है न ऐक्य पा सकता है। इसलिए सांख्य-दर्शन की भाँति योग-दर्शन भी निरीश्वरवादी है। यह सांख्य के मुकाबले में ईश्वरवादी इसीलिए

कहलाता है कि उसमें जिस ईश्वर का उल्लेख है वह साधक के हृदय में प्राणस्वरूप में विद्यमान है और उसके सतत जप एवं ध्यान करने से साधक को अपने अंतरतम में उतरने में सहायता मिलती है। इस तरह साधक को आत्म-ज्ञान उपलब्ध होता है।

पतञ्जलि के ग्रंथ में नाड़ी-शोधन, योग-मुद्रा, कुंडलिनी-शक्ति का जागरण, शिव-शक्ति का सामारस्य आदि का कहीं उल्लेख तक नहीं। इस दृष्टि से पातञ्जल -योग नाथ-योग से भिन्न है। केवल अष्टांग योग का विवेचन दोनों में समान है।

भारत में तांत्रिक मत का उदय कब हुआ, इसके बारे में विश्वसनीय प्रमाण के अभाव में कुछ निश्चित रूप से कह सकना कठिन है। पर, इतना तो अवश्य माना जा सकता है कि तांत्रिक साधना काफी पुरानी है। वैदिक युग में जादू-टोना मिश्रित आचार-विचारों का प्रभाव देश के नाना भागों में विशेषकर आर्येतर जन समूह में अधिक मात्रा में था। उस युग में ऐसे असंख्य रहस्य साधना-प्रधान सम्प्रदाय थे जिनमें विविध आर्येतर देव-देवियों की पूजा और उपासना विकसित हो चुकी थी। उनमें गहन तत्त्व-चिन्तन नगण्य था किन्तु बाह्याचार की प्रधानता थी। यह कहना अनुचित न होगा कि उस समय का समाज विशेष अनुष्ठानपरक था।

विद्वानों की मान्यता यह है कि ऋग्वेद का रात्रि-सूक्त देवी की तांत्रिक उपासना की ओर संकेत करता है। ऋग्वेद में उन चमत्कारों का भी समुचित वर्णन पाया जाता है जिसका अत्यधिक प्रभाव तांत्रिक युग के जन-जीवन पर पड़ा हुआ दीखता है, यद्यपि इन्हें आसुरी माया कहकर इस प्रवृत्ति के प्रति घृणा प्रकट की गयी थी।[१०५]

वैदिक यज्ञशालाओं की रचना में ब्रह्माण्ड का स्थल रूप ही कल्पित किया गया था। वेदी के नाना भागों में अन्यान्य संरक्षक देवों का आह्वन होता था। उसी से परवर्तीकाल में विकसित अण्ड-पिण्ड की भावना का आरम्भ माना जाता है। पुरुष-सूक्त इसका सबल प्रमाण है। उसमें कहा गया है कि इस पुरुष के मन से चन्द्र उत्पन्न हुआ, नयनों से सूर्य प्रकट हुआ, मुख से इन्द्र तथा अग्नि, तथा प्राण से वायु की उत्पत्ति हुई। उसकी नाभि से अंतरिक्ष निकला, पादों से पृथ्वी और कानों से दिशाएँ निकलीं।[१०६] इस प्रकार, समस्त लोकों के आविर्भाव का मूल कारण वह पुरुष ही था। वैदिक साहित्य में अन्य स्थलों में भी इस तरह के विचारों की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। बाह्य यज्ञ-यागादि से धीरे-धीरे एक और नया विधान जिसे मानस-पूजन कहते हैं, विकसित हुआ।

ऐसा लगता है कि उस समय के जन-समाज में यह विश्वास दृढ़ था कि यज्ञ-यागादियों के अतिरिक्त अन्य उपाय भी हैं जिनसे मनोवांछित देवता प्रत्यक्ष किया जा सकता है। अण्ड ही नहीं पिण्ड में भी देवताओं का आह्वान, पूजन आदि सम्पन्न हो सकता है। इस प्रकार के विचारों का फल यह निकला कि बाह्य याग-यज्ञ अंतर्पूजा के रूप में बदलने लगा। इस परिवर्तन क्रम की मध्य-स्थिति को शतपथ ब्राह्मण इन शब्दों में व्यक्त करता है- 'यह कहना चाहिए कि यह देवयाजी है और यह आत्मायाजी है। आत्मायाजी वह है जो जानता है कि मैं देवता को यह वस्तु अर्पण करता हूँ।'[१०७]

अण्ड-पिण्ड की एकता की सूचना वैदिक साहित्य में अन्यत्र भी मिलता है।[१०८] काम-तत्त्व, प्राण सिद्धान्त, मिथुन भावना, शब्द-साधन, आदि का विवेचन भी उक्त साहित्य में यत्र-तत्र मिलता है। यह आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि जैसे पहले भी बताया जा चुका है, वैदिक भाव-धारा में योग और तंत्र का समावेश हो चुका था।

यद्यपि वेदों में इन्द्र, वरुण, अग्नि, सोम, सूर्य आदि भिन्न-भिन्न देवताओं की स्तुतियाँ पायी जाती हैं तो भी इस बहुदेववाद के पीछे एक ही परम सत्ता का भान ऋषियों को था। इसे **'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति'**

घोषित कर सूचित किया था। बाद को ये देव समूह तीन प्रधान देव- शिव, विष्णु और ब्रह्मा में समीकृत हुए। अभिधान चाहे जो हो यह 'एक' ही सबमें निहित सत्ता बना। अतः मंत्रों के रहस्यों को जानने वाला मंत्र-वेत्ता इस सत्ता या शक्ति को जानता था। यही शक्ति अण्ड-पिण्ड सर्वत्र व्याप्त है। उसी के भय से वायु चलता है; उसी के भय से सूर्य का उदय-अस्त होता रहता है; उसी के भय से इन्द्र और अग्नि अपने-अपने कर्म में रत रहते हैं; और उसी के भय से यम सब का नियमन करता है।

इस प्रकार की उपासना पद्धति का विकास गुरु-शिष्य परम्परा में पल्लवित हुआ। इस पद्धति का विवरणात्मक साहित्य तंत्र नाम से प्रख्यात हुआ। जिससे ज्ञान का विस्तार होता है वह तंत्र है, इस तरह इस तंत्र शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ निकाला गया। तंत्र के अन्य अभिधान आगम और संहिता हैं। इस तंत्र सम्प्रदाय के उन्नायकों ने अपनी साधना के तत्त्वों के निरूपण के लिए वैदिक वाङ्मय को अपूर्ण मानकर अपनी ओर से आत्मानुभूति के आधार पर नये शास्त्र-ग्रंथों का निर्माण किया और उन्हें आगम संज्ञा दी। प्रायः सभी आगम शिव-पार्वती या पार्वती-शिव संवाद के रूप में रचे गये हैं। यद्यपि तंत्र, आगम और संहिता पर्यायवाची शब्द हैं तो भी व्यवहार के क्षेत्र में बहुधा शैव तंत्र आगम कहलाते हैं; वैष्णव तंत्र संहिता कहलाते हैं और शाक्त तंत्र 'तंत्र' माने जाते हैं। इन शब्दों के प्रयोग में एकरूपता भी नहीं, क्योंकि शिव संहिता, वैष्णव आगम आदि शब्दों का प्रयोग भी देखा जाता है।

आगम साहित्य की रचना स्वतंत्र रूप में हुई परन्तु कालांतर में उन्हें वेदों से संबंधित करने का प्रयास भी अवश्य हुआ। यद्यपि गौतम ऋषि ने घोषित किया है कि'वेदो हि धर्ममूलम्' अर्थात् वेद ही धर्म का मूल उत्स है, तो भी हारीत मुनि ने कहा है कि 'श्रुति प्रमाणको धर्मः। श्रुतिश्च दुविधा। वैदिक तांत्रिकी च' अर्थात् वेद ही धर्म के लिए प्रमाणभूत हैं; वेद भी दो प्रकार के हैं- एक वैदिक, दूसरा तांत्रिक। इसका कारण हे कि परमेश्वर ने ही इन दोनों को प्रकट किया। तांत्रिक युग में तंत्र-शास्त्र के आचार्यों ने अपौरुषेय वेदों को परमेश्वर द्वारा अभिव्यक्त माना और तदनुसार प्रचार भी किया। तमिलनाडु के प्रसिद्ध शैवाचार्य हरदत्त शिवाचार्य ने बताया है कि 'वेदाः प्रमाणमिति संङ्गिरमाण एव दिव्यं तवागममुपैति जनः प्रमाणम्।' सूर्य भट्ट ने भी यह कहकर कि 'नहि वेदागमयोत्यन्त विरोधः, पर कर्तृकत्वाविशेषात्' उपर्युक्त विचार को पुष्ट किया है। अप्पैय दीक्षित का मत है कि वेदार्थ सार-संग्रहात्मकानां क्वचिदपि दोष-शंका-कलुषरहितानां शैवागमानामेव। तमिलनाडु के नाथ-सिद्ध तिरुमूलर ने कहा है कि वेद सामान्य और आगम विशेष ज्ञान के मूल हैं।[१०६] आचार्य यामुन ने आगम-प्रामाण्य नामक अपनी विशिष्ट रचना में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि आगम वेद विरुद्ध नहीं, वेदानुसारी हैं। **(यहां एक लाइन छूटा है जोड़ना है।)**

माना जाता है कि प्रमुख शैव आगमों की संख्या बानवे है। वैष्णव संहिताओं की एक सौ आठ और शाक्त तंत्रों की सत्तर। परन्तु आजकल की खोजों से पता चलता है कि इनकी संख्या इनसे बहुत अधिक है। इनके अतिरिक्त विभिन्न व्याख्या ग्रंथों में कई ऐसे आगमों से उद्धरण दिये गये हैं जिनका सही पता नहीं मिलता। प्रत्येक आगम चार पादों में विभक्त है जो विवेक अथवा ज्ञान-पाद, योग-पाद, क्रिया-पाद और चर्या-पाद कहलाते हैं। आगमों में कहा गया है कि परमात्म-ज्ञान ही ज्ञान है, उसी से मुक्ति मिलती है।[११०] चंचल चित्त को स्थिर करके उसे ईश्वर से बाँधे रखना ही योग है।[१११] देवालय के लिए उपयुक्त भूमि का चुनाव, उसका शोधन और शुद्धीकरण, देवप्रतिमाओं का निर्माण, मूर्ति की प्रतिष्ठा आदि क्रिया है।[११२] नित्य-पूजा, पर्वोत्सव आदि के लिए उचित सामग्रियों को जुटाना, देवालय को साफ-सुथरा रखना, पुष्प-वन से पुष्पों का चयन करना, माला गूँथना आदि आवश्यक कर्म चर्या कहलाता है।[११३] आगम साहित्य में दीक्षा प्रदान करने वाले गुरु का स्थान और

महत्त्व सर्वोपरि माना गया है। यहाँ तक कि गुरु और ईश्वर में भेद नहीं। ईश्वर साधक की परिपक्व अवस्था को जानकर गुरु रूप में आते हैं और साधक का पथ-प्रदर्शन करते हैं। आगम शास्त्र के योग प्रकरण में अष्टांग योग मोक्ष के साधन के रूप में स्वीकृत हुआ है। कुण्डलिनी जागरण के उपायों का विवरण तंत्र साहित्य की देन है। गुरु-शिष्य-वाद, कुण्डलिनी-जागरण, शिव-शक्ति सामरस्य सिद्धांत आदि की विस्तारपूर्वक चर्चा इस वाङ्मय की विशेषता है।

भारत में वैष्णव-सम्प्रदाय के विकास में पाँचरात्र तथा वैखानस संहिताओं का योगदान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। पंचरात्र मत से संबंधित संहिताओं की कुल संख्या लगभग २०८ है। उनमें से अधिकतर रचनाएँ गोरक्षनाथ के परवर्तीकालीन हैं। किन्तु अहिर्बुध्न्य, ईश्वर, पौष्कर, जयाख्या, पद्म, हयशिरस् परम जैसी संहिताएँ गोरक्षनाथ के युग के पूर्व की हैं अतः प्राचीन हैं।

परम संहिता के दसवें अध्याय में अष्टांग योग का विवरण **(यहाँ छूटा है जोड़ना है)** योग है और दूसरा कर्म-योग। ज्ञान-योग प्रकरण में प्राणायाम, समाधि आदि योगांगों का विवेचन किया गया है। ब्रह्म ध्यान में लीन योगी अपने को निश्चित रूप से सांसारिक बंधनों से छुड़ाकर मुक्त बन जाता है। अतः उक्त संहिता के अनुसार योग बंधन-मुक्ति एवं ब्रह्म-प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय है।[११४] विहगेन्द्र संहिता के बारहवें अध्याय में प्राणायाम के महत्त्व और उपादेयता का विशद वर्णन किया गया है। इसी तरह विष्णु संहिता के तेरहवें अध्याय में यम-नियम को छोड़कर योग के अन्य छः अंगों का विवरण मिलता है। संहिताकार के विचार में योग के षडंगों के अभ्यास से साधक भगवद्भक्ति का पात्र बनता है। अतः इसे भगवद्-योग की संज्ञा दी गयी है। इन सबसे प्रतीत होता है कि वैष्णव मत के विकास के प्रारम्भिक काल में मंत्र, तंत्र के साथ षडंग अथवा अष्टांग योग परम-पुरुष नारायण की प्राप्ति का सबल साधन माना जाता था। जयाख्या संहिता योगी के लिए चार प्रकार के आसनों का विधान करती है जो पर्यंक, कमल, भद्र और स्वस्तिक नाम से जाने जाते हैं। इन योगासनों का विवरण भी वहाँ मिलता है। इसके अनुसार प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान एवं धारणा का प्रमुख प्रयोजन मन की एकाग्रता है। जयाख्या बताती है कि योग के तीन भेद हैं जो क्रमशः प्राकृत, पौरुष तथा ऐश्वर्य कहलाते हैं। इन तीन शब्दों का सही अर्थ ज्ञात नहीं होता।[११५] एक और प्रकार के योग का उल्लेख भी इस ग्रंथ में मिलता है जिसके तीन भेद हैं; वे हैं- सकल, निष्कल और विष्णु। सकल अथवा सविग्रह योग में योगी परमात्मा की किसी कल्पित मूर्ति पर अपने ध्यान को केन्द्रित करता है। निष्कल योग में योगी परब्रह्म का ध्यान करता है। ऐसा करते-करते अन्त में वह आत्म-स्वरूप से भली-भाँति अवगत हो जाता है। इस तरह सकल-निष्कल योग द्वारा योगी ब्रह्मरंध्र में स्थित होकर अपने स्थूल शरीर को तज कर परम-तत्त्व वासुदेव में लीन हो जाता है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि जयाख्या सशरीर जीवन-मुक्तावस्था को असंभव बताता है। अहिर्बुध्न्य में विभिन्न नाड़ी संस्थान, कुण्डलिनी जागरण, यम-नियमादि योग के आठ अंग, नादानुसंधान आदि का विस्तार से विवरण दिया गया है। इनसे स्पष्ट विदित होता है कि परम-तत्त्व वासुदेव में विलय पाने के लिए पाँचरात्र संहिताओं ने योगाभ्यास को एक अनिवार्य साधन के रूप में स्वीकार किया था।

वैखानस मत के उपलब्ध शास्त्र-ग्रंथों में मरीचि प्रोक्त विभानार्चना कल्प महत्त्वपूर्ण है। उसके ९६ से १००वें पटल तक के अध्यायों में भगवद्प्राप्ति के मुख्य उपाय के रूप में यम नियमादि आठ योगांगों की व्याख्या की गयी है। योग शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए मरीचि का कथन है-

जीवात्म परमात्मनो योगोयोग इत्यामनन्ति।

अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा का योग ही योग कहा जाता है। यह ग्रंथ योग के आठ अंगों का परिचय

यों देता है: 'यम नियमऽऽसन प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान धारण समाधय इति योगांगानि।' मरीचि के अनुसार यम दस प्रकार के हैं; वे हैं- अहिंसा, सत्य, अचौर्य गृहस्थ का स्वदार-निरति एवं अन्यों से मैथुन-त्याग, दया, आर्जव, क्षांति, धैर्य, मिताशन और शौच। तप, संतोष, आस्तिक्स, दान, विष्णु-पूजा, वेदार्थ श्रवण, कुत्सित-कर्म करने में लज्जा का अनुभव, गुरु के उपदेश में श्रद्धा, मंत्राभ्यास, होम- ये ही दस नियम हैं। इस प्रकार के यम-नियम के पालनकर्ता ही योग का अधिकारी है। इस रचना में नौ प्रकार के आसनों का वर्णन है। उन नौ आसनों के नाम हैं- ब्राह्म, स्वस्तिक, पद्म, गोमुख, सिंह, मुक्त, वीर, भद्र और मयूर। इनमें प्रथम तीन उत्तम, मध्य तीन मध्यम और अन्तिम तीन अधम बताये गये हैं। व्याहृतियुक्त गायत्री मंत्र के उच्चारण के साथ प्राणायाम करने का आदेश ऋषि देते हैं। साधक इस प्रकार के प्राणायाम द्वारा हृदय-कमल के ऊर्ध्व-मुख को विकसित करके परमात्मा नारायण के दर्शन करता है। विमानार्चा के अनुसार प्रत्याहार के पाँच भेद हैं। वह यह भी बताता है कि अठारह मर्म-स्थान हैं। प्रत्येक स्थान में प्रत्याहार करने की रीति तथा फल का भी वर्णन किया गया है।

तदनन्तर धारणा के आठ भेदों का विवरण देकर मरीचि उपदेश देते हैं कि परमात्मा नारायण की ध्यानपूर्वक धारणा करनी चाहिए। फिर ध्यान का परिचय देते हुए ग्रंथकार कहते हैं कि जीवात्मा द्वारा परमात्मा का सतत चिंतन ही ध्यान है। ध्यान के सकल, निष्कल नामक दो भेद हैं। सकल के भी सगुण, निर्गुण नाम से दो भेद होते हैं। इसमें ध्यान के प्रकार, रीति एवं फल का वर्णन है।

मरीचि के मत में जीवात्मा-परमात्मा की समावस्था समाधि है। आदित्य के दर्शन से जिस तरह अनुष्णोपल उष्णत्व का आश्रय पाता है उसी तरह प्रत्यगात्मा या जीवात्मा परमात्मा के दर्शन से नित्यशुद्धत्व एवं परमानन्दत्व को पाकर परमात्मा नारायण का सदा काल अनुभव करता है। अष्टांग योग के निरंतर अभ्यास से साधक अणिमादि ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है और जीवन-मुक्त भी बनता है। साधक जीवन के अन्तिम समय में सब द्वारों का संयमन करके प्राण को अपान में संयोजित कर उसका शोधन करता है, फिर धीरे-धीरे प्राण के साथ सबको आत्मा में विलीन कर लेता है। तब वह परमात्मा के साथ वैकुण्ठ में वास करता है। इतने से स्पष्ट है कि वैखानस मत के अनुयायी अष्टांग योग को परमात्म प्राप्ति का प्रबलतम साधन मानते थे।

विद्वानों की सम्मति है कि तांत्रिक साहित्य का निर्माण ई.सन् ४०० के आसपास हुआ। भट्टाचार्य का विचार है कि तीसरी शती में गुह्य समाज तंत्र की रचना पूरी हो चुकी थी।[११६] पर यह निर्विवाद नहीं। डॉ. हाजरा के मत में आचार्य शंकर के समय के पूर्व संकलित या सम्पादित आगमों का पता नहीं चलता।[११७] नेपाल से प्राप्त तंत्र साहित्य ई.सन् ७०० से ६०० के बीच निर्मित हुआ। महाभारत में पुराण और इतिहास का बार-बार उल्लेख आता है, पर तंत्रों का कहीं जिक्र नहीं। चीनी यात्रियों के यात्रा विवरण में तंत्रों का नामोल्लेख नहीं। यह डॉ. हाजरा के मत को पुष्ट करता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि तंत्रों में वर्णित कुत्सित आचार-विचार न उस समय के लोक-धर्म से गृहीत हैं न लोक प्रचलित आर्य या आर्येतर विश्वासों या परम्पराओं को प्रतिबिम्बित करते हैं। परन्तु वे साम्प्रदायिक आचार्यों के चिंतन की उपज हैं जिनमें योग के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्षों, शिवाद्वैत या शक्ति अद्वैत के दार्शनिक विचारों एवं तंत्रवाद और प्रतीकवादों का मिश्रण है।[११८]

ई.सन् २०० के पूर्व के धर्म सम्प्रदायों को वैदिक, अर्ध-वैदिक, अवैदिक और वेद-विरोधी- इन चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। जैन, बौद्ध, आजीवक और उन जैसे अनेक सम्प्रदाय वेद-विरोधी माने जाते हैं। तंत्रवादी शक्ति मत तथा कुछ शैव सम्प्रदाय अवैदिक घोषित किये गये हैं। वेदों की निन्दा करते हुए कुछ

तंत्र कहते हैं कि वेद, शास्त्र और पुराण गणिका के समान सबके भोग्य हैं किन्तु शैवागम कुलवधू के समान हैं।[११९] कुलार्ण्रव का कथन है कि वेद और पुराणों का प्रचार हो सकता है, पर शैव और शाक्त आगम रहस्यमय हैं। अदीक्षित को चाहे वह विष्णु या ब्रह्मा ही क्यों न हो उन्हें नहीं देना चाहिए।[१२०] भागवत् सम्प्रदाय, विष्णु सम्प्रदाय, वैदिक शैव आदि प्रधानतः आगमानुसारी होते हुए भी वेदों की प्रामाणिकता स्वीकार करते हैं, इसलिए अर्ध-वैदिक कहलाते हैं। इन चारों के अलावा एक और धर्म-मत उस समय विकसित हो रहा था जिसे पौराणिक मत कहा जा सकता है। इसी मत में पुराणों का निर्माण हुआ।

पुराण उन संग्रह-ग्रंथों को कहते हैं जिनमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित- इन पाँच विषयों का समावेश रहता है। पुराणों में भाषा-शैली की दृष्टि से सामंजस्य होने पर भी वर्ण्य विषय की विशेषता के कारण वैषम्य भी है। इन्हीं विशेषताओं के कारण पुराण, उपपुराण और महापुराण संज्ञाओं से वे तीन प्रकार से विभाजित हैं।[१२१]

पुराणों का रचना काल ई.सन् १३०० तक का समय माना जाता है। यद्यपि पुराणों का योग-मत से कोई सीधा संबंध नहीं, तो भी शैव, शाक्त और वैष्णव सम्प्रदायों से संबंधित होने से उनमें योग का थोड़ा बहुत विवरण इधर-उधर दिया गया है। प्रायः उनमें तीन प्रकार के योग का वर्णन मिलता है। वे हैं क्रिया-योग, भक्ति-योग और अष्टांग-योग।

वायु (ई.सन् २००-५००), विष्णु (ई.सन् २००-३००), मार्कण्डेय (ई.सन् २००-५००), अग्नि (ई.सन् ६००), शिव (ई.सन् ८००-११००), स्कन्द (ई.सन् १०५०-१४००) आदि में उपर्युक्त योग प्रणालियों का वर्णन किया गया है। वायु पुराण के सात अध्यायों में शैव पाशुपत योग का सम्यक निरूपण-जिसमें प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा और स्मरण सम्मिलित हैं- किया गया है। प्राणायाम में प्राण का निरोध होता है; जिसके तीन भेद हैं- उत्तम, मध्यम और मन्द। मन्द प्राणायाम द्वादश मात्रात्मक होता है और उत्तम तिरसठ मात्रात्मक होता है। स्वेद कम्प और विषाद जिससे उत्पन्न हो, वह उत्तम प्राणायाम माना जाता है। कालान्तर में योगी के प्राण उसके वश में आ जाते हैं। प्राणायाम से शरीर और मन के दोष मिट जाते हैं। इसी तरह धारणा से पाप का, प्रत्याहार से विषय समूह का और ध्यान से अनीश्वर गुणों का समूल विनाश हो जाता है। इससे साधक योगी विशुद्धात्मा होकर ब्रह्म-साक्षात्कार कर लेता है।[१२२]

इस पुराण में आसनों का भी विवरण मिलता है। कहा गया है कि योगी स्वस्तिक, पद्म, अर्ध-समजानु, एक जानु, उत्तान, सुस्थित- इनमें से किसी एक को चुनकर उसे दृढ़ करे।[१२३] यद्यपि इस पुराण में यम-नियम का अलग से उल्लेख नहीं हुआ है तो भी 'शैवाचार लक्षण निरूपण' में सत्य भाषण, अहिंसा व्रत पालन, दान, दया, आर्जव आदि के जिक्र से यम-नियम का प्रतिपादन हो जाता है। वायु पुराण के अनुसार योग का चरम लक्ष्य उस चेतनात्मक, नित्य, निर्गुण, अलक्ष्य परम पुर के सगुण, स्वर्ण-वर्ण, सर्व-व्यापी शुची और अचल प्रकाशमान वस्तु के दर्शन करना है जिससे योगी नित्य-ब्रह्म में लीन हो जाता है।[१२४]

वायु पुराण में विवेचित पाशुपत योग में यद्यपि पाँच ही धर्म स्वीकृत हैं तो भी योग के आठों अंगों की व्याख्या उसमें आ जाती है। अतः त्रिपाठी का कथन उपयुक्त-सा लगता है कि नाथ-पंथियों द्वारा स्वीकृत योग-मार्ग का प्रकृत स्वरूप वायु पुराण के रचना-काल में प्रचलित था ऐसा ज्ञात होता है। संभवतः बौद्ध परम्परा ने उसी को अपना कर फिर उसको भ्रष्ट कर दिया था जिसका परिष्कृत रूप पुनः नाथ-पंथ में देखने को मिला।[१२५]

मार्कण्डेय तथा अन्य शैव पुराणों में इसी प्रकार के अष्टांग योग का विवरण थोड़ा बहुत परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया गया है।

विष्णु पुराण के पाँचवें और अन्तिम दो अध्यायों में बताया गया है कि जन्म-मरण के चक्र से छूटने के इच्छुकों को भगवान् के स्वरूप से परिचित होना नितांत आवश्यक है। जिस ज्ञान से परमात्मा के दर्शन होते हैं वही सच्चा ज्ञान है, शेष सब अज्ञान ही है। ज्ञानोपलब्धि का प्रधान साधन योग है। अतः यह पुराण पाठकों को अष्टांग योग से परिचय कराते हुए उसके अभ्यास पर बल देता है।

पद्म पुराण के उत्तर खण्ड में वर्णित क्रिया-योग-सार अष्टांग योग से भिन्न है। इसके अनुसार विष्णु ही आराध्य हैं अतः उनकी सेवा, ध्यान आदि से नहीं परन्तु तीर्थाटन, पूजा-उत्सव आदि धार्मिक क्रियाओं में सक्रिय भाग लेकर करनी चाहिए। इस तरह के स्थूल बाह्यानुष्ठान भी योग माना जाता था।

महापुराणों में शिव पुराण अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसका रचना काल नवीं-दसवीं सदी माना जाता है।[१२६] इस पुराण के रुद्र संहिता नामक खण्ड में भक्ति योग के प्रसंग में कहा गया है कि प्रणवजप, ध्यान, पूजा आदि शिव भक्ति योग के मुख्य लक्षण हैं। इसके अभ्यास से साधक-भक्त की अविद्या का नाश होता है। फिर वह अहंकार के मिट जाने के कारण शुद्धात्मा बन जाता है। उसे परमशिव का अनुग्रह प्राप्त होता है जिससे वह स्वस्वरूप का बोध पाकर शिव बनता है। जिस तरह कोई व्यक्ति दर्पण में अपने को प्रतिबिम्बित पाता है उसी तरह निर्मल मन मुकुर में शिव दर्शित होते हैं। इसमें विवेचित शिवत्व की प्राप्ति में ध्यान को छोड़कर योग के शेष अंगों का वर्णन नहीं मिलता।

इसी पुराण के वायवीय संहिता के शैव-धर्म प्रकरण में ज्ञान, क्रिया, चर्या और योग का परिचय दिया गया है। उससे अष्टांग योग का विवरण मिलता है। संहिता के अनुसार योग के पाँच भेद हैं। वे हैं- मंत्र, स्पर्श, भाव, अभाव और महायोग। प्रणव, अजपा मंत्र आदि के सतत जप द्वारा मन को स्थिर करने की क्रिया मंत्र-योग कहलाता है। प्राणायाम के साथ किया जाने वाला मंत्र जप स्पर्श-योग कहा जाता है। इसमें जब इतनी प्रगति हो जाती है कि किसी भी तरह के जप की आवश्यकता नहीं रह जाती तब वह भावयोग नाम पाता है। भाव योग में आगे बढ़ते हुए जब सांसारिक ज्ञान अशेष हो जाता है तब अभाव योग सिद्ध होता है। इस स्थिति में पहुँच कर संगविहीन योगी सब तरह के बंधनों से मुक्त हो स्वयं को शिव रूप जानता है। महायोग में योगी को इन्द्रियजन्य अनुभव नहीं होता। वह गुणातीत शिवमय हो जाता है। वायवीय संहिता में वर्णित योग में नाथ योग के बहुत से तथ्य उपलब्ध हैं।

भारत के अवैदिक एवं नास्तिक धर्म-सम्प्रदायों में भगवान् बुद्ध द्वारा ई.पू. छठीं शती में संगठित धर्म या धम्म का आदरणीय स्थान है। बहुतों की राय है कि धम्म का उदय आर्यों के यज्ञ तथा वर्णाश्रम के विरोध में हुआ। इस अध्याय के आरम्भ में बताया जा चुका है कि वैदिक काल में ऐसे बहुत से स्वतंत्र चिंतक थे जो वेदों, वर्णों तथा आश्रम को मानते नहीं थे। वे तरह-तरह के तर्क प्रधान सिद्धांतों का आविष्कार कर उनकी व्याख्या भी करते थे और इस तरह अपने-अपने मत अथवा दृष्टि का लोगों के बीच प्रचार करते हुए घूमते फिरते थे। उन घुमक्कड़ों में गृहस्थ और परिव्राजक दोनों वर्गों के जन थे। वे स्वतंत्र भी थे और किसी-न-किसी संघ से संबद्ध भी थे। व्याकरणकार पाणिनि ने अपने समय के दो प्रकार के भिक्षु वर्ग का नामोल्लेख किया है जो कामदि और पाराशरीपाः कहलाते थे। श्रमण मत के साहित्य में ३६३ तरह के साधु-सम्प्रदाय की गणना की गयी है। उनमें वैनायकवादी, अशनिकवादी, अक्रियावादी, क्रियावादी आदि सम्मिलित थे। उनके अलावा आजीवक, निगंठ, मुंडसावक, मगंडिक, तेडंडिक, अविरुद्धक, गोतमक वगैरह भी थे। संयुत्त निकाय के अनुसार बुद्ध के समकालीन आचार्यों में पूरन कस्सप, मक्खलि गोसली, अजित केश कंवली, पकुद्ध कच्चायन, निगंठनाथपुत्त, संजय बेलट्ठिपुत्त आदि मत प्रवर्तक बहुत ही प्रसिद्ध थे। वे सब विभिन्न मतवादों के संस्थापक

थे।[१२७] उन्हीं की तरह सिद्धार्थ ने वैराग्य के उदय हो जाने पर मानव-जीवन के रहस्यों को जानने की इच्छा से तरह-तरह के साधन किये और अंत में आत्म-बोध पाकर बुद्ध बने।

सिद्धार्थ ने बोध पाकर अपने अनुभावों को तत्कालीन जन-समाज के सम्मुख रखा। उन्होंने जिस धम्म को मानव कल्याण के लिए उपयुक्त समझा उसका उन्होंने जनता में प्रचार किया। बुद्ध का धम्म उस समय के प्रचलित चिंतन-धारा के एक सबल पक्ष का प्रतिपादन है जिसमें भोग और विराग के अतिवाद का निराकरण एवं मध्यम मार्ग के अनुसरण का उपदेश था।

बौद्ध साहित्य के अध्ययन से विदित होता है कि बुद्ध के युग में योग-साधना का प्राबल्य था। इतिहास साक्षी है कि सिद्धार्थ गृह-त्याग के बाद बारह वर्ष गया के आसपास के वन और पर्वतीय प्रदेशों में आस्फानक समाधि का अभ्यास करते हुए शरीर को इस तरह कसते हुए चले कि उनका आहार घटते-घटते चावल के एक दाने पर पहुँच गया। तब उन्हें सत्य का बोध हुआ। उन्हें तो आत्म-निरीक्षण एवं तपश्चर्या से ही सिद्धि प्राप्ति हुई और इसी का उन्होंने उपदेश दिया।[१२८] पर उनकी की गयी साधना का स्वरूप क्या था, इसे जानना कठिन है। बुद्ध ने ध्यान-योग को अपनाया और उसे अपने शिष्य महाकस्सप को दिया। महाकस्सप की शिष्य परम्परा में आने वाले अट्ठाइसवें योगी बोधिधर्म ने इस ध्यान-योग को चीन तक पहुँचाया जहाँ वह शान नाम से प्रसिद्ध हुआ और वहाँ से जापान गया जहाँ वह योग प्रक्रिया जेन नाम से विख्यात हुआ। आज जेन मत का बोलबाला संसार के अनेकानेक देशों में देखा जाता है।

भगवान् बुद्ध से उपदेश प्राप्त करके अनेक जिज्ञासु और श्रद्धालु अनुयायियों ने सिद्धियाँ पायीं जिनके कारण उन्हें बड़ी ख्याति मिली। उनके बाद तो बौद्ध धर्म ने योग के तथ्यों को ग्रहण कर लिया था, उनका जैसा प्रचार ई.सन् तीसरी शती से होने लगा वैसा उसके पहले नहीं हुआ।[१२९] उनमें एक ऐसा दल निकला जो छिपे-छिपे राजयोग और हठयोग दोनों तरह के योग की गुप्त साधना किया करता था। उन साधनाओं में जो अनुभव एवं सिद्धियाँ मिलीं उनके आधार पर शास्त्र ग्रंथ रचे जाने लगे। इन्हीं की मूल भित्ति पर आगे चलकर बौद्ध तंत्रों का निर्माण हुआ और तंत्रों से सहायता पाकर बौद्ध योग-शास्त्र सर्वांगपूर्ण बन गया।[१३०]

बौद्ध तांत्रिक योग का पहली बार दिग्दर्शन गुह्य-समाज-तंत्र में होता है। इसके अठारहवें अध्याय में योग-साधनाओं का उद्देश्य एवं प्रयोजनों का विशद परिचय मिलता है। इसमें सिद्धि लाभ के लिए प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, अनुस्मृति, और समाधि वगैरह योग के छः अंगों के नियमित अभ्यास का आदेश है।

बौद्ध धर्म के वज्रयान ने देवताओं के साक्षात्कार के लिए धारणियों की परिकल्पना की। जब ऐसी धारणियों के द्वारा देवता का साक्षात्कार नहीं हो पाता तभी साधक हठयोग का आश्रय लेता था। धारणी मंत्र-योग का ही दूसरा नाम है। बौद्ध वज्रयानी का विश्वास था कि मंत्र-योग एवं हठयोग से राजयोग सिद्ध होता है और राजयोग से साधक को बोधिसत्व का पद प्राप्त होता है। हिन्दू तंत्रों में जिस शिव-शक्ति सामरस्य का भाव अंगीकृत था उसे बौद्ध तांत्रिकों ने भिन्न नाम से स्वीकार किया और बताया कि बोधिचित्त और शून्य के मिलन से महासुख मिलता है। यही महासुख बौद्ध तांत्रिकों का युगनद्ध है। वज्रयान से मंत्र-यान, सहज-यान, काल-चक्र-यान आदि अनेक यान उत्पन्न हुए और इन्हीं यानों में सैकड़ों बौद्ध तांत्रिक सिद्धाचार्य हुए जिनके द्वारा निर्मित विपुल साहित्य सिद्धसाहित्य के नाम से विख्यात हुआ है। ये बौद्ध सिद्ध नाथ-सिद्धों से भिन्न श्रेणी के हैं। इनकी साधना-प्रणाली नाथों की साधना से प्रकार और लक्ष्य की दृष्टि से अलग रही यद्यपि कुछ बातों में समानता भी दीख पड़ती है। इन समानताओं की ओर लक्ष्य करके कुछ विद्वानों ने कहा है कि बौद्ध

सिद्ध-परम्परा से ही नाथ-सिद्ध-परम्परा की उत्पत्ति और विकास हुआ है। यह निर्विवाद नहीं है। अब तक इस पर गंभीर विचार नहीं हुआ है। जो हो, नाथ-योग की विशिष्टताओं को समझने के लिए बौद्ध तांत्रिक मत भूमिका प्रस्तुत कर सकता है।

बौद्ध धर्म की तरह जैन-धर्म भी अति प्राचीन है। वह प्रारम्भ से ही कठोर शुद्धाचारवादी रहा है। फिर भी उसमें अन्य मतों के प्रभाव से मंत्र साधना और योगाभ्यास द्वारा चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति विकसित हुई।[१३१] फलस्वरूप मठवासियों और चैत्यवासियों का प्रादुर्भाव हुआ जो तांत्रिक योग साधना करके तत्त्व का साक्षात्कार करते थे।

जैन मत के अनुसार जिन-जिन साधनों से आत्मा की शुद्धि और मोक्ष की प्राप्ति संभव है उन सबको योग कहा जाता है।[१३२] परन्तु जैन आगमों में मुख्य रूप से ध्यान को ही योग माना जाता है। ध्यान के चार भेद हैं जिन्हें क्रमशः आतं, रौद्र, धमं और शुक्ल कहते हैं। उनमें शुक्ल ध्यान ही अत्यंत परिशुद्ध साधन समझा जाता है। इसके द्वारा दुख रूप काष्ठ क्षण मात्र में भस्म हो जाता है।[१३३]

जैन दर्शन में सम्यक् दर्शन, सम्यक् श्रुति और सम्यक् चरित्र योग सिद्धि के परम आवश्यक अंग माने जाते हैं। योगाभ्यास से आत्मा स्वभाव से परिचित होती है और इस परिचय से आत्मा शुद्ध होकर सब तरह के बंधनों से मुक्त हो जाती है। यह बंधन-मुक्ति ही मोक्ष कहलाता है।

परवर्ती जैन मत ने हठयोग और मंत्रयोग दोनों को स्वीकार किया परन्तु हठयोग को सर्वथा अनिवार्य नहीं माना। षडंग या अष्टांग योग में प्राणायाम की प्रधानता है, किन्तु जैनाचार्यों ने इसे आवश्यक नहीं समझा। जैनाचार्य हरिभद्र सूरि (वि. ७५७-८२७) अपने युग के प्रसिद्ध दार्शनिक और योगी थे। उनके ग्रंथों की सूची को देखने से पता चलता है कि उन्होंने जैनागमों की टीकाएँ लिखी हैं, उन आगमों को लेकर अनेक प्रकरण ग्रंथ लिखे हैं; कथाएँ, दार्शनिक रचनाएँ, योग-शास्त्र आदि रचे हैं। ज्योतिष और स्तुति ग्रंथ भी उनकी लेखनी से निकली हैं। संभव है कि आचार्य ने योग पर लिखने के साथ स्वयं योगाभ्यास भी किया हो उसी का परिणाम है कि उनके जीवन में कट्टर धार्मिकता का स्थान उदारता ने लिया है।[१३४] उन्होंने एक स्थान पर कहा है कि ध्यान में बलात्कार से श्वासोच्छ्वास का निरोध नहीं करना चाहिए।[१३५] पर साथ ही आचार्य ने यह भी कहा है कि यदि किसी साधक को प्राणायाम से लाभ हो तो वह अवश्य करे, इसमें कोई निषेध नहीं, परन्तु सबके लिए प्राणायाम जरूरी नहीं।[१३६] जैन मत में शिव-शक्ति समरसता या युगनद्ध जैसी धारणा का सर्वथा अभाव है। उसमें प्राण के नियमन द्वारा कुण्डलिनी जागरण की संकल्पना भी नहीं। फिर भी इतना अवश्य है कि वह योग को मोक्ष प्राप्ति का प्रबल साधन के रूप में स्वीकार करता है।

पहले ही संकेत किया जा चुका है कि नाथ मत प्रधानतः शिवोपासक सम्प्रदाय है। स्वयं गोरक्षनाथ शिव के अवतार माने जाते हैं। हाँ, ओझा नाथ-सम्प्रदाय को पाशुपत मत की एक शाखा नकुलीश या लकुलीश पाशुपत मत का परवर्ती रूप मानते हैं।[१३७] फरकूहर का कथन है कि पाशुपतों में सर्वाधिक प्रभावशाली गोरक्षनाथ ही हैं।[१३८] ब्रिग्स का विचार है कि नाथ-योगी पाशुपतों की परम्परा से संबद्ध हैं।[१३९] इसी तरह अन्यान्य नाथ सम्प्रदाय के अध्येता विद्वानों ने नाथ सम्प्रदाय का संबंध पाशुपतों से जोड़ा है।

पाशुपत या माहेश्वर मत भारत के अति प्राचीन धर्म-सम्प्रदायों में एक है। इसी से परवर्तीकाल में लकुलीश पाशुपत, कापालिक, कालामुख या कालानन, शैव, भैरव एवं वाम-पंथ का आविर्भाव हुआ। इसके उद्भव के बारे में यह अनुश्रुति है कि महेश्वर कंक नाम से पहले पहल उत्पन्न हुए और उन्होंने सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार को शिष्य के रूप में ग्रहण किया। सनत्कुमार ने बाद को जिज्ञासु नारद को ध्यान योग द्वारा

भूमा की उपलब्धि का उपदेश दिया। कुछ समय के अनंतर महेश्वर ने दधिवाहन नाम से संसार में प्रकट होकर कपिल को शिष्य बनाया जो सांख्य दर्शन के आचार्य बने। फिर गुहावासिन नाम से संसार में उत्पन्न होकर वामदेव को, जिन्होंने माता के गर्भवास करते समय ही मानव शरीर के निर्माण संबंधी तत्त्वों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया था, अपने सिद्धांतों का उपदेश दिया। इस प्रकार सत्रह बार शिव महेश्वर विभिन्न रूप धारण कर चुकने के बाद अठारहवीं बार शिखण्डिन नाम से धरती पर प्रकट हुए। ये ही श्रीकंठ नाम से विख्यात हुए। उन्होंने पाशुपत मत का संस्थापन करके शिवशासन का प्रवर्तन किया।

महाभारत, वायु पुराण, शिव पुराण, शिव-दृष्टि, पिंगला मत आदि ग्रंथों में इस बात का उल्लेख है कि श्रीकंठ ने पाशुपत मत के सिद्धांतों की व्याख्या की। डॉ. पाठक ने शिलालेखों के अध्ययन करके यह सिद्ध किया है कि श्रीकंठ ही पाशुपत मत के संस्थापक थे।[१४०] तंत्रालोक के अनुसार कलियुग के आरम्भ होने पर जब शिवशासन विलुप्त हो गया तो कैलाश शिखर पर भ्रमण करते हुए शिव, श्रीकंठ के रूप में भूतल में निकल आये और उन्होंने पंचश्रोत रूप शिवशासन का प्रवर्तन किया।[१४१] कहा जाता है कि श्रीकंठ ने दक्षिणामूर्ति के रूप में नंदिदेव को समस्त शैवागमों का उपदेश किया जिनमें दस भेदागम और अठारह भेदाभेदआगम सम्मिलित थे। अतः पाशुपताचार्य श्रीकंठ के ऐतिहासिक पुरुष होने में कोई संदेह नहीं रह जाता।

अनुश्रुति है कि आचार्य श्रीकंठ ने मांगल्य शास्त्र और श्रीकंठी नामक दो ग्रंथ रचे थे। पहले में शक्ति और शक्तिमान के परस्पर संबंध की चर्चा की गयी है, परन्तु दूसरे के प्रतिपाद्य विषय-वस्तु का ज्ञान नहीं मिलता क्योंकि अब तक यह अलभ्य है। इन दोनों ग्रंथों के आधार पर ही शिव धर्म या शिवशासन का विवेचन किया गया था। यद्यपि इस समय श्रीकंठ मत के मूल रूप को जान पाना कठिन मालूम पड़ता है तो भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि लकुलीश ने पूर्व पाशुपत के प्रायः मुख्य-मुख्य सिद्धांतों को आत्मसात कर लिया होगा।

पाशुपत मत की साधना में षडंग योग, भस्म-धारण, प्रणव जप आदि मुख्य अंग थे। इस शैव मत ने वैदिक वर्ण और आश्रम की व्यवस्था का तिरस्कार कर दिया था। यही नहीं, उसने व्यक्ति और व्यक्ति के बीच में किसी तरह के भेदभाव को नहीं माना। अतः भारत के आर्य, आर्येतर जन समूह ही नहीं, यवन, कुशान, शक जैसे विदेशों से आगत जन-समुदाय को भी सहज ही पाशुपत मत में दीक्षित होने की सुविधा मिल गयी थी। भिन्न-भिन्न आचार-विचार के लोगों द्वारा अपनाये जाने के कारण इस मत में कुछ अवांछनीय अनुष्ठानों का प्रवेश हो गया। फलस्वरूप इसमें वैदिक, अवैदिक और मिश्र- ये तीन भेद उत्पन्न हो गये। आगे चलकर इसमें प्रविष्ट दूषित आचार-विचारों को हटाकर, लकुलीश या नकुलीश (ई.सन् १७५) नामक शैव योगी ने एक नवीन सम्प्रदाय का संगठन किया जो उनके नाम से लकुलीश पाशुपत कहलाया। नये मत के संगठन के बाद भी मूल पाशुपत चालू था जो दर्शन की दृष्टि से द्वैतवादी था। आगे चलकर इसमें द्वैताद्वैतवादी एवं अद्वैतवादी परम्पराएँ भी विकसित हुईं। कश्मीर के प्रत्याभिज्ञा दर्शन, नाथ दर्शन और गोलकी शैव दर्शन पाशुपत मत के क्रमशः अद्वैत, द्वैताद्वैत और द्वैत परम्परा के प्रतिनिधित्व करते हैं, यह मानना अनुचित नहीं होगा।

लकुलीश पाशुपत मत के संस्थापक लकुलीश का आविर्भाव गुजरात के कायावरोहण नामक स्थान में (आज का कारवान) हुआ। उनका जीवन दंत-कथाओं एवं अनैतिहासिक घटनाओं से भरा हुआ है। मथुरा स्तम्भ में उत्कीर्ण चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय के अभिलेख के सम्पादक डॉ. आर.डी.भण्डारकर के विचार में लकुलीश लगभग ई.सन् १२५ के आसपास उत्पन्न हुए।[१४२] लकुलीश के अनेक शिष्यों में कुशिक, गार्ग्य, मित्र, कौरुष्य और पतञ्जलि नामक पाँच व्यक्ति प्रधान थे। कहा जाता है कि ये ही पतञ्जलि लकुलीश मत के प्रचार के लिए

जावा, बाली आदि द्वीपों में गये थे और वहीं ठहर गये। पतञ्जलि के बारे में यह भी कहा जाता है कि उन्होंने ही दक्षिण भारत में शैव-धर्म का प्रचार किया। चिदम्बरम के साथ पतञ्जलि का नाम जुड़ा हुआ है परन्तु निश्चित रूप से कुछ कहना आज की स्थिति में असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। अन्य चारों भारत के विभिन्न भागों में अपने मत के प्रचार के लिए गये। उनमें कौरुष या कारुक या काठक सिद्धांत के आचार्य माने जाते हैं। यही आगे चलकर कालामुख अथवा कालानन सम्प्रदाय नाम से प्रसिद्ध हुआ।[१४३] लकुलीश पाशुपत मत में अठारह तीर्थेश हुए। हरिभद्र सूरि ने अपने षड्दर्शन समुच्चय में उन तीर्थेशों के नाम यों गिनाये हैं: नकुलीश, कौशिक, गार्ग्य, मैत्रयः, कौरुष, ईशान, पारगर्ग्य, कपिलाण्ड, मनुष्यक, कुशिक, अत्रि, पिंगल, वृहदार्य, अगस्ति, सन्तान, राशीकर, और विद्यागुरु। भासर्वज्ञ ने (ई.सन् ९७५) भी गणकारिका की रत्नप्रभाटीका में उन तीर्थेशों का नाम लिया है। इससे स्पष्ट है कि लकुलीश द्वारा स्थापित नव पाशुपत मत का प्रचार उनके बाद सत्रह तीर्थेशों द्वारा सारे देश में किया गया। कम-से-कम छठीं शती से लकुलीश के आलय देश में बनने लगे थे। शैव-धर्म के प्रचार और प्रसार में इस मत का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

इस सम्प्रदाय की मुख्य रचनाओं में पशुपति रचित पंचार्थविद्या एवं लकुलीश कृत पंचार्थ सूत्र या पाशुपत सूत्र प्रमुख माने जाते हैं। वर्तमान स्थिति में यह निर्णय करना कठिन है कि पशुपति और लकुलीश दो भिन्न व्यक्ति थे अथवा एक ही आचार्य के दो नाम थे। यदि दोनों नाम एक ही व्यक्ति के हों तो संभव है कि उन्होंने दो ग्रंथ रचे हों। यह भी असंभव नहीं दीखता कि एक ही पोथी के दो अभिधान हो गये हों।

सत्य चाहे जो हो, पाशुपत सूत्र नाम से जिस ग्रंथ का प्रकाशन हुआ है वह सम्प्रदाय का अत्यंत प्रामाणिक शास्त्र ग्रंथ है। इस पर राशीकरा कौण्डिन्य ने (ई.सन्४००-४७५) भाष्य लिखा है जिसका नाम पंचार्थ सूत्र भाष्य है। ये कौण्डिन्य गोत्रोत्पन्न तीर्थेश थे।

पाशुपत सूत्र में १६८ सूत्र हैं। यह रचना विषय की दृष्टि से पाँच अध्यायों में विभाजित है जो क्रमशः कार्य, कारण, विधि, योग और दुःखान्त कहलाते हैं। उक्त विभाजन का आधार सद्योजात, वामदेव, अघोर तत्पुरुष और ईशान मंत्र मालूम पड़ते हैं।[१४४]

पाशुपत सूत्र के रचे जाने का उद्देश्य साधक को रुद्र सायुज्य का मार्ग बताना है। सूत्र की यह विशेषता है कि इसमें कहीं न कैलास, वैकुण्ठ आदि का वर्णन है न कर्मवाद की व्याख्या। इसमें कहा गया है कि शिव सायुज्य की इच्छा करने वालों को विस्तृत विधि-विधानों का पालन करना अनिवार्य नहीं। पुनर्जन्म है या नहीं, परमात्मा सगुण है या निर्गुण इत्यादि सैद्धांतिक बातों के उलझन में फँसने की भी आवश्यकता नहीं। साधक को सदा प्रणव जप या पंचाक्षर मंत्र का जप करना पर्याप्त है, इसी से शिव सायुज्य की प्राप्ति सुलभ हो जाती है।[१४५]

लकुलीश पाशुपत मत का आचार पक्ष अत्यंत सादा और सरल था। इसमें वर्ण और आश्रम के नियमों के पालन पर जोर दिया जाता था। इसमें योगी बनने का अधिकार केवल पाशुपत ब्राह्मणों को ही था। ऐसे योगी को निम्न जाति वालों और स्त्रियों का स्पर्श नहीं करना चाहिए। यदि ज्ञात या अज्ञात रूप से कभी छू गये तो प्राणायाम करके रुद्र गायत्री का या रुद्र के अघोर रूप का सूचक बहुरूपी मंत्र का जप करना अनिवार्य था।

रुद्र सायुज्य की प्राप्ति के लिए पाशुपत सूत्र योगाभ्यास का विधान करता है। उसका प्रथम सूत्र है, इसके बाद पशुपति के पाशुपत योग विधि की व्याख्या आरम्भ करते हैं।[१४६] आगे कहा गया है कि परमशिव का ध्यान हृदयाकाश में करना चाहिए।[१४७] जब साधक यम नियम के अभ्यास में स्थिरता प्राप्त कर लेता है तथा दूसरों

की निन्दा एवं प्रशंसा को समभाव से स्वीकार कर लेता है तो वह साधना-मार्ग में जमा हुआ माना जाता है। ऐसे साधक के लिए दिन में तीन बार भस्म-स्नान करना, गुहा, श्मशान, मठ आदि स्थानों में एकांतवास करना, इन्द्रिय-निग्रह करना, भिक्षा से जीविका चलाना अनिवार्य धर्म है। मांस-भक्षण वर्जित नहीं यदि वह स्वयं जीव हत्या न करके दूसरों से पाता हो। उस एक वस्त्रधारी योगी को न पर-निन्दा करनी चाहिए न आत्म-स्तुति। सूत्र में एक स्थान पर कहा गया है कि योगी को लिंगधारी होना चाहिए। लिंगधारी शब्द का अर्थ समझाते हुए भाष्यकार ने लिखा है कि योगी को दण्ड, कमण्डल आदि विशिष्ट चिह्नयुक्त होना चाहिए, पर यह संतोषजनक नहीं लगता। संभवतः पाशुपत योगी अपने सिर या कंधे पर शिवलिंग का वहन करते थे। इस संदर्भ में यह स्मरण करने योग्य है कि पूर्व युग के शैव मतानुयायी भारशिव अपने कंधों पर एक छोटा सा शिवलिंग रखा करते थे और ई.सन् ११-१२वीं शती में कर्नाटक प्रदेश में वीरशैव कहलाने वाले लोगों ने कंठ में लिंग को धारण करने की प्रथा शुरू की थी।[१४८]

पाशुपत सूत्र विभिन्न नामधारी रुद्र के साथ अविच्छिन्न रूप से संपृक्त रहने को योग बताता है।[१४९] इसके लिए मन को अन्यान्य वस्तुओं के मोह से अलग कर महेश्वर में ही स्थिर रखना आवश्यक है।[१५०] संसार के प्रति निर्लिप्त भाव तभी उत्पन्न होगा जब मन, बुद्धि और अहंकार पर अंकुश रखा जाए। मन को अकुशल कार्यों में संचरण करने से रोक कर कुशल कृत्यों में नियोजित करना नितांत आवश्यक है। शिव स्मरण में लीन मन पुण्य और पाप में नहीं लगता। वे भाव वैसे ही छूट जाते हैं जैसे केंचुली सर्प से छूटती है या पका फल वृक्ष से गिर जाता है। शिव से युक्त आत्मा केवलिन नहीं बनता, परन्तु दुख से मुक्त हो शिवानन्द में लीन हो जाता है।

कौण्डिन्य के अनुसार पाशुपत योगी का साधनामय जीवन चार विशिष्ट चरणों में विभक्त रहता है। सबसे पहले वह योगी नियमित अभ्यासों द्वारा अपनी इन्द्रियों पर अधिकार कर लेता है। फिर वह धीरे-धीरे बाह्याडम्बरों को तज देता है और ऐसा जीवन व्यतीत करता है कि समाज की निन्दा-स्तुति के प्रति उदासीन होकर अन्तर्मुखी हो जाता है। वह जन-कोलाहल से दूर मठ, गुहा, श्मशान इत्यादि स्थानों में आश्रय लेता है जहाँ उसका ध्यान आदि यौगिक क्रियाएँ निर्विघ्न एवं निर्बाध रूप से चल सके।

इस मठ में योग का उपदेश किसी योग्य तथा अनुभवी गुरु से प्राप्त करना चाहिए। गुरु-शिष्य-वाद, मंत्र-जप, षडंग योग आदि इस सम्प्रदाय के साधना-पक्ष के मुख्य अंग थे और इसके उत्तराधिकारी होने से नाथ-सम्प्रदाय इसका बहुत अंशों में ऋणी है।

छः शैव सम्प्रदायों में कालामुख शैव भी एक है। इसके अन्य नाम कालदमन, असितवक्त्र, कालानन, काठक सिद्धांत आदि हैं। इसके संस्थापक कौरुषेय थे जो लकुलीश के प्रमुख शिष्यों में थे। आचार्य रामानुज तथा केशव कश्मीरी ने काठक सिद्धांती को कालानन कहा है। कालामुख लाकुलागम के अनुयायी थे।[१५१]

इस मत का प्रचार और प्रसार नर्मदा के दक्षिण में करहाड से लेकर मदुरै तक था और वह लगभग चौदहवीं शताब्दी तक अत्यंत प्रभावशाली था। चालुक्य वंश के शासकों ने इस मत के प्रसार में खूब सहयोग दिया था। उनके शासनकाल में राज्य के विभिन्न भागों में कालामुख आचार्यों के अनेक मठ बने थे। इन मठों में ठहरने वाले आचार्य पुरुषों ने साधारण जनता के लिए अनेक शिवालयों का निर्माण कराया और उनमें पूजा उत्सव आदि के लिए उचित और आवश्यक प्रबंध भी किये थे। ऐसे आचार्य चालुक्य तथा अन्य राजवंशों के धर्मगुरु और राजगुरु रहे। षड्दर्शन समुच्चय के लेखक हरिभद्र सूरि, भामतिकार वाचस्पति मिश्र, यशस्तिलक चंपु के रचयिता सोमदेव सूरि जैसे विद्वानों ने अपने ग्रंथों में इस सम्प्रदाय पर प्रकाश डाला है। आचार्य यामुन तथा

आचार्य रामानुज दोनों वैष्णव आचार्य पुरुषों ने आगम प्रामाण्य तथा श्रीभाष्य में कालामुखों को कापालिकों के समकक्ष मानकर उनके आचारों की निन्दा की है, परन्तु उनका मत सही नहीं लगता। आचार्य सायण और माधव के गुरुओं में एक क्रियाशक्ति पण्डित थे जो कालामुख मत के आचार्य थे। शिलालेखों से विदित होता है कि प्रायः सभी कालामुख आचार्य पुरुष वेद, वेदांग, धर्म-शास्त्र, गुह्य सूत्र, तर्क, न्याय, संगीत आदि के मर्मज्ञ तथा निष्णात पंडित थे और शुद्ध आचार-विचार वाले थे। धार्मिक साहित्य के अलावा तमिल और कर्नाटक प्रदेश के सैकड़ों शिलालेखों से कालामुखों के बारे में प्रामाणिक विवरण मिलते हैं किन्तु उत्तर भारत से प्राप्त शिलालेखों में इस सम्प्रदाय का उल्लेख नहीं।[१५२]

गोरक्षनाथ इस शैव मत से परिचित थे, यह बात उनकी बानी से मालूम होती है।[१५३] कालामुख मठाधीश योग-विद्या में भी बड़े निपुण थे और शिलालेखों से ज्ञात होता है कि वे अष्टांग योग के अभ्यासी थे। कपटराल कृष्णराव का विचार है कि जब कालामुखों का प्रभाव घटने लगा तब उनमें अधिकांश नाथ सम्प्रदाय में आये, कुछ लोगों ने स्मार्त आचार-विचारों को अपनाया और शेष जन वीर शैव बने। इन्हीं कारणों से चौदहवीं शती के बाद इनका अलग अस्तित्व नहीं रहा।

गोरक्षनाथ ने कापालिकों का वर्णन सिद्धसिद्धान्तपद्धति में किया है।[१५४] कापालिकों का शिवशासन और सोमसिद्धान्त से निकटतम संबंध रहा है। ये शिव के कपाली रूप के उपासक थे। अतः उनकी साधना में उग्रता का आना स्वाभाविक था। परवर्तीकाल के अघोरी जो नाथपंथी माने जाते हैं, कापालिकों के ही वंशज हैं। कापालिकों का प्रथम बार उल्लेख मैत्री उपनिषद् में पाया जाता है।[१५५] शिव महापुराण के वायवीय संहिता, तांत्रिक साहित्य, महेन्द्रवर्मन प्रथम कृत मत्तविलास प्रहसन, भवभूति विरचित मालती-माधव, राजशेखर की कर्पूर-मञ्जरी, कृष्णमिश्र का प्रबोध-चन्द्रोदय आदि में कापालिकों का यथेष्ट वर्णन मिलता है। लोरेत्पन लिखित अंग्रेजी पुस्तक दि कापालिकास् एण्ड दि कालामुखास् में दोनों शैव मतों का विस्तृत विवरण मिलता है जो सुधी पाठक के लिए लाभप्रद है। आचार्य रामानुज ने अपने श्रीभाष्य में कापालिकों के कुत्सित आचार-विचारों की कड़ी निन्दा की है। कापालिक वस्तुतः श्रीकंठ द्वारा प्रवर्तित शिवशासन के अनुयायी थे परन्तु तांत्रिक आचार-विचारों के प्रभाव से पथभ्रष्ट हो गये थे। प्रबोध-चन्द्रोदय के अनुसार कापालिक मत परमेश्वर सिद्धांत कहलाता था जो शिवशासन से भिन्न नहीं था।[१५६] डॉ० पाठक की राय में चालुक्यों के शिवशासनों में वर्णित महाव्रती कापालिक ही थे।[१५७] वे महाभैरव के उपासक थे। तमिलनाडु में प्राप्त शिलालेख छः शैव सम्प्रदायों के नाम बताते हैं और उनके अनुसार महाव्रती कापालिक से अलग एक स्वतंत्र शैव सम्प्रदाय था।

कापालिक मत में योग का विशेष स्थान था। उनकी साधना में शिवशक्ति समरसता पर जोर दिया जाता था। नाड़ी-शोधन, कुण्डलिनी जागण, वायु-निरोध आदि इस मत में स्वीकृत तथ्य थे। हठयोग में सम्मिलित वज्रोली, सहजोली आदि का विकास इस मत में ही हुआ। पर्यंक योग इस मत का एक विशेष योग-प्रणाली है। जालंधरपाद और कृष्णपाद का परिचय देते हुए डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस सम्प्रदाय के साधना और दर्शन पक्ष पर काफी प्रकाश डाला है जो मननीय है।[१५८]

कौल मत कश्मीर शिवाद्वैत मत की एक प्रमुख धारा विशेष है। आगमों में इसका उल्लेख कौल तथा कुल दोनों नामों से मिलता है तथा इसके सिद्धांत को सर्वोत्कृष्ट कहा गया है।[१५९] यह सिद्धांत काफी प्राचीन बताया जाता है। इसकी प्राचीनता का पता इस बात से लगता है कि मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा विरचित कहे जाने वाले कौलज्ञान-निर्णय में ऐसे अनेक प्रमाण हैं जिनसे विदित होता है कि यह कौल ज्ञान एक कान से दूसरे कान तक चलता हुआ दीर्घकाल और परम्परा-क्रम से चला आ रहा था। मत्स्येन्द्र द्वारा अवतरित योगिनी कौल मत

नाथपंथ के प्रमुख सिद्धपुरुष-एक विवेचन

-इन्द्रजीत मौर्य*

'नाथ' शब्द अति प्राचीन है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के १३०वें सूक्त में नाथ शब्द का प्रयोग सृष्टिकर्ता, ज्ञाता तथा सृष्टि के विभिन्न रूपों में किया गया है।[१] अथर्ववेद में भी 'नाथित' एवं 'नाथ' शब्दों का प्रयोग मिलता है।[२] संस्कृत टीकाकार मुनिदत्त ने 'नाथ' शब्द को 'सद्गुरु' के अर्थ में ग्रहण किया है। डॉ. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने 'नाथ' को नाथपंथ का मान्य परमतत्त्व स्वीकार किया है।[३] 'नाथ' शब्द पहले प्रभु एवं स्वामी जैसे अर्थों का बोधक था पर बाद में यह ऐसे महापुरुषों (सिद्धों) का बोधक मान लिया गया, जिन्हें अतिमानवत्व तथा देवत्व का प्रतीक माना गया। इन सिद्ध महापुरुषों ने तत्कालीन मानव समाज में बिखरी हुई कुप्रथाओं, कुसंस्कारों एवं विकृत मान्यताओं को समूल नष्ट करने का बीड़ा उठाया; जिसमें उन्हें सफलता भी मिली। विभिन्न छोटे-छोटे सम्प्रदायों ने उनकी अधीनता स्वीकार कर उनके उदार एवं विस्तृत संगठन को आगे बढ़ाने में सहयोग किया। यहाँ नाथपंथ में परिगणित कुछ प्रमुख नाथ-सिद्धों का विवरण प्रस्तुत करना समीचीन होगा।

आदिनाथ : नाथ-परम्परा आदिनाथ से आरम्भ मानी जाती है। 'सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति' में आदिनाथ का उल्लेख शिव के रूप में हुआ है। 'हठयोग प्रदीपिका' में इन्हें 'सर्वेषांनाथानां प्रथम' कहा गया है। 'महार्जवतंत्र' में नवनाथों में आदिनाथ का नाम प्राप्त होता है। 'शाबरतंत्र' में कापालिकों के १२ आचार्यों में आदिनाथ का भी उल्लेख है। मत्स्येन्द्रनाथ कृत 'योग विषय' ग्रंथ के आधार पर इनका समय ५२२ ईस्वी पूर्व माना जाता है। 'आदिनाथ' शब्द न केवल अपनी चिरकालीन अलौकिक सत्ता का आभास कराता है अपितु 'नाथपंथ' से भी अपना सम्बन्ध जोड़ता हुआ प्रतीत होता है।

मत्स्येन्द्रनाथ : यद्यपि नाथपंथ के आदि संस्थापक आदिनाथ (शिव) माने जाते हैं पर व्यक्ति रूप में इस परम्परा के प्रथम आचार्य मत्स्येन्द्रनाथ माने जाते हैं। नेपाल में इन्हें अवलोकितेश्वर के नाम से भी पूजा जाता है। नेपाल में अवलोकित होने के कारण उन्हें अवलोकितेश्वर नाम से सम्बोधित किया गया।[४] दसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में मत्स्येन्द्रनाथ ने नाथपंथ का प्रचार किया। उनका जन्म बंगाल के एक धीवर परिवार में हुआ था। उन्होंने बंगाल और असम आदि विभिन्न स्थानों की यात्राएँ की और तत्पश्चात ''योगिनीकौल'' नामक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। 'कौलज्ञाननिर्णय' और 'अकुल वीरतंत्र' नामक उनके ग्रंथों में 'योगिनी कौल' सिद्धान्त की विस्तृत चर्चा की गयी है।

जालंधरनाथ : तिब्बती ग्रंथों में जालंधर की विशिष्ट ख्याति है। तिब्बती परम्परा के अनुसार जालंधर ब्राह्मण कुलोत्पन्न बताये जाते हैं। तारानाथ इन्हें कृष्णाचार्य का गुरु एवं उनका समसामयिक बताते हैं।[५] जालंधरपीठ एवं जालंधर जैसे नगर जालंधरनाथ की प्रभाव-सिद्धि के द्योतक हैं। तंत्रमहापर्व में नवनाथों की निवास-भूमि का संकेत देते हुए जालंधरनाथ को ज्वालामुखी क्षेत्र उत्तरापथ का निवासी होना कहा गया है। ज्वालामुखी क्षेत्र जालंधरपीठ के अन्तर्गत ही है।[६]

कृष्णपाद : कृष्णपाद उच्च कोटि के विद्वान थे। कृष्णपाद को कानफा, कानिफा, कान्डुपा, कुण्डपा तथा कणेरीपाव के नाम से भी जाना जाता है। डॉ. श्यामसुन्दर दास के अनुसार ये बिहार प्रान्त के निवासी थे, जो भिक्षु होने के बाद कुछ समय तक नालन्दा में ही रहे। ये नागार्जुन के शिष्य थे।[७] कृष्णपाद के प्रसिद्ध शिष्य वीणाया, भदेया, धर्मया, महीपाआदि के अतिरिक्त नरवला और मेखला दो शिष्याओं की चर्चा भी मिलती है।[८]

*शोध छात्र, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

चौरंगीनाथ : 'शून्यपुराण' में आदिनाथ, मीननाथ, सिंगा, चरांगेनाथ, दण्डपानि और किन्नरी का उल्लेख है। चरांगेनाथ से तात्पर्य चौरंगीनाथ से है। कलकत्ता का चौरंगी मार्ग सम्भवतः इन्हीं के नाम से सम्बन्धित है। पिण्डी के जैन ग्रंथ-भण्डार में उपलब्ध 'प्राणसंकली' नामक हिन्दी रचना चौरंगीनाथ की बतायी जाती है।

चर्पटनाथ : नाथ सम्प्रदाय के अन्तर्गत चर्पटनाथ का एक अत्यन्त योगाचार्य एवं रससिद्ध महात्मा के रूप में स्वीकृत हैं। चर्पटनाथ के शिष्यों में राघवनाथ, बालनाथ, तोटकनाथ, जाम्बुनाथ, नित्यनाथ, सारेन्द्रनाथ, काकुत्सनाथ एवं भैरवनाथ इन आठ महासिद्धों की गणना की गयी है।[६]

भर्तृहरि : भर्तृहरि उज्जयिनी नरेश गंधर्वसेन के पुत्र थे। गाजीपुर (उत्तर प्रदेश) जनपद में भित्तरी (भर्तृहरि का प्राकृत रूप) ग्राम को भर्तृहरि की तपोभूमि बताया जाता है। उनकी एक गुफा भी इसी प्रदेश में बतायी जाती है। चुनार के किले में भर्तृहरि (भरथरी) की समाधि है। वहाँ अंग्रेजी भाषा में लिखित एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि विक्रमादित्य ने चुनार के किले का निर्माण कराया था।

गोपीचंदनाथ : गोरखपंथ के माननाथी सम्प्रदाय के प्रवर्तक एवं गोपीयंत्र के आविष्कर्ता गोपीचंद बंगाल के पालवंशीय शासक मणिकचंद तथा भर्तृहरि की बहन मैनावती के पुत्र बताये जाते हैं। १०२७ ई. में पिता के मर जाने पर गोपीचंद भोग में आसक्त हो गये थे। मयनामति की प्रेरणा से उन्होंने जालन्धरनाथ से दीक्षा ली। माता के उपदेश से प्रभावित उन्होंने अपनी दो सुन्दरियों- उदुना और पुदुना का त्यागकर वैराग्य धारण किया था।[१०]

निवृत्तिनाथ : इनका जन्म शकसंवत् ११६५ में गोदावरी के उत्तर तरफ 'आये' गाँव में हुआ था। लगभग नौ-दस वर्ष की आयु में निवृत्तिनाथ ने गैनीनाथ का शिष्यत्व स्वीकार कर उनसे दीक्षा ग्रहण की।[११] कहा जाता है कि अपने भ्रमण काल में एक समय निवृत्तिनाथ भटकते हुए अंजनी पर्वत की एक गुफा में जा पहुँचे, जहाँ गैनीनाथजी तप कर रहे थे। ये उनके चरणों में गिर पड़े।

अन्य सिद्ध पुरुष : नाथपंथ की परम्परा में अनेक ऐसे सिद्धों की चर्चा की जाती है जिनके सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं होती; संक्षेप में, कुछ ऐसे सिद्धों के सम्बन्ध में क्रमबद्ध गणना प्रस्तुत कर रहे हैं। ऐसे सिद्धों में रतननाथ, नागार्जुन, नागनाथ, चुणकरनाथ, मल्लिकानाथ, चौलीनाथ, घोड़ाचौली, बालनाथ, हणवन्त, देवलनाथ, परवत सिद्ध, धूंधलीमल्ल, गरीबनाथ, अजयपाल, पृथ्वीनाथ आदि का नाम उल्लेखनीय है।

संदर्भ :

१. सिद्ध संहिता विवेक सागर, भाग एक, पृ.११
२. वही, पृ.१६
३. डॉ. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, नाथ और संत साहित्य तुलनात्मक अध्ययन, पृ.२-५
४. भगीरथ प्रसाद त्रिपाठी, गोरक्ष संहिता प्रथम भाग, पृष्ठ ग
५. रांगेयराघव, गोरखनाथ और उनका युग, पृ.१८
६. गोरक्ष संहिता, प्रथम अध्याय, पृ.(ङ, च)
७. डॉ. श्यामसुन्दर दास, हिन्दी साहित्य, पृ.१३६
८. शिवपूजन सहाय, हिन्दी साहित्य और बिहार, पृ.१६२
९. योगिसम्प्रदायाविष्कृति, पृ.६६-११५
१०. रांगेयराघव, गोरखनाथ और उनका युग, पृ.२४
११. प्रो. देश पाण्डे, मराठी का भक्ति साहित्य, पृ. ३६-४२

गोरक्षनाथ के समय की धार्मिक परिस्थितियाँ

-स्वेजा त्रिपाठी*

भारत के धार्मिक इतिहास में 'गुरु गोरक्षनाथ' एक महायोगी के रूप में अद्यावधि लोक जीवन में सम्पूज्य हैं। यद्यपि गुरु गोरक्षनाथ के समय सीमा के सम्बन्ध में पर्याप्त विवाद है परन्तु अधिकांश विद्वानों का यह निष्कर्ष है कि गुरु गोरक्षनाथ छठवीं शताब्दी ईस्वी से लेकर बारहवीं शताब्दी ईस्वी तक निश्चित रूप से विद्यमान थे। विवेच्यकालीन सम्पूर्ण भारतीय जीवन विच्छृंखलित एवं विखण्डित दिखाई देता है। गुरु गोरक्षनाथ युग में प्रचलित प्रमुख धार्मिक सम्प्रदाय हैं-

वैष्णव धर्म- विवेच्ययुगीन आभिलेखिक स्रोतों में वैष्णव धर्म के कम संदर्भ प्राप्त होते हैं। गुजरात के राजा जयसिंह सिद्धराज के काल का दोहद स्तम्भ अभिलेख एक मंत्री द्वारा गोग (योग) नारायण के मन्दिर स्थापना की चर्चा करता है।[1] कुम्भशाल के शासनकाल में किसी राजा ने योगनारायण की पूजा-अर्चना हेतु कुछ भूमिदान किया था।[2] नाड्डूल के चाहमानों की एक दान विज्ञप्ति से ज्ञात होता है कि वासुदेव मन्दिर को कुछ दान किया गया है।[3] चन्देलों द्वारा भी वैष्णव धर्म को प्रोत्साहित किया गया था, जिसके प्रमाण खजुराहों के मन्दिर-समूह में विद्यमान कतिपय विष्णु मन्दिर हैं; यथा- लक्ष्मण मन्दिर,[4] वामन मन्दिर[5] आदि। परमर्दि के अभिलेख में एक विष्णु मन्दिर का वर्णन है।[6]

अजमेर प्रस्तर अभिलेख में[7] विष्णु के दशावतारों की सूची दी गयी है। भोज वर्मन के बेवाल ताम्रपत्राभिलेख में भी दशावतारों की सूची प्राप्त होती है।[8]

कच्छपघात नरेश की एक वि.सं.११७७ की दान-विज्ञप्ति को **"ॐ नमो नारायण"** से प्रारम्भ किया गया है तथा उसमें उस राजा की उपाधि "परम वैष्णव" है। बंगाल में लक्ष्मणसेन के काल तक वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार बढ़ गया था। उसके अभिलेखों से ज्ञात होता है कि अपने अन्तिम दिनों में वह धार्मिक प्रवृत्तियों की ओर झुक गया था और उसने अपने को "परम वैष्णव" घोषित कर दिया था।[9] किन्तु उत्तर भारतीय राजाओं में से बहुत कम ने ही वैष्णव उपाधियाँ धारण की।[10]

विवेच्य युग के वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायियों ने संश्लिष्ट देवताओं का आविष्कार एवं प्रतिपादन करके धार्मिक सहिष्णुता तथा एकता का वातावरण निर्माण करने का प्रयास किया था। परिणामस्वरूप योगनारायण हरिहर, प्रद्युम्नेश्वर, आदित्यनारायण एवं प्रजापिता ब्रह्मार्थ आदि देवताओं की मूर्तियों की सृष्टि हुई।

वैष्णव सम्प्रदाय की अवतारवादी अवधारणा के फलस्वरूप इसमें कई छोटी-छोटी शाखाएँ हो गयीं। कृष्ण, राम आदि की अलग-अलग उपासना होने लगी, उनकी विशिष्ट उपासना पद्धतियाँ विकसित हुईं। निम्बार्क तथा जयदेव ने कृष्णोपासना पर विशेष बल दिया तथा कृष्णभक्ति शाखा का सृजन करके भागवत् धर्म को खण्डित कर दिया।

शैव धर्म- साहित्यिक, आभिलेखिक एवं अन्य पुरातात्त्विक साक्ष्यों के मन्थन से यह निष्कर्ष निकलता है कि आलोच्य युग का सर्वाधिक लोकप्रिय धर्म शैव धर्म था। यह सम्पूर्ण भरत के अधिकांश भागों में प्रचलित था।[11] गुजरात के प्रसिद्ध जैन मतावलम्बी नरेश सिद्धराज ने गणनाथ नाम से शिव का एक मन्दिर स्थापित किया था।[12] प्रभासपाटन के सोमनाथ मन्दिर को एक गाँव दान में देने तथा उसके मरम्मत करवाने के सम्बन्ध में एक अन्य जैन शासक कुमारपाल का नामोल्लेख किया जा सकता है। इसी नरेश ने चित्तौड़गढ़ के एक शैव मन्दिर को

*शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर

मृतं गुप्तं तथा मत्स्यं मत्स्येन्द्रासनमेव च।
गोरक्षं पश्चिमोतानं उत्कटं संकटं तथा
मयूरं कुक्कुटं कूर्मं तथा चोत्तानकूर्मकम्।
उत्तानमण्डुकं वृक्षं मण्डूकं गरुडं वृषम्।।
शालभं मकरं चोष्ट्रं भुजंगं योगमासनम्।
द्वात्रिंशदासनानि तु मर्त्ये सिद्धि प्रदानि च।।-हठयोग स्वरूप एवं साधना, पृ.सं.४७ पर उद्धृत

७७. द्रष्टव्य- हठयोग प्रदीपिका, श्लोक सं. २/१

७८. द्रष्टव्य- वही, श्लोक सं. २/२

७९. द्रष्टव्य- वही, श्लोक सं. २/३

८०. द्रष्टव्य- वही, श्लोक सं. ४,५,६

८१. द्रष्टव्य- हठयोग स्वरूप एवं साधना, योगी आदित्यनाथ पृ.११४

८२. द्रष्टव्य- सिद्धसिद्धान्त पद्धति, द्वितीय उपदेश, पृ.४२

८३. द्रष्टव्य- वही, पृ.४८

८४. द्रष्टव्य- वही, पृ.४९-५० पर उद्धृत - चरतां चक्षुरादीनां विषयेषु यथाक्रमम्।
तत्प्रत्याहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते।।६।।
यथा तृतीयकालस्थो रविः प्रत्याहरेत्प्रभाम।
तृतीयाङ्गस्थितो योगी विकारं मानसं तथा।।७।।
अङ्गमध्ये यथाङ्गानि कूर्मः सङ्कोचमाहरेत्।
योगी प्रत्याहरेदेवमिन्द्रियाणि तथात्मनि।।८।।

८५. द्रष्टव्य- योगपद्धति, पृ.७६, श्लोक सं. २/३०

८६. द्रष्टव्य- वही

८७. द्रष्टव्य- सिद्धसिद्धान्त पद्धति, पृ.५१ पर उद्धृत श्लोक

८८. द्रष्टव्य- वही, पृ.५१

८९. द्रष्टव्य- वही, पृ.५२

९०. द्रष्टव्य- गोरक्षपद्धति, पृ.८२, द्वितीय शतक

९१. द्रष्टव्य- वही

९२. द्रष्टव्य- सिद्धसिद्धान्त पद्धति, पृ.५४, द्वितीय प्रकरण में उद्धृत विवेकमार्तंड के श्लोक

९३. द्रष्टव्य- गोरक्षपद्धति, द्वितीय शतक, पृ.९१-९२

९४. द्रष्टव्य- सिद्धसिद्धान्त पद्धति, पृ.५७ से ६९ तक तृतीय उपदेश

९५. द्रष्टव्य- गोरक्षपद्धति, प्रथम शतक, श्लोक सं. १४

९६. द्रष्टव्य- वही

९७. द्रष्टव्य- गोरक्षपद्धति, प्रथम शतक, श्लोक सं. ५१

९८. द्रष्टव्य- वही, पृ.२५

९९. द्रष्टव्य- गोरक्षपद्धति, प्रथम शतक, श्लोक सं. ५१

१००. द्रष्टव्य- भारतीय साधना की धारा, पृ. ८५ से ८७

१०१. द्रष्टव्य- गोरक्षनाथ और नाथसिद्ध, पृ. ३५६

१०२. द्रष्टव्य- योगवाणी, पद सं. २३- आऊं नहीं जाऊं निरंजन नथ की दुहाई।
प्यंड ब्रह्मण्ड योजंता, अन्हें सब सिधि पाई।। टेक।।
काया गढ़ भीतर नव लष खाई।
दसवै द्वारि अवधू ताली लाई।।१।।
काया गढ़ भीतरि देव देहुरा कासी।
सहज सुभाइ मिले अबिनासी।।२।।
बदंत गोरषनाथ सुणौ नर लोई।
काया गढ़ जीतैगा बिरला कोई।।३।।२३।।

१०३. अण्डमए णिअपिण्ड पीठम्मि पुरन्ति कलणदेवीओ।
पप्फुरइ अ परमसिवो णाणणिही ताण मन्झआरम्भि।। - महार्थमञ्जरी सपरिमला, पृ. ७६

नाथ परम्परा में दीक्षा

-डॉ. चन्द्रमौलि मणि त्रिपाठी*

नाथ शब्द अति प्राचीन है। वैदिक साहित्य में इसका प्रयोग विभिन्न अर्थों में होता आया है; ऋग्वेद में नाथ शब्द कर्ता, ज्ञाता तथा सृष्टि के निमित्त रूपों में हुआ है।[१] अथर्ववेद में नाथित एवं नाथ शब्दों का उल्लेख मिलता है।[२] 'राज गुह्य' के अनुसार 'नाथ' वह तत्त्व है जो अनादि रूप है तथा भुवनत्रय-स्थिति का कारण है। संस्कृत टीकाकार मुनिदत्त ने नाथ शब्द को सद्गुरु के अर्थ में ग्रहण किया है।[३] हठयोग प्रदीपिका की टीका में ब्रह्मानन्द का कथन है कि सब नाथों में प्रथम आदिनाथ हैं जो स्वयं शिव हैं।[४] गोपीनाथ कविराज ने 'न' का अर्थ अनादि रूप और 'थ' का अर्थ भुवनत्रय से स्थापित माना है।[५] शक्ति संगम तंत्र के अनुसार 'न' का तात्पर्य उस नाथ के ब्रह्म से है जो मोक्षद् (मोक्ष दान) में दक्ष है, ज्ञात और ज्ञेय दोनों है और 'थ' का अर्थ है अज्ञान को नष्ट करने वाला, अर्थात् **नाथ वह तत्त्व है, जो मोक्ष प्रदान करता है और ज्ञान को स्थापित करता है।**[५] इसी कारण श्रीगोरक्ष को नाथ कहा जाता है और उनके मतावलम्बी और सम्प्रदाय को नाथ सम्प्रदाय। दूसरे शब्दों में नाथ सम्प्रदाय उन साधकों का सम्प्रदाय है जो नाथ को परम तत्त्व के रूप में स्वीकार करके उसकी प्राप्ति के लिए योगसाधन करते हैं तथा इस सम्प्रदाय में दीक्षित होकर नामान्त में नाथ उपाधि धारण करते हैं। इस सम्प्रदाय को सिद्धमत, सिद्धमार्ग, योगमार्ग अथवा अवधूतमत भी कहा जाता है। डॉ. नागेन्द्र उपाध्याय ने नाथ को नाथपंथ का मान्य परम तत्त्व स्वीकार किया है।[७] आचार्य परशुराम शर्मा चतुर्वेदी का मत है कि नाथ शब्द भले ही कभी प्रभु व स्वामी जैसे कतिपय अर्थों का सूचक हो पर बाद में ये ऐसे महापुरुषों का बोधक मान लिया गया, जिन्हें अतिमानवत्व तथा देवत्व पद भी प्रदान किया जा सकता था,[८] अर्थात् परमात्मतत्त्व का अनुभव उसके तद्रूप तक पहुँचने वाला योगी साधक ही सिद्ध के नाम से अभिहित किया जाता है। वर्तमान समय में योगी एक दूसरे के लिए नाथजी शब्द का व्यवहार करते हैं अतः इस अर्थ में आज नाथ शब्द सम्प्रदाय में उनके अनुयायी जनों के लिए प्रयुक्त होता है।

गोरक्ष-सिद्धान्त-संग्रह में शंकराचार्य के अद्वैत मत के पराभव की कथा मिलती है। नाथ सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है कि शंकराचार्य अंत में नाथ सम्प्रदाय के अनुयायी हो गये और इसी अवस्था में उन्होंने 'सिद्धसिद्धान्तबिन्दु' नामक ग्रंथ की रचना की।[९] शाबर-तंत्र में कापालिकों के बारह आचार्यों में प्रथम नाम आदिनाथ का ही है, और उनके बारह शिष्यों में से कई नाथ मार्ग के प्रधान आचार्य हैं। इसके अतिरिक्त शाक्त मार्ग, जो तंत्रमत को मानता है उसके उपदेष्टा भी नाथ ही थे, और उन्होंने ही तंत्रों की रचना की है, क्योंकि षोडशनित्यांतंत्र में शिव ने कहा है कि मेरे कहे हुए तंत्रों का ही नव नाथों ने लोक में प्रचार किया। शाक्त आचार भी चार भागों में विभक्त है- वामाचार, दक्षिणाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार; यह कौलमार्ग भी अवधूत मार्ग है। इस प्रकार स्पष्ट है कि समस्त शाक्त तंत्र भी नाथ परम्परा का अनुयायी है। कौलज्ञाननिर्णय नामक ग्रंथ में योगिनी कौलमत का उल्लेख मिलता है। गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ का सम्बन्ध इसी योगिनी कौल मार्ग से माना जाता है। त्रिपुरा सम्प्रदाय के अनेक सिद्धों के नाम वे ही हैं जो नाथपंथियों के हैं। त्रिपुरा मत के तांत्रिकों के आचार्य अपने को नाथ मतानुयायी ही मानते हैं। महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री ने 'बौद्ध गान ओ दोहा' नामक ग्रंथ की रचना की, इसमें चौरासी सिद्धों के रचित पद संगृहीत हैं। इन सिद्धों में कान्हपाद या कृष्णपाद का नाम आता है, वे अपने को कापालिक कहते हैं। उन्होंने अपने गुरु का नाम जालन्धरपाद दिया है, यह

*निदेशक, जन शिक्षण संस्थान बस्ती, स्कूल शिक्षा एवं साक्षरता विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

जालंधरपाद नाथपंथ के प्रसिद्ध आचार्य थे। स्कन्दपुराण के काशी खंड में नवनाथों का उल्लेख किया गया है, जिनमें से एक जालंधरनाथ हैं।[१०]

नाथ सम्प्रदाय की साधना पद्धति का मूल रूप औपनिषदिक योग धारा तथा आगम धारा में सन्निहित है। यौगिक प्रक्रिया तर्कसम्मत रूप में मुनि परम्परा से ही श्रमण धारा व आगम धारा के रूप में विभाजित हुई। ऋग्वेद के व्रात्य योगी, रुद्र की उपासना करते थे तथा प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाओं को महत्त्व देते थे तथा अपनी साधना के बल पर मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेते थे तथा यज्ञादि कर्मों से दूर किसी अरूप वस्तु के ध्यान व चिन्तन में निरत रहते थे।[११] इन योगियों की तुलना उपनिषदों के ऋषियों से की जा सकती है। योग साधना के लिए मन और चित्त की निर्मलता का जो विधान नाथ योग में प्राप्त होता है वह किसी न किसी रूप में उपनिषद् और गीता में भी मान्य है। नाथ योगियों में शिव और शक्ति के स्वरूप का जिस अर्थ में निर्वचन किया गया है लगभग उसी रूप में वेदान्त में 'ब्रह्म और माया', सांख्य में 'प्रकृति और पुरुष' तथा वैष्णवागम में 'नारायण एवं लक्ष्मी', 'कृष्ण व राधा', 'राम एवं सीता' के स्वरूप में निर्वचन होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि परम तत्त्व के स्वरूप को जो चिन्तन उपनिषदों में दिया गया है वही नाथ योगियों के चिन्तन का आधार है। योगधर्म वास्तव में एक ऐसा उदारतापूर्ण विराट धर्म है कि उसमें सभी धर्म समाविष्ट हो जाते हैं। वैदिक व्रात्यों की साधना पद्धति, नाथ योगियों की साधना पद्धति से बहुत कुछ मिलती है। संन्यास प्रारम्भ में शैवमत से सम्बद्ध था और नाथपंथी साधुओं के लिए भी संन्यासी शब्द व्यवहृत होता था। श्री घुरे ने नाथ लोगों को प्राचीन माहेश्वर, पाशुपत, कापालिक संन्यासियों का विकसित रूप स्वीकार किया है। घेरेण्ड संहिता के आधार पर नाथ योगियों का पाशुपतों, कापालिकों एवं अघोरियों से घनिष्ठ सम्बन्ध की सूचना मिलती है। विल्सन का मत है कि कापालिक लोग विशेषकर कनफटा सम्प्रदाय (नाथ) में अन्तर्भुक्त हुए। त्रिपुरा मत के आचार्य स्वयं को नाथपंथी कहते हैं। गोरक्ष-सिद्धान्त-संग्रह के अनुसार नाथ मार्ग यद्यपि विशुद्ध साधनापरक है तथापि कौल, कापालिक आदिमार्ग नाथ द्वारा ही प्रकटीकृत है। आचार्य विनय मोहन शर्मा ने नाथ मत को शैवधर्म से उद्भूत बताया है। ग्रियर्सन ने गोरखनाथ को शैवधर्म का श्रेष्ठ दीक्षागुरु स्वीकार किया है।[१२] पंचकड़ी बन्द्योपाध्याय का मत है कि बंगाल में गोरखनाथजी ने शैवधर्म का प्रचार-प्रसार किया।[१३] डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का अनुमान है कि गोरक्ष से पहले दो प्रकार के मत रहे होंगे, एक जो योगमार्गी है किन्तु शैव व शाक्त नहीं थे। दूसरे जो शैवागमवादी थे किन्तु योगमार्गी नहीं थे। दोनों ही प्रकार के कई सम्प्रदाय (जो पूर्ववर्ती थे) गोरक्षनाथ संगठन में सम्मिलित हो गये और उनके प्रवर्तकों को गोरक्षनाथ का शिष्य समझा जाने लगा।[१४] इसमें से वाममार्गी शाक्त, बौद्ध, अघोर, आदि सम्प्रदाय भी रहे होंगे। औघड़मत गोरखनाथ व दत्तात्रेय दोनों के बीच की एक ही कड़ी है, इसकी सैद्धान्तिक पीठिका बाबा किनाराम की विचारधारा है। अपने विचित्र विचारधारा के कारण इनका सम्बन्ध कापालिकों से अधिक निकट दिखाई पड़ता है। इस पंथ के पूर्व तक किनाराम के गुरु कालूराम थे। अवधूत परम्परा के प्रभाव से टेकमनराम तथा भीखमराम जैसे संतों की वाणियों में हठयोग की शब्दावली का प्रयोग मिलता है। सरभंग सम्प्रदाय, अवधूत या औघड़ परम्परा का ही एक रूप है इसका निकटतम सम्बन्ध शैव मत के शाक्त शाखाओं से है। भरत सिंह उपाध्याय का मत है कि औघड़ प्राचीन कापालिकों का अवशिष्ट रूपान्तरित मत है, यह नाथपंथियों का दूसरा वर्ग है जो नाथ सम्प्रदाय की सम्पूर्ण दीक्षा प्रक्रिया में सम्मिलित नहीं होते फिर भी अपने को नाथपंथी स्वीकार कर गुरु गोरखनाथ के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करते हैं।[१५]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वेदवाह्य साधनाएँ नाथपंथ में योग के माध्यम से एकीकृत हुईं। डॉ. मलिक

का मत है कि नाथ सम्प्रदाय धर्म उपनिषदों का धर्म है। इसमें जैनों का जत नामक चूड़ान्त ब्रह्मचर्य, बौद्धों का विज्ञान, एवं शून्यवाद तथा वज्रयान व तंत्र का लय तथा कुण्डलिनी योग सहजिपा मत, कौल मत, हठयोग साधना का अपूर्व मिश्रण है। डॉ. ईश्वरदत्त राकेश का मत है कि ज्ञान योग प्रधान ईश्वरवादी संयमपूर्ण साधना नाथयोगी सम्प्रदाय के रूप में विकसित हुई और गोरखनाथ ने कायाशोधन, मनोकारण आत्मचिन्तन, तथा रासायनिक सिद्धि के आधार पर नाथ सम्प्रदाय की पुनर्संरचना की और बारह सम्प्रदायों को भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में स्थापित कर सम्पूर्ण वृहत्तर भारत में योगी सम्प्रदाय का प्रभाव फैला दिया।[१६]

गोरखनाथ ने जिस नाथ सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया उसमें शैव, शाक्त, बौद्ध, जैन व वैष्णव आगमों के न्यूनाधिक तत्त्व किसी न किसी रूप में अवशिष्ट हुए हैं। तंत्रागमों का प्रभाव अपरिहार्य था, अतः सभी धर्मों में उनके तत्त्व अनुस्यूत (बिखरे) दिखाई पड़ते हैं, पर गोरखनाथ द्वारा नाथ सम्प्रदाय की पुनर्संरचना में शैवोपासक व्रात्य मुनियों की परम्परा को दृढ़ आधार दिया गया। यही कारण है कि नाथ सम्प्रदाय के योगियों ने मानव समाज में बिखरी हुई कुप्रथाओं, कुसंस्कारों एवं विकृत मान्यताओं को नष्ट करने का संकल्प किया। कालान्तर में इस प्रकार के छोटे-छोटे सम्प्रदाय नाथ सम्प्रदाय में विलीन होते गये। इस प्रकार नाथ सम्प्रदाय उन सभी साधकों का सम्प्रदाय है जो नाथ को परमपद स्वीकार कर उसकी प्राप्ति के लिए योग साधना करते हैं तथा इस सम्प्रदाय में दीक्षित होकर नामान्त में 'नाथ' उपाधि जोड़ते हैं।

गोरखवानी में नाथ के दो अर्थ प्रयोग मिलते हैं- एक जगह नाथ का प्रयोग रचयिता के रूप में हुआ है तो दूसरी जगह परमब्रह्म या परमतत्त्व के लिए।[१७] नाथेत्तर साहित्य में नाथ का प्रयोग मायाजेता के रूप में किया गया है, वहीं पर उन्हें त्रिभुवनयती भी माना गया है और उन्हें ब्रह्मा, विष्णु, महेश के क्रम में स्वीकार किया गया है परन्तु योगशास्त्र में इसकी महत्ता और क्रम इस प्रकार बताया गया है-

शिव, भैरो, श्रीकंठ, सदाशिव, ईश्वर, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा, सृष्टि। इससे स्पष्ट होता है कि नाथ इस सृष्टि क्रम से पूर्णतया परे हैं। वहीं पर इस बात का उल्लेख मिलता है कि सिद्धों के इष्ट नाथ हैं जिन्होंने स्त्री व उसकी सत्ता को स्वीकार नहीं किया। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि देवता तथा अण्डज, पिण्डज, उष्मज (नभचर, जलचर, थलचर) सभी स्त्रियों द्वारा विजित हैं, लेकिन नाथ ही मायाजेता है। नाथेत्तर साहित्य में यह शंका स्वाभाविक ही है कि नाथ शब्द का प्रयोग नाथ सम्प्रदाय के सिद्धों के लिए किया गया है जबकि नाथ शब्द एक उपाधि है। बंगाल के योगी लोग भी अपने-अपने नामों के अन्त में नाथ शब्द का प्रयोग करते हैं और अन्य व्यवसायी भी। नाथ सम्प्रदाय के विभिन्न नाम अन्य क्षेत्रों में भी प्रचलित दिखाई पड़ते हैं यथा योगी, कनफटा, दर्शनी और गोरखनाथी। इस परम्परा के भिक्षु और संन्यासी तथा गृहस्थ पंजाब से लेकर बंगाल और नेपाल तक मिलते हैं और ये सभी गोरखनाथ को अपना गुरु मानते हैं। किन्तु इसी के साथ यह भी सत्य है कि बहुत सी तांत्रिक साधना परम्परा में जो सीधे नाथ परम्परा में नहीं आते वहाँ पर भी नाथ उपाधि लगायी जाती है। उदाहरण के लिए श्रीविद्या परम्परा में साधना करने वाले व्यक्ति की अभिषेक (दीक्षा) होती है इसके बाद नाथ उपाधि को वे अपने नाम के आगे लगा सकते हैं। ललितासहस्रनाम के प्रसिद्ध टीकाकार भास्करानन्दनाथ इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त गृहस्थों में भी नामान्त के रूप में कहीं-कहीं नाथ शब्द का प्रयोग मिलता है यथा पूर्वी उत्तर प्रदेश के सिद्धार्थनगर जनपद में पंक्तिपावन ब्राह्मणों का एक प्रसिद्ध गाँव है चेतिया। जहाँ के ब्राह्मण परिवारों में कुल नाम के रूप में 'नाथ' शब्द का अनिवार्यतः प्रयोग होता है। जबकि यह ज्ञात तथ्य है कि ये लोग नाथ सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं होते। इन विभिन्न प्रान्तों में नाथपंथी लोगों के अनेक नाम मिलते हैं। ब्रिक्स के अनुसार ये लोग पंजाब, हिमाचल प्रदेश, बम्बई (महाराष्ट्र) आदि प्रदेशों

में नाथ नाम से पश्चिमी भारत में प्रायः 'धर्मनाथी' नाम से तथा अन्य भागों में यह 'गोरखनाथी' व 'कनफटा' नाम से संबोधित किये जाते हैं। पंजाब में मुस्लिम योगी भी मिलते हैं जिन्हें 'रावल' नाम से पुकारा जाता है।[१८]

इन नामों पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि ये नामकरण विभिन्न दृष्टियों से किये गये हैं, यह नाम कहीं सम्प्रदायगत है तो कहीं विशिष्टता के कारण। हठयोग की साधना के कारण उन्हें योगी कहा जाता है। यहाँ योगी शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त है, उसमें ऐसे भी योगियों को समाहित किया जाता है जो कनफटे नहीं हैं, संन्यासियों के लिए भी योगी शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार कनफटा, दर्शनी और गोरखनाथी योगी में ही आते हैं। नाथपंथियों का मुख्य सम्प्रदाय गोरखनाथी योगियों का है जो मुख्यतः बारह शाखाओं में विभक्त है। अनुश्रुति के अनुसार स्वयं गोरखनाथ ने परस्पर विच्छिन्न नाथपंथियों का संगठन करके इन्हें बारह शाखाओं में विभक्त कर दिया था जो इस प्रकार है-[१९]

१. सत्यनाथी	२. धर्मनाथी	३. रामपंथ	४. नटेश्वरी
५. कन्नड़	६. कपिलानी	७. वैराग	८. माननाथी
९. आईपंथ	१०.पागलपंथ	११.धजपंथ	१२.गंगानाथी

इन्हीं बारह पंथों के कारण शंकराचार्य के दसनामी संन्यासियों की भाँति इन्हें बारह (द्वादश) पंथी योगी कहा जाता है। प्रत्येक पंथ का एक विशेष स्थान है जिसे ये लोग अपना पुण्य क्षेत्र मानते हैं साथ ही यह पंथ किसी पौराणिक देवता या महात्मा को अपना आदि प्रवर्तक मानता है। एक अन्य अनुश्रुति के अनुसार शिव ने बारह पंथ चलाये थे और गोरखनाथ ने भी, दोनों दल आपस में झगड़ते थे; अतः स्वयं गोरखनाथ ने छः अपने और छः शिवजी के पंथों को जोड़ दिया, वही आजकल नाथपंथियों की बारहपंथी शाखा बनी।[२०] इन अनुश्रुतियों से शिव का बारहपंथी शाखा से संबद्ध होना सिद्ध है। साम्प्रदायिक ग्रंथों में शिव के दो प्रधान शिष्य बताये गये हैं - मत्स्येन्द्रनाथ और जालंधरनाथ। मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ हैं और जालंधरनाथ के शिष्य बारह कापालिक हैं-

१.आदिनाथ	२.अनादि	३.काल	४.अतिकाल	५.कराल	६.विकराल
७.महाकाल	८.कालभैरवनाथ	९.बटुकनाथ	१०.वीरनाथ	११.भूतनाथ	१२.श्रीकंठ

इन शाखाओं की बहुत सी उपशाखाएँ हैं। गोरखपुर व आसपास के परिक्षेत्र में धर्मनाथ शाखा का प्राधान्य है। इनका मुख्य स्थान उत्तर प्रदेश के गोरखपुर शहर में गोरक्षनाथ पीठ है जहाँ के वर्तमान महंत श्री अवेद्यनाथजी हैं।

वेशभूषाः

नाथ योगी को स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है। मेखला, जनेव, शृंगी, सेली, कंथा, गुदरी, खप्पर, कर्णमुद्रा, धंधारी बाघम्बर झोला, डण्डा आदि चिह्न ये लोग धारण करते हैं। इनके वस्त्र भगवे, श्वेत तथा काले होते हैं पर अधिकांशतः भगवे वस्त्र ही पहनते हैं तथा कुछ नंगे सिर भ्रमण करते हैं, तो कुछ केश व दाढ़ी रखते हैं। नाथ योगियों की मुख्य विशेषता यह है कि ये लोग कान के मध्य भाग में कुण्डल पहनते हैं। यह प्रथा किस प्रकार प्रारम्भ हुई, इस विषय पर नाना प्रकार की दंत-कथाएँ प्रचलित हैं। जिनमें एक तो यह है कि भगवान शिव के आदेश से मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने कान में कुण्डल पहने और अपने शिष्यों को कुण्डल पहनाये। यह कुण्डल सामान्यतया हाथी के दाँत, विलोर पत्थर, गैंडों के सींग व सोने व अन्य धातुओं के होते हैं। दूसरी अनुश्रुति यह है कि गोरखनाथ ने भरथरी का कान फाड़कर मिट्टी के कुण्डल पहनाये पर मिट्टी के कुण्डल के टूटने की आशंका बनी रहती है इसलिए धातु या हिरण के सींग की कर्णमुद्रा धारण की जाती है। विधवा

स्त्रियाँ तथा गृहस्थ योगियों की पत्नियाँ भी इसे धारण करते देखी जाती हैं।[२१]

गोरखनाथी लोग एक विशेष शुभ मुहूर्त (विशेषतः वसंत पंचमी को) पर कान को चिरवा कर मंत्र के संस्कार के साथ इस मुद्रा को धारण करते हैं। कुछ ऐसे नाथपंथी हैं जो आजीवन कर्णमुद्रा धारण ही नहीं करते। कहा जाता है कि हिंगलाज में दो सिद्ध एक शिष्य का कान चीरने लगे, पर हर बार यह छेद बंद हो जाता था। तभी से औघड़ लोग कान नहीं चिरवाते। कुछ उदारवादी योगियों का मानना है कि श्रीनाथ ने यह प्रथा इसलिए चलायी होगी कि कान चिरवाने की पीड़ा के भय से अनधिकारी लोग इस सम्प्रदाय में प्रवेश नहीं कर सकेंगे। नाथ-पंथ के अनुयायी मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं; दर्शनी और औघड़। दर्शनी (अघोरी) उसे कहते हैं जिसने कान फड़वाकर कुण्डल धारण कर लिया हो तथा औघड़ केवल नादजनेऊ धारण करते हैं। इसके अतिरिक्त योगियों के पास पहनने के लिए पीली अथवा भगवी धोती, कमीज, जैकेट तथा सिर पर टोपी अथवा पगड़ी एवं भगवे रंग का थैला भी रहता है जो भिक्षा के सामग्री संचयन में प्रयुक्त होता है, साथ ही एक डंडा व लोहे का चिमटा भी रहता है।

नाथ सम्प्रदाय में जनेऊ (यज्ञोपवीत) का विशेष महत्त्व है। यह जनेऊ काले भेड़ के ऊन से बनाये जाते हैं। कहा जाता है कि जनेऊ बनाने के लिए भेड़ की ऊन भी किसी कुवांरी कन्या द्वारा संचित किया जाता है और उसे कातने के पश्चात जनेऊ तैयार किया जाता है; उससे जुड़ी हुई एक पवित्री होती है जो गोलाकार छल्ले की भाँति होती है। पवित्री के साथ ही सूत के धागे से बँधी नादि होती है जो एक विशेष प्रकार की आवाज निकालती है। यह नादि साधारणतया काले हिरण की सींग या बारहसिंहे की सींग की बनी होती है। कुछ योगियों के पास पत्थर, लकड़ी या अन्य सस्ती धातुओं से बनी पायी जाती है। काले हिरण की सींग की नादि अधिक पवित्र मानी जाती है। इस नादि को योगी पूजा करते समय बजाते हैं, इसके अतिरिक्त जब भी कोई योगी गुरु से भेंट करता है तो एक हाथ से नादि पकड़कर बजाता है और दूसरा हाथ गुरु के चरणों में रखता है एवं गुरु की आँखों में आँखें मिलाकर आदेश-आदेश शब्द का उच्चारण करता है। यह शब्द इस सम्प्रदाय में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। नाथ सम्प्रदाय में सामान्य शिष्टाचार में भी इसी शब्द का प्रयोग किया जाता है।

नादि के बारे में यह धारणा प्रचलित है कि राजा भर्तृहरि ने काले हिरण का शिकार को सोचा पर कोई हिरण हाथ नहीं आया पर एक हिरण इस शर्त पर शिकार बनने के लिए तैयार हुआ कि उसके मृत्यु के उपरान्त उसके सींग की नादि बनायी जाय, जिससे गुरु गोरक्षनाथ की पूजा हो सके, तबसे नाथ सम्प्रदाय में काले हिरण का छाल तथा इसके सींग का कुंडल तथा नादि अत्यंत पवित्र माना जाता है। नादि के साथ बँधा हुआ रुद्राक्ष का मनका होता है जो इस सम्प्रदाय में अत्यन्त पवित्र माना जाता है। रुद्राक्ष एकमुखी से लेकर इक्कीसमुखी तक होता है। कुछ योगी अपने माथे पर त्रिपुण्ड भी बनाते हैं। त्रिपुण्ड की तीन रेखाएँ होती हैं ये रेखाएँ या तो राख (भस्म) की अथवा मिट्टी व चन्दन की भी होती हैं। काल भैरव के पुजारी काले रंग की रेखाएँ तथा हनुमान के पुजारी लाल रंग की रेखाएँ लगाते हैं; कई योगी पूरे शरीर में भस्म लगाये रहते हैं। नाथपंथियों की भस्म धूनी से ली जाती है। प्रत्येक मठ में एक धूनी अवश्य होती है जिसे श्रीनाथजी की धूनी कहा जाता है। धूने में एक या अधिक त्रिशूल भी रखे रहते हैं। प्रसाद के रूप में धूने से भस्म दी जाती है। ऐसा लोक विश्वास है कि धूने की भस्म कई प्रकार के रोगों के उपचार व बाधाओं के शमन के लिए शक्तिशाली होती है। यह दैहिक, दैविक, भौतिक ताप भय विनाशी है। कई कनफटे योगी स्थान-स्थान पर छोटे मन्दिरों में डेरे लगाये बैठे मिलते हैं, ये तंत्र विद्या में भी निपुण होते हैं, जिसके द्वारा अनेक रोगों के साथ-साथ भूत-प्रेतादि बाधाओं से मुक्ति मिलती है, कुछ साँप के काटे का भी इलाज मंत्र द्वारा करते हैं। इनके बारे में

प्रचलित है कि यह योग द्वारा प्रकृति पर भी विजय प्राप्त करते हैं। (योगस्तुप्रकृतोपरः)।

नाथ-पंथ में कुछ अघोरी भी होते हैं जो सामान्यतया मुर्दाघाट पर होते हैं यह लोग आम तौर पर अग्नि से शव निकालकर खा जाते हैं। यह लोग अधिकतर जंगलों में अथवा रात्रि के समय श्मशान घाट पर भ्रमण करते हैं। कहा जाता है कि इनके पास कई प्रकार की सिद्धियाँ होती हैं और यह असाधारण कार्य भी कर सकते हैं। इसलिए इन्हें शव-साधक भी कहा जाता है।

दीक्षा-प्रक्रियाः

किसी भी बड़े मठ में किसी भी नये व्यक्ति को सम्प्रदाय में प्रवेश करने के पूर्व उसके चरित्र के विषय में पूर्णरूपेण जाँच करायी जाती है। शिष्य की योग्यता भी इस प्रकार परमार्थ के मार्ग में कम महत्त्व नहीं रखती। यह मार्ग केवल शूर के लिए है, जिसमें अदम्य बल, उत्साह, त्याग, वितिक्षा, विवेक और वैराग्य हो। परमार्थ का साधन दिन-रैन का जूझना है यह मैदान शूर के ही हाथ रहता है।[२२]

शिष्य में यदि आवश्यक योग्यता नहीं है तो उसे शिष्य नहीं बनाना चाहिए। इस तरह की योग्यता सहस्रों में से किसी एक के पास होती है। अतः नाथ-पंथ में अधिक शिष्य बनाने का निषेध किया गया है। अयोग्य को शिष्य बनाने में गुरु को दोष लगता है। ऐसे शिष्य भ्रष्ट हो जाते हैं। स्त्रियों के भ्रष्ट हो जाने पर जिस प्रकार से पति को लज्जित होना पड़ता है, उसी तरह शिष्य के भ्रष्ट हो जाने पर गुरु को लज्जित होना पड़ता है। नाथपंथ में शिष्य के बत्तीस लक्षण कहे गये हैं।[२३]

ज्ञान परीक्षा	-	निरालम्ब, निर्भ्रम, निवासी, निःशब्द
विवेक परीक्षा	-	निर्मोह, निर्बन्ध, निर्शंक, निर्विषय
निरालम्ब परीक्षा	-	निष्प्रपञ्च, निरुतरंग, निर्द्वन्द्व, निर्लेय
संतोष परीक्षा	-	अचानक, अवांछक, अभान, अस्थिर
शील परीक्षा	-	शुचि, संयमी, शान्त, श्रोता
बमेक परीक्षा	-	सर्वांगी, सावधान, सन सारग्राही
सहज परीक्षा	-	सुहृदय, शीतल, सुखद, स्वभाव
शून्य परीक्षा	-	जय, लक्ष्यम्, ध्यानम्, समाधि

नाथपंथियों में अनजान बने रहना उचित बताया गया है। इस सम्प्रदाय की मान्यता है कि तत्त्वविद् होते हुए भी संसार में इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए कि जैसे कि कुछ नहीं जानते हों। गुरु के बनाने से लाभ होता है परन्तु शिष्य (चेले) बनाने से सदैव हानि की सम्भावना रहती है।[२४]

अंधकार को प्रकाश में, अज्ञान को सुज्ञान में, मृतत्त्व को अमृतत्व में, आत्मा को परमात्मा में, अनिश्चय को निश्चय में, अशिव को शिव में, जर को अजर में, अनाथ को नाथ में परिणत करके सच्चिदानन्द में सुस्थिर होना नाथ गुरुओं का लक्ष्य व उद्देश्य है।

आत्मेति परमात्मेति जीवात्मेति विचारतः। भयाणाभैक्य संभूतिरादेश परिकीर्तितः।।

केन उपनिषद् में कहा गया है कि-

'यस्यैष आदेशो यदेतद् विद्युतो व्यद्यु तदा इदीन्य मीभिषदा इत्यादि देवतम्'

अर्थात् उस ब्रह्मा का सांकेतिक उपदेश है जो कि बिजली का चमकना-सा है; नेत्रों का झपकना-सा है, इस प्रकार यह अधिदैविक उपदेश है। इस आदि उपदेश में दीक्षा प्राप्त नाथ योगी जब आपस में मिलते हैं तो आदेश-आदेश अथवा 'ॐ नमः शिवाय' आदि से अभिवादन करते हैं।[२५] नाथ सम्प्रदाय में प्रवेश के लिए सर्वप्रथम

उसको नाद जनेऊ पहनाया जाता है तथा वह औघड़ कहलाता है। यह संस्कार सामान्यतः मठ अथवा आश्रम में ही किया जाता है। इस संस्कार के समय गुरु शिष्य की चोटी अपने हाथ से काटता है; पुनः स्नान कराया जाता है, साथ ही उसके शरीर पर भस्म लगाया जाता है; अब वह औघड़ हो जाता है। इन सब क्रिया के बाद वह गुरु-सेवा करने लगता है। उसके योगाभ्यास तथा नवनाथ का बहुत महत्त्व बताया गया है, शरीर के नव द्वार को नवनाथ माना गया है। यह नवनाथ का क्रमवार वर्णन इस प्रकार है-

१. ज्योति स्वरूप ॐकार महेश्वर - आदिनाथ
२. धरणी स्वरूप पार्वती - उदयनाथ
३. जल स्वरूप ब्रह्मा - सत्यनाथ
४. तेज स्वरूप विष्णु - संतोषनाथ
५. वायु स्वरूप शेषनाग - अचलनाथ
६. आकाश स्वरूप गणेश - गजकैथाड़ीनाथ
७. वनस्पति स्वरूप चन्द्रमा - चौरंगीनाथ
८. माया स्वरूप करुणामय - मत्स्येन्द्रनाथ
९. अलक्ष्य स्वरूप आयोनिशंकर - त्रिनेत्र गोरक्षनाथ

इसके साथ ही योग साधना के क्रमशः आठ अंगों का भी उल्लेख किया गया है- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि। नाथ सम्प्रदाय में दो प्रकार के शिष्यों का उल्लेख दिखाई पड़ता है; पहला प्रवर्जित- जो ज्ञान होने पर घर त्यागकर योग दीक्षा लेते हैं, और दूसरा प्रत्यार्पित- जो कि बालक के रूप में ही योगी की याचना से अर्पित किया जाता है। प्रत्यार्पित बालक योग के लिए सर्वश्रेष्ठ अधिकारी होता है। इससे जारणा योग और कुण्डल्युत्थान की आशा लेती है। प्रवर्जित शिष्य केवल श्वास और घट विचार का ही अधिकारी होता है हठ योग का प्रत्याशी नहीं हो सकता; किन्तु बल, अबल, कर्मठता आदि के विचार से वह भी योग्य ठहरे तो उसके लिए भी द्वार खुले होते हैं।

गुरु अपने शिष्य की कई प्रकार की परीक्षाएँ लेते हैं। यदि गुरु शिष्य के चरित्र या अन्य उपलब्धियों से सन्तुष्ट हो तो अन्त में कर्ण बेधकर कुण्डल धारण कराया जाता है। कर्ण बेध के पश्चात नये नाथ को कुछ दिन भिक्षाटन के लिए समीप के नगर में जाना पड़ता है। इस अवसर पर गुरु के आश्रम में नवनाथ एवं चौरासी सिद्धों के साथ बालसुन्दरी की पूजा की जाती है, तथा आरती, हलवा एवं लड्डू की भेंट भी चढ़ायी जाती है। इसके उपरान्त भण्डारा का आयोजन किया जाता है। कर्ण कुण्डल पहनने पर दीक्षित शिष्य उस पंथ का सदस्य मान लिया जाता है जिससे उसका गुरु सम्बन्धित हो। नाथ सम्प्रदाय में बारह पंथों का उल्लेख मिलता है।

१. सत्यनाथ - सत्यनामी पंथ
२. रामनाथ (रामचन्द्र) - रामपंथ या रामनामी पंथ
३. धरमनाथ (युधिष्ठिर) - धर्मनाथी पंथ
४. लक्ष्मणनाथ (लक्ष्मण) - नटेश्वरी पंथ या लक्ष्मणनाथी पंथ
५. दरियानाथ - दरियानाथी पंथ
६. गंगानाथ (भीष्म) - गंगानाथी पंथ
७. वैरागनाथ, विचारनाथ - वैरागी या वैरागीनाथ पंथ
८. रावल, नागनाथ - रावल पंथ

९. जालंधरनाथ - जलंधर पंथ
१०.आईनाथ (विमला) - आई पंथ
११.कपिलनाथ - कपिलनाथी पंथ
१२.धजनाथ (हनुमान) - धजनाथी पंथ

इस सम्प्रदाय में मुख्यतः पाँच गुरु माने जाते हैं-

१. **चोटी गुरु**- चोटी गुरु उसे माना जाता है जो प्रथमतः शिष्य की चोटी काटता है। शिष्य का पंथ भी चोटी गुरु के नाम से चलता है और वही अपने गुरु का हकदार भी होता है।
२. **चीरा गुरु**- यह उस गुरु को कहते हैं जिसने औघड़ के कान में चीरा दिया हो।
३. **विभूति गुरु**-वह है जो औघड़ शरीर पर कुण्डल पहनने से पहले प्रथम विभूति लगाता है।
४. **उपदेशो गुरु**-इसका तात्पर्य उस गुरु से है जो शिष्य को कान छेदने के समय उपदेश देता है।
५. **शिक्षा गुरु**- यह गुरु योगाभ्यास तथा अन्य प्रकार की शिक्षा देता है।

नया योगी कुण्डल धारण करने के पश्चात गुरु के आश्रम में ही रहता है जब तक उसकी दीक्षा पूर्ण न हो जाये। कालान्तर में गुरु शिष्य को तमाम व्यावहारिक शिक्षा देकर तीर्थाटन के लिए भेज देता है जिससे वह अपना स्वतंत्र रूप से जीवन शुरू कर सके। इस प्रकार दीक्षा के लिए चार संस्कारों की व्याख्या की गयी है जो शिखा, वेध, त्याग, उपदेश नाम से जाना जा सकता है। ऐसे योगी मन-पवन को वश में करके श्वासोच्छवास द्वारा अजपा जाप का पाठ करते हैं और अन्दर-बाहर से सेली, सिंगी, नाद, मुद्रा, रुद्राक्ष, त्रिपुण्ड, गैरिकाम्बर, विभूत्याम्बर, बाघम्बर धारण करके निश्चयात्मक वृत्ति में रहते हैं, ये नाथ योगी दर्शनी भी कहलाते हैं।[२६] योगी पुरुष नादि, मुद्रा, सेली, सिंगी आदि जो बहिरंग का भूषण बनाकर धारण करते हैं, उपदेश विधि संस्कार में भी सेवक को इन भूषणों को अंतरंग का भूषण बनाकर पहनने की आज्ञा देते हैं। योगी नादि मुद्रादि को अन्दर-बाहर से धारण करते हैं और सेवक को अन्तःकरण में धारण कराते हैं और समझात हैं कि यह नादि मुद्रा तुम्हारे घट के भीतर मौजूद है।[२७] नाथपंथी साहित्य में कहा गया है कि मत्स्येन्द्रनाथ को अपना स्वरूप प्रदान करते समय महादेवजी ने स्वरूप का जो महत्त्व समझाया है, वह इस प्रकार है।[२८]

विभूति स्नान अभिप्राय :

श्री महादेवजी बालक तपस्वी सहित कैलास आये और अगले दिन अपना वेश स्वीकृति कराने लगे। प्रथम सिर में विभूति डालकर विभूति स्नान कराने के साथ-साथ उसका महत्त्व अर्थात् अभिप्राय भी समझाया कि 'हे शिष्य! हमने जो तेरे सिर पर डाला है यह भस्म अर्थात् मृत्तिका है। अतएव इसके डालने के द्वारा हम तुम्हें यह उपदेश देते हैं कि तुम आज से पृथ्वीवत हो जाना और जिस प्रकार अच्छी व बुरी वस्तु रखने से यह पृथ्वी कभी प्रसन्नता अप्रसन्नता नहीं प्रकट करती उसी प्रकार कोई भी सांसारिक मनुष्य अपने ज्ञान से व अज्ञान से तुम्हारे साथ अच्छा या कुत्सित व्यवहार करे, तुम पृथ्वी की तरह सदा एक रस ही बने रहना अर्थात् पृथ्वी तुल्य जड़ हो जाना। चेतनता केवल अलक्ष पुरुष का प्रिय बनकर आत्मोद्धार के लिए समझना अथवा इस भस्मी को डालने के द्वारा हमारा यह अभिप्राय मानना कि अग्नि के संयोग के पहले जिसकी यह भस्मी बनी है वह काष्ठ था। जिससे काठिन्यादि अनेक गुण थे और उसकी व्यावहारिक अनेक वस्तु भी बन सकती थी। परन्तु अग्नि के संयोग होने पर काष्ठ की यह दशा हो गयी कि इसके वे काठिन्यादि कुत्सित गुण न जाने कहाँ चले गये। अब इसमें से उन अनेक वस्तुओं का बनना भी संभव नहीं रहा। ठीक उसी प्रकार हमारे संयोग के पहले सम्भव है कि तुम अनेक सांसारिक व्यापार भी कर सकते थे परन्तु हमारे संयोग से

प्राप्त कर अब ऐसा हो जाना कि उसमें काष्ठ की तरह उन कुत्सित कृत्यों को भस्मसात् कर डालना।'

जल स्नान अभिप्राय :

महादेवजी ने जल स्नान का अभिप्राय समझाया कि 'हे शिष्य! जिसको हम तुम्हारे ऊपर छोड़ रहे हैं उसे वर्षाने वाला मेघ है। इस जल को सिर पर छोड़ने का हमारा यह अभिप्राय है कि तुम आज से वर्षाने वाला मेघ बन जाना और जिस प्रकार वह मेघ स्थल का भेद नहीं करता उसी प्रकार संसार के सभी श्रेणी के लोगों के साथ तुम्हारा समान बर्ताव होना चाहिए। अतएव तुम आज से जल बन जाना और जिस प्रकार हजार बार तपने पर भी यह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता तथा ऊपर डालने पर शीतलता प्रदान करता है ठीक इसी प्रकार कोई सांसारिक पुरुष तुम्हारी परीक्षा के अभिप्राय में अथवा अपने कुत्सित स्वभाव के अनुरोध से तुम्हारे अनेक तर्क न लगाये तो भी तुम जल की तरह अपना स्वभाव नहीं छोड़ना अर्थात् अपने सात्विक आत्मबल द्वारा उसको शान्त कर देना।

नाद जनेऊ का अभिप्राय :

यह काष्ठादि का बना हुआ यह नाद है, इसका दूसरा अर्थ शब्द है जो गुरु समझा जाता है अतएव आज से तुम नाद अर्थात् शब्द से अपनी उत्पत्ति समझना। नाद से उत्पन्न होने के कारण तुमने नूतन जन्म प्राप्त किया है। यह नाद जिसमें अवलम्बित है वह उर्णादि में निर्मित किया हुआ जनेऊ नाम से व्यवहृत किया जाता है। यह जिस प्रकार सांसारिक लोगों के जनेऊ से भिन्न है उसी प्रकार आज से अनेक अतथ्य व्यवहार परिणति सांसारिक व्यवहार में प्रवृत्त हो गये, तो कल्याण पथ प्राप्त करना तो दूर रहा तुम्हें अधिक हानि उठानी पड़ेगी। अतएव सदा अपने स्वच्छ उद्देश्य से मतलब रखना। इस अभिप्राय की आत्मा से जो दूर रहे वे भी व्यवहार में उपदेशी विधान के अवसर पर धातु की या बाँस की नली से शिष्य के कान में मंत्र फूँकते हैं। कान में मंत्र फूँकने की यह नली भी नाद संसर्ग के कारण 'नाद' कहलाती है।

भिक्षा का महत्त्व :

नाथ योगी की भूख निवृत्ति के लिए भिक्षावृत्ति करनी होती है, अलख भैरव रूप में भिक्षावृत्ति के लिए जाने का विशेष महत्त्व है; भैरव, छोली, बटुआ, भभूत, घुंघरू, नगीने, सेली आदि आवश्यक उपकरण हैं। उनकी चौबीस हाथ की सेली कमर से छाती तक बँधी रहती है। नौ हाथ की सेली गले में बँधी रहती है। दोनों भुजाओं में रंग-बिरंगे रुमाल बँधे रहते हैं। घुंघरुओं की ध्वनि गृहस्थों को योगी के आने की सूचना देती है। घंटे की आवाज सुनकर दरवाजे व रास्ते में भीख ले खड़े रहते हैं। योगी कहीं नहीं रुकता, झोली में प्राप्त एक दिन की वस्तु दूसरे दिन के लिए नहीं रखता क्योंकि यह कहा गया है कि- **आज खाय कल को रखै, ताको गोरख साथ न रखै।**

नाथपंथ में औघड़ शिष्य के लिए तीन दीक्षाएँ रह जाती हैं- बेध, उपदेश और त्याग।

चीरा बेध :

बेध अर्थात् कर्ण भेदन, यह बड़ी कठिन क्रिया है। इसके लिए अनुभवी गुरु और अनुकूल देश-काल की आवश्यकता होती है, बड़ी योग्यता से सावधान होकर शिष्य को उत्तरामुखी के रूप में समक्ष बैठाकर नीम के पानी से पकायी गयी दुधारी पतली छुरिका से कर्ण बेध किया जाता है। इस क्रिया के बाद वह नया नाथ बन जाता है। नया नाथ को चालीस दिन तक लम्बा सोना वर्जित है। यदि बैठे हुए नींद आ जाय तो कोई आपत्ति नहीं पर इसमें चीरा गुरु और नया नाथ दोनों को विशेष सावधानी रखनी पड़ती है। नया नाथ के इन चालीस दिनों को चीला कहा जाता है। इसके पूर्व में बतायी गयी यौगिक क्रिया करायी जाती है और पथ्य की

आवश्यकता पर जोर दिया जाता है। उचित उपचार होने पर बीस-पच्चीस दिनों में यह ठीक हो जाता है लेकिन इस प्रकार का बंधन चालीस दिन तक विद्यमान रहता है। सुधाकर चन्द्रिका में कहा गया है कि गोरखनाथियों का यह विश्वास है कि स्त्रियों के दर्शन से घाव पक जाता है, इसलिए जब तक घाव अच्छा नहीं हो जाता तब तक स्त्री दर्शन से बचने के लिए किसी कमरे में बंद रहते हैं और फलाहार करते हैं।[२९] जिस योगी का कान खराब या फट जाता है, वह सम्प्रदाय से अलग हो जाता है और पुजारी बनने का अधिकार खो देता है।

उपरोक्त विवरण से नाथ सम्प्रदाय में 'कुण्डल मुद्रा' का महत्त्व स्पष्ट होता है। इस पंथ में कर्णकुण्डल चलाने की प्रथा का श्रेय मत्स्येन्द्रनाथ व गोरखनाथ को दिया जाता है तथापि कर्णकुण्डल की प्रथा प्राचीन है। कुण्डलधारी शिव-मूर्तियाँ प्राचीन काल से ही बनती हैं। एलोरा गुफा के कैलास मन्दिर में शिव की एक महायोगी मुद्रा की मूर्ति पायी गयी है जिसके कान में बड़े-बड़े कुण्डल हैं। यह मन्दिर व मूर्ति आठवीं सदी ई. की है परन्तु यह कुण्डल कनफटा योगियों की भाँति नहीं पहने गये हैं। ब्रिग्स ने आठवीं सदी की सालसेटी, एलोरा, एलीफैण्टा की मूर्तियों के कुण्डल को कनफटा योगियों के कुण्डल जैसे बताया है।[३०] इसके अतिरिक्त मद्रास के उत्तरी आर्काट जिले के परशरामेश्वर का जो मन्दिर है उसके भीतर स्थापित लिंग पर शिव की एक मूर्ति है जिसके कानों में कनफटा योगियों के समान कुण्डल धारण कराया गया है। इस मन्दिर का पुनर्संस्कार ११२६ ई. में हुआ है; अतः निश्चय ही यह मूर्ति बहुत पुरानी होगी, पुरातत्त्वविद् टी.ए. गोपीनाथ राव ने इस मूर्ति की तिथि दूसरी, तीसरी सदी ई. माना है।[३१] इससे स्पष्ट होता है कि मत्स्येन्द्रनाथ के पूर्व भी शैव मूर्तियाँ कुण्डलधारी होती थीं पर इससे इस परम्परा का विरोध नहीं होता क्योंकि नाथपंथी साहित्य में कहा गया है कि शिवजी ने अपना वेश ज्यों-का-त्यों मत्स्येन्द्रनाथ को दिया था, जिसके लिए उन्हें कठोर तपस्या करनी पड़ी थी।

उपदेश :

यह योगिधर के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण विधि है। यह मात्र योगियों के लिए ही नहीं, अपितु प्रत्येक शिखा-सूत्रधारी के लिए भी है। इस विधान में सिद्ध नाथसाधकों द्वारा वाणी गायी जाती है। कभी-कभी तो प्रश्नोत्तर में मजबूत मण्डली जुट जाय तो दो-दो दिन भी बीत जाता है। कब रात हुई, कब दिन हुआ, इसका भी ध्यान नहीं रहता है। शब्दगान की शैली, चाल-ढाल, लय, ध्वनि आदि का पता ही नहीं चलता है। शब्द गाने वाले को शब्दी या मुनिवर कहते हैं। जब ये रस में या जिद में आ जाते हैं तो अपने शब्दों की अनवरत चाल को नहीं छोड़ते हैं। ऐसे मौकों पर इनके गले का ध्यान रखना बहुत आवश्यक होता है, इसके लिए केसर, पिस्ता, बादाम मिला गर्म दूध पिलाया जाता है। काली मिर्च, इलायची, मिश्री बार-बार काम में आते हैं जिससे गले व मुख में खुश्की नहीं होती है। इस विधान में उसी के शब्द गाये जाते हैं जो इस दीक्षा से दीक्षित हो। कबीर के शब्द गाये जायं या न गाये जायं इस बात पर कभी-कभी उपदेशी विधान में विवाद खड़ा हो जाता है। विधान में मर्मज्ञ और रसास्वादी होते हैं, तो ज्ञान की अमृत वर्षा होती है। बाह्य रूप से स्थान खूब सजा रहता है, समय-समय पर फूलों की भी वर्षा की जाती है। अभिमानी लोगों को बाहर कर दिया जाता है। मण्डलाचार्य विवेकी हों तो, स्वर्ग के द्वार खुल जाने का वास्तविक आनन्द इन मण्डलियों में आता है। वार्षिकोत्सव या किसी के जन्मोत्सव के अवसर पर भी मण्डल रचाया जाता है यह मेल कहलाता है, मेल में किसी के लिए विवाद नहीं होता है। कबीर, तुलसी, सूर, नानक आदि भक्तों के भी शब्द गाये जाते हैं। टोली में जिद होने पर शब्दी शब्दकर्ता और प्रसंग को नहीं बदल सकता, प्रश्नोत्तर प्रासंगिक होना चाहिए। जिसने जिस कवि को अथवा कवि के विषय को बदला तो वह हार जाता है। प्रायः इन मण्डलों में निर्गुणीशब्दों का ही प्रयोग होता है; सितार, तम्बूरा, कुर्जी, मंजीरा, तबला, ढोलक आदि खुल जाते हैं और गानवाद्यों का धूम

मच जाता है। सवाल-जवाब शुरू होने लगते हैं, रंग जम जाता है; हार-जीत के अवसर पर लोग हो-हो कर कर कल होनी की उपदेश का विधान किसी मठ में या मढ़ी में रचा जाता है। यह विधान अपनी सामर्थ्य के आधार पर ही अवलम्बित होता है क्योंकि इसमें खर्च अधिक होता है। एक दिन पहले मठ-मढ़ी के अधिपति जो इस विधान के आचार्य होते हैं, मुनवरों सहित निमंत्रित किये जाते हैं; निमंत्रण में निधानाचार्य अपने-अपने मठ के मुनवरों को साथ लेकर ठीक समय पर आ जाते हैं। दीक्षा-क्रम आरम्भ होने पर मानधारी निमंत्रित महंत साखी कहने के बाद शब्द चढ़ाता है। प्रथम शब्द गणेश की स्तुति का होता है। शब्दों के गाने में काफी समय लगता है, स्वर के साथ स्वर मिलाना पड़ता है। स्वर टूटना नहीं चाहिए अतः तीन-चार मुनवर मिलकर शब्द गाते हैं तो अटूट आनंद आता है। मनुष्यों की सम्पूर्ण बाह्य वृत्ति का शमन हो जाता है। शास्त्रीय संगीत का उपयोग यह लोग करते हैं इसलिए यह गायन मार्गी-गायन भी कहलाता है। गायन के शास्त्रों के तीन भेद मिलते हैं- साम गायन, शैव गायन, गंधर्व गायन। इन लोगों के संगीत में शैव गायन और गंधर्व गायन के तत्त्वों का योग मिलता है। एक शब्द को गाने में एक घंटे से कम नहीं लगता है, लेकिन आमंत्रित प्रत्येक महंत को समय मिलता है।

इनके यहाँ दीक्षा क्रम को विवाह से अधिक महत्त्व दिया जाता है। यह जनेऊ (यज्ञोपवीत) के बाद की दीक्षा है, अतएव इसका आयोजन बड़े सजधज के साथ होता है। गुरु पीठ का मंडप विशेष सजा रहता है। पाँच, सात, नौ संख्या के गुरु पीठ शिवनगरी जाग्रत स्थान की पूजा मंत्रों के साथ होती है। ज्योति, कला, पाठ, पूजा, नाद, मुद्रा का रहस्य प्रत्यक्ष उदाहरणों से समझाते हैं। कान में मंत्र फूँका जाता है। कहीं भटकने की आवश्यकता नहीं ज्योति कला आदि के दर्शन घट भीतर ही होते हैं। शिष्य को दृढ़ रहने का उपदेश मिलता है। दर्शनी योगी को जब उपदेश दिया जाता है तो उसे नाद मुद्रा नहीं देते हैं। अन्य सबको सेली, सिंगी पहनाकर दीक्षा देते हैं। दीक्षा क्रिया की समाप्ति पर भोजन प्रसाद देते हैं, आमंत्रित महंतों, ब्राह्मणों, भट्टों आदि को चीपी (दक्षिणा) दी जाती है। इस दीक्षा के आचार्य को सतगुरु या शब्द गुरु कहा जाता है।

नाथ सम्प्रदाय में सम्यक साधना का अनुष्ठान मुख्य माना जाता है इसीलिए इनकी साधना प्रणाली सर्वांगीण तथा विविधता लिये हुए होता है क्योंकि यहाँ रुचिभेद से जिस साधक को जो रुचे, वह उसी में प्रवृत्त हो। नाथ मतानुसार परम पद पूर्णत्व अथवा शिवत्व लाभ का अधिकार जीव मात्र से है। परिश्रम करने पर फल लाभ अवश्यम्भावी है, और चेष्टा करने पर मनुष्य के लिए कोई भी वस्तु असाध्य नहीं है। यही चेष्टा अथवा परिश्रम पुरस्कार है जिसकी आवश्यकता साधना मार्ग की यात्रा में सर्वप्रथम अपेक्षित है।[३२]

नाथ सम्प्रदाय गुरु के अतिरिक्त अन्य किसी कृपा को नहीं मानता। इस पंथ में गुरु की बड़ी महिमा बतायी गयी है। गुरु ही समस्त श्रेयों का मूल है और एक मात्र अवधूत ही गुरुपद का अधिकारी हो सकता है। वह अवधूत जिसके प्रत्येक वाक्य में वेद निवास करता है और प्रत्येक पद में तीर्थ बसते हैं, प्रत्येक दृष्टि में कैवल्य या मोक्ष विराजमान होता है जिसके एक हाथ में त्याग है और दूसरे हाथ में भोग, फिर भी जो त्याग और भोग दोनों में अलिप्त है;[३३] और जैसा कि सूत्रसंहिता में कहा गया है, वह वर्णाश्रम से परे है और समस्त गुरुओं का साक्षात् गुरु है न उससे कोई बड़ा है और न बराबर।[३४] इसी प्रकार विनिर्मुक्त योगेश्वर को भी नाथ पद की प्राप्ति होती है क्योंकि सप्तधातु भय काया के पिंजरे में योग मुक्ति न जानने से जीव सुए की भाँति बद्ध पड़ा हुआ है, सतगुरु ही अपने कृपा-कटाक्ष से उबार सकते हैं, इसके अलावा अन्य कोई उपाय नहीं है। गुरु की आवश्यकता के विषय में नाथपंथी गण कठोपनिषद् का सहारा लेते हैं कि आत्म तत्त्व, अल्पज्ञ मनुष्य की शिक्षा से एवं बहुत प्रकार से स्व चिन्तन करने पर भी विज्ञेय नहीं हैं। इसलिए दूसरे ज्ञानी पुरुष के द्वारा उपदेश

न किये जाने पर इस विषय में मनुष्य का प्रवेश नहीं होता है क्योंकि यह अत्यन्त सूक्ष्म और तर्कातीत तत्त्व है। वह ज्ञानी तत्त्ववेत्ता भी धन्य है और जिज्ञासु शिष्य भी धन्य है जो परस्पर इसका कथन करते हैं।[३५] नाथमतानुसार संसार में भटकते हुए तृषित जीव को एक मात्र सतगुरु का करुणावारि ही परमशान्ति दे सकता है, दूसरी कोई वस्तु नहीं। गुरु का मूड़ा हुआ गुण में रहता है, जिसे गुरु नहीं मिला वह अवगुणों के गहन गर्त में भ्रमित हुआ जीवन यापन करता है।[३६] पूरा गुरु अगर नहीं मिला तो इस मार्ग पर पैर रखकर अपने कुल का नाश न करे। नाथ वाणियों की यह स्पष्ट उक्ति है ऐसा न होने पर न परमार्थ की सिद्धि होगी और संसार की।[३७]

गुरु-शिष्य का सम्बन्ध पिता-पुत्र सम्बन्ध से भी अधिक घनिष्ठ प्रेमयुक्त निःस्वार्थ और महत्त्व का है। पुत्र लौकिक पिता की बिन्दु संतान है और शिष्य गुरु की नाद संतान है। पिता स्थूलदेह का जन्मदाता है और गुरु ज्ञानदेह का। शास्त्रों में जन्म को नेत्रोन्मीलन कहा गया है। मातृगर्भ से बाह्य संसार में पदार्पण करने के पश्चात वैष्णवी वायु के सम्पर्क से शिशु का प्रथम नेत्रोन्मीलन उसका जन्म कहलाता है। यह नेत्र खोलना ही जन्म है और लौकिक पिता इसी का दाता है। पिता भी नेत्रोन्मीलन रूपी जन्म का दाता है, परन्तु गुरु पिता ज्ञान नेत्रोन्मीलन रूपी जन्म का दाता है, गुरु अपनी कृपा शिष्य को चैतन्य का बोध कराकर आज्ञा चक्र स्थित उसके प्रज्ञाचक्षु को खोलता है। तब शिष्य के आध्यात्मिक जन्म का आरम्भ होता है। यह जीवन परमार्थ के संसार का जीवन है इसमें जरा-मृत्यु, रोग-शोक, अज्ञान और अबोध के लिए कोई स्थान नहीं है। गुरु इसका दाता है अतएव परात्पर पिता है।

नाथ साहित्य में जिस प्रकार शिष्य के लिए आवश्यक योग्यता व गुण की चर्चा की गयी है और अयोग्य शिष्य से जिस प्रकार नाथ सिद्ध गुरु को सावधान रहने के लिए कहते हैं शिष्य को भी अयोग्य गुरु के प्रति सचेत रहने के लिए कहना वे नहीं भूले। अयोग्य गुरु से योग के स्थान पर रोग मिलता है। अतः गुरु परखकर करना चाहिए। चेलों का दल बल बाँधकर भिक्षा से अघाकर खाने वाले असंयमी गुरुओं की सिद्ध चर्पटीनाथ ने बड़ी ही स्पष्टोक्ति में खबर ली।[३८] ध्यान की अवस्था में केवल ध्यान मात्र का ही संधान शेष रह जाता है। ध्यान के शास्त्र में सोलह भेद कहे गये हैं। साधारणतया दो निर्गुण एवं सगुण ध्यानों का ही उल्लेख मुख्य रूप से मिलता है। ध्यान की परिपक्व अवस्था में एक मात्र ध्येय का संधान जिसका स्वरूप अनिर्वचनीय कहा गया है, समाधि कहलाती है। समाधि के भी सवितर्क, सविचार, संप्रज्ञात, सविकल्प, जड़, असंप्रज्ञात, निर्वितक, निर्विकार, निर्विकल्प, नित्यचैतन्य, अस्पर्श इत्यादि कई नामों का उल्लेख है। मंत्र योग का नाथ सम्प्रदाय की विभिन्न साधना पद्धति में विशिष्ट स्थान है। प्राण वायु टंकार से बाहर जाता है, और सकार के भीतर प्रवेश करता है, श्वास, प्रश्वास की इसी गति के मध्य जीव 'हंस' मंत्र का सर्वदा जाप करता है। गुरु कृपा से प्राण की विपरीत भावपन्न अवस्था में जब यह मंत्र सोऽहं के रूप में परिणत हो जाता है तब मंत्र योग आख्या इसे दी जाती है। यही नाद महान अनहद नाद में लीन होकर साधक जीव को आज्ञा चक्र में लाता है। वहाँ बिन्दु स्थान भेदकर सहस्रारस्थ महाबिन्दु पर्यन्त पहुँचा होता है। हंस मंत्र का सोऽहं में परिणत होना नाथ मतोपदिष्ट मंत्रों की पूर्णाहुति यही है।[३९]

संदर्भ

१. ऋग्वेद - १०.१३०, सिद्धनाथ संहिता विवेक सागर भाग-१, पृष्ठ-११

२. वही- पृ.१६

३. राजगुह्य- नाकारोऽनादि रूपं थकारः स्थाप्यते सदा। भुवनत्रयमेवैकः श्री गोरक्ष नमोऽस्तुते।।

४. हठयोग प्रदीपिका- आदिनाथः सर्वेषां नाथानां प्रथमः, ततौ नाथ सम्प्रदायः प्रवृत्त इति नाथ संप्रदायिनो वदन्ति।

५. गोरक्षसिद्धान्त संग्रह- महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज, पृ.१८

६. शक्ति संगम तंत्र- श्री मोक्षदानदक्षत्वात् नाथ ब्रह्मानुबोधनात्। स्थागिताज्ञान विभवात् श्रीनाथ इति गीयते।।

७. गुरु गोरखनाथ- डॉ. नागेन्द्र नाथ उपाध्याय।

८. गोपीनाथ कविराज अभिनन्दन ग्रंथ- आचार्य श्री परशुराम चतुर्वेदी

९. गोरक्षसिद्धान्त संग्रह- वही, पृ.१८

१०. दे. स्कन्द पुराण (काशी खंड)

११. दे. प्राचीन भारतीय संस्कति में व्रत- डॉ. चन्द्रमौलि मणि त्रिपाठी (१९८९)(गोरखपुर वि.वि.का अप्रकाशित शोध प्रबन्ध), प्राचीन भारतीय समाज, अर्थ एवं धर्म- प्रो. रमानाथ मिश्र, पृ.३०,३१

१२. गोरखनाथ और उनकी परम्परा का साहित्य- डॉ. दिवाकर पाण्डेय

१३. वही

१४. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, खंड ६- हजारी प्रसाद द्विवेदी

१५. बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन- भरत सिंह उपाध्याय, पृ.६८

१६. नाथ सम्प्रदाय का इतिहास और दर्शन- डॉ. कल्याणी मलिक, पृ.१९१-१९३

१७. गोरक्षसिद्धान्त संग्रह- नाथ कहें तुम आपा राखै, नाथ कहें तुम सुनहु रे अवधू
गोरखवाणी- डॉ. बड़थ्वाल, ते निश्चल सदा नाथ के संग, नाथ महंता सब जग नाथ्या

१८. गोरखनाथ एण्ड दी कनफटा योगीज- जी. डब्ल्यू. ब्रिग्स
नाथ सम्प्रदायेत्तर इतिहास दर्शन और साधन प्रणाली- डॉ. कल्याणी मलिक

१९. गंभीरनाथ प्रसंग- पृ.५०,५१

२०. ब्रिग्स- वही, पृ.६३, हजारी प्रसाद द्विवेदी का सुझाव है कि यह सर्वसम्मत सूची नहीं समझनी चाहिए।

२१. वही- हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.३३,३४

२२. गोरखवानी- पृ.१८५, सूर मांहि चंद महि सूर, चंदहि तीनि तेहुणा बाजल तूर।
मणंत गोरखनाथ एक पर पूरा मांजन भौदू सांघति सूरा।

२३. वही, पृ.२४९ एती अष्टांग जोग पारछया, भगति का लक्षनं।
सिधापाई, साधिका पाई, जे जन उतरे पारं।।

२४. दत्त की सब्दी- जान तै अन्जान होइवा, तत लेबा छाणि।
गुरू किया लाभ है अवधू, चेला किये हाणि।।

२५. आदेश का अर्थ और अभिप्राय बताते हुए देवी पाटन मन्दिर, उ.प्र. के योगी सूर्यनाथ ने बताया कि यह समस्त गुरुओं को आदेश, सदगुरु को आदेश, मेरी भक्ति आपकी शक्ति प्राप्त हो को मन में पढ़कर नादि बजाकर आदेश करें।

२६. दर्शनी योगी शिव की काया, जोगी जोग जुगुत की राशि।

२७. मन, मदुरा, सत गुरू छुरी, शवन्दा वेध्या कान जोगी का घर कण्णा है कहवे क आसान।।

२८. 'योगिसंप्रदायाविष्कृत'

२९. इस अवधूत की संगत करना, इस अवधूत से पार उतरना।

सून्य मंडल में इसकी फेरी, काली नागिन इसकी चेरी।।
बटुआ भीतर नागन आई, नागन मार तले विधाई।
तब जोगी ने जुगुत कमाई, सलक भिष्य मांगू, घर पर मांगू।।
कर पर खाऊ भले बुरे के संग न जाऊं।

३०. ब्रिग्स, वही

३१. इण्डियन एण्टिक्वैरी भाग-४, नाथ सम्प्रदाय- द्विवेदी, पृ.२७

३२. गोरखवाणी- चार पहर आलंगन निंद, संसार जाई विषया वाही।
उमी वॉह गोरखनाथ पुकारे झूलम हारौ म्हारा भाई।।

३३. गोरक्षसिद्धान्त संग्रह- पृ.१
वचने वचने वेदास्तीर्थानि च पदे पदे। दृष्टौ दृष्टौ च कैवल्यं सोवधूतः श्रियेस्तुनः।
एक हस्ते धृतस्त्यागो योगश्चैककरे स्व्यम्। अलिप्त स्तत्याग योगाभ्यां सोवधूतः श्रियेस्तु।।

३४. अष्ट.- पृ.४५६
अतिवर्णाश्रमी साक्षात् गुरूणां गुरु रुच्यते। न तत्समोधिको वास्मिन लोकेस्त्येव न संशयः।।

३५. वही- न नरेणा वरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेय बहुधा चिन्तयमान अनन्य प्रोक्ते
गतिरन्त्र नास्ति अणीयान हय तकर्पमण प्रमाणायात्।

३६. वही- सांच का शब्द सोना का रेख, निगुरा को चाणक सशुरा को उपदेश
गुरु का मुड्या गुण में रहे। निगुरा भ्रमे औ गुज नाहै।

३७. गोरखवानी- काज न मिट्या जंजाल न छुट्या, तब करि हुआ न सूरा,
कुल का वास करे मति मति कोई जे गुरु मिलै न पूरा।

३८. नाथ सम्प्रदाय- द्विवेदी, पृ.१६३

३९. गोरखवानी- ऐसा जाप करो मन लाई, सोऽहं अजपा गाई आसण दृढ़ करि धरो धियानं।

स्वाधीन चेतना के विकास में संतों की भूमिका

-डॉ. कन्हैया सिंह*

'मानव पहला स्वाधीन पशु है; और स्वाधीन होने के नाते पशु नहीं है। मानवेतर सभी प्राणियों के जीवन की चरम संभावनाएँ उनकी शरीर संरचना से मर्यादित हैं; मानव पहला ऐसा प्राणी है जो भाषा पाकर, अवधारणा की शक्ति पाकर, प्रतीकों का स्रष्टा होकर पूर्व-कल्पना से परे चला गया है, अकल्पनीय और असीम संभावनाओं से संपन्न हो गया है। एक परोक्ष सत्ता से जुड़ गया है, स्वाधीन हो गया है। वह मूल्यों की अवधारणा करता है, सृष्टि करता है और स्वाधीनता उसका सबसे पहला, सबसे आधारभूत मूल्य है; क्योंकि यही उसके मानवत्व की कसौटी है। इसके बिना वह पशु है।' **-अज्ञेय**

जिस पर किसी का नियंत्रण न हो, मन, वाणी, कर्म में वह 'स्व' विवेक से कर्म करने को स्वतंत्र हो, वह स्वाधीन कहा जाता है, अर्थात् जो पराधीन नहीं है, वही स्वाधीन होता है। आन्तरिक स्वाधीनता और बाह्य स्वाधीनता की दृष्टि से आन्तरिक स्वाधीनता अपनी सोच समझ और इन्द्रिय संयम आदि द्वारा कछुए की तरह अपने को समेटने की सिद्धि या स्थितिप्रज्ञता में तथा बाह्य स्वाधीनता कार्यव्यवहार की स्वतंत्रता में होती है। इस दृष्टि से बुद्ध, शंकराचार्य, गोरखनाथ से लेकर स्वामी रामानन्द तक ने अन्तर्बाह्य स्वाधीनता का मार्ग प्रशस्त किया। स्वामी रामानन्द ने स्वाधीनता के आयाम को व्यापक बनाया। छूत-अछूत के बंधन को तोड़कर, सगुण-निर्गुण के भेद को पाटकर उन्होंने एक ऐसा भक्ति-प्रवाह चलाया जो कबीर-तुलसी जैसे स्वाधीन, स्वाभिमानी, स्वतंत्र और समन्वयी संतों-भक्तों को एक साथ लेकर चला। संत-भक्ति आन्दोलन जो १२वीं शताब्दी से लगभग ४०० वर्ष तक संतों और कवियों की वाणी में गूँजता रहा, वह उत्तर से दक्षिण, पूरब से पश्चिम सम्पूर्ण देश में व्याप्त वैचारिक आन्दोलन था, जिसके मूल में धार्मिक आध्यात्मिक स्वाधीनता, सामाजिक स्वाधीनता तथा राजनीतिक स्वाधीनता के स्वर गुंफित थे। यह वह समय था जब देश पर इस्लाम धर्मावलम्बी विभिन्न वंशवालों का शासन चलता रहा था। इस रक्तहीन वैचारिक क्रान्ति ने इस देश की संस्कृति और धार्मिक आध्यात्मिक विशेषता को बचा लिया।

डॉ. इकबाल ने लिखा :

ईरान, मिस्र, रोमॉ सब मिट गए जहाँ से,
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।

तो उनका संकेत इसी आन्तरिक स्वाधीन चेतना की ओर था।

अल्ताफ हुसेन हाली ने अपने मुसद्दस में इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया :

जो दीने हजाजी का बेबाक बेड़ा, निशां जिसका अक्साए आलम में फहरा
मुजाहिम हुआ कोई खतरा न जिसका, न अम्मान में खटका न कुलजुम में झचका
किए पै सिपर जिसने सातो समन्दर, वो डूब दहाने में गंगा में आकर।

मौलाना हाली का बयान सही है क्योंकि अरब में यहूदी धर्म-संस्कृति को मिटाकर इस्लाम छा गया और ईराक, इरान, अफगानिस्तान सब में यहूदी-पारसी धर्म-संस्कृतियों को मिटाकर इस्लाम का परचम लहराया पर लगभग ५०० वर्ष के शासन के बाद भी भारत में इस्लाम फैला तो काफी, पर हिन्दू धर्म-संस्कृति को मिटाने में न उनकी तलवार कारगर हुई, न उनकी राजनीति और न ही उनका सुलह-कुल या सूफीमत कामयाब हुआ।

*राहुल नगर, मड़या, आजमगढ

इसका मूल श्रेय मध्यकालीन संतों-भक्तों और उनके वैचारिक आन्दोलन को ही है।

इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि में सहजिया सिद्धों, जैनों और नाथयोगियों के धार्मिक आन्दोलन थे। उन विविध सुधारवादी आन्दोलनों से बहुत कुछ लेकर और उसमें से बहुत कुछ छोड़कर भक्ति आन्दोलन का प्रवाह चला। इतना बड़ा यह आन्दोलन भारत में दूसरा कोई नहीं हुआ। इसके मूल में साधना और भक्ति तो थी ही पर साथ ही इसमें तत्कालीन राजसत्ता के मानसिक प्रतिरोध का स्वर भी मुखर था। संत कबीर जब अपने को बादशाह कहते हैं तो वह यह भी साधो, भाई, अवधू, काजी, पंडित को संबोधित करके कहना चाहते हैं कि संत स्वयं अपने तन का और मन का बादशाह है। कोई और उसके लिए बादशाह नहीं। तुलसी बादशाहत और साहिबी केवल अपने आराध्य राम की स्वीकारते हैं। 'राम के गुलाम' तुलसी किसी और के गुलाम नहीं हैं। वे साफ कहते हैं-

हम चाकर रघुवीर के पट्यो लिख्यों दरबार।
तुलसी अब का होंहिंगे नर के मनसबदार।।

जब बड़े-बड़े कवि दरबार की चाकरी कर रहे थे और पुरस्कार तथा मनसब प्राप्त कर रहे थे तुलसी जैसे मुक्तसंत अपनी स्वाधीन चेतना की अलख जगाते हुए कहते थे कि 'मैं राम का गुलाम हूँ। राम बोला नाम ही मेरा है।' वे देश की जनता को बता रहे थे कि सबसे बड़ा दरबार राम का है और उसको छोड़कर किसी और की गुलामी का क्या अर्थ है? पूरी 'रामचरितमानस' उसी स्वाधीन चेतना की जागृति का संदेश देता है। वनवासी राम को देखकर तुलसी के समकालीन इतिहास की झलक मिलने लगती है। राम लंका के महाप्रतापी रावण से लड़ने जा रहे हैं। जंगल में कुटी बनाकर रहते हैं। कंदमूल-फल खाते हैं। बन्दर, भालुओं की सेना जोड़ते हैं-दिग्विजयी रावण से लड़ने के लिए। उधर राणा प्रताप जंगल में घूमते फिरते हैं। घास की रोटी खाते हैं। कोल भीलों की फौज सजाते हैं और दिल्लीश्वर अकबर से लड़ने के लिए साधनहीन थे उनके पास शौर्य और धैर्य के पहिए का रथ है और प्रताप के पास भी यही सहारा है। लेकिन तुलसी अपने आख्यान में युग के राम को यह संदेश देना चाहते हैं कि हे नवयुग के राम! यदि तुमने कंचन और कामिनी की लालच की तो तुम्हारी भी वही दशा होगी जो कंचन मृग के पीछे दौड़ने वाले स्त्री की आकांक्षा में वशीभूत राम की हुई थी। मानव को कौन कहे पशु-पक्षी भी मानो उन पर व्यंग्य कर रहे हैं 'तुम आनन्द कारहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ये आए।' इतना ही नहीं कि तुलसी पुराण की कथा द्वारा समकालीन इतिहासबोध को जगा रहे थे, अपितु अपने समाज की पराधीन मनोवृत्ति को कोसते भी थे। वे बहराइच में सैयद सालार मसूद गाजी की मजार पर लगने वाले मेले में जाने वाले अंधविश्वासी समाज को सचेत करते हैं-

लही आँख कब आंधरे बांझ पूत न जाय।
कब कुष्टी काया लही जग बहराइच जाय।।

कबीर स्वाधीन थे-स्वतंत्र थे। पंथ से, स्वभाव से, जाति से, जड़ता से, पाखंड से, पण्डित से, मुल्ला से और राजा या बादशाह से। कहते हैं कि सिकन्दर लोदी ने उन्हें हाथी के पैरों तले कुचलवा देने का आदेश दिया। पागल हाथी आया, कबीर ने हँस दिया मतवाला हाथी कबीर के सामने से मुड़कर भाग चला।

इस सम्बन्ध में रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' ने 'ज्योति पुरुष' में लिखा है-

भागा मतवाला हाथी पीछे की ओर दहलता।
शाही खेमे को घेरे रक्षकदल को रौंद कुचलता।
लोई-कमाल ने देखा, अब थमने लगी लड़ाई।

घन गर्जन सी जयध्वनि कबीर की पड़ने लगी सुनाई।।

थी जय मानवता की ही यह हत्यारी पशुता पर
थी जय पवित्रता की मद से अंधी पामरता पर
थी जय जनता की यह अधर्म पर, अत्याचार अन्याय पर
थी जय कबीर की नहीं, जीत थी अडिग अभय भी भय पर।।

इतने अडिग अभय कबीर स्वाधीनता के भावी आन्दोलन के प्रथम पुरुष थे, जिन्हें लोदी ने बोरे में बाँधकर गंगा में बहा दिया था- धर्मदास उस बहते हुए बोरे के साथ-साथ गंगा के किनारे-किनारे चलते गये और किसी घाट पर बोरे से उन्हें निकाल लाये। ये ही कारण थे कि कबीर को काशी छोड़कर मगहर जाना पड़ा। कबीर ने सूफी मैसूर हल्ला की तरह मरना स्वीकार किया पर अपने स्वतंत्र स्वाधीन विचारों और सिद्धान्तों को नहीं छोड़ा। संतों की यही कहानी विश्वभर में व्याप्त है। वह मंसूर हो या ईसा मसीह। आजादी के लिए फाँसी चूमने का भाग्य संतों का ही है। इसीलिए मुहावरा बन गया- **यह मुँह और मसूर की दाल।**

कबीर हों, मंसूर हों, ईसा हों या कोई संत भक्त हो, वह क्यों किसी से डरे- वह तो अमर है, मरजिया है, उसे सिर की चिन्ता नहीं, वह तो पहले ही सिर उतार चुका है। धरमदास कहते हैं-

सूँघत के बौरा गए पीयत के मरि जोइ।
नाम रस सो जन पिए धड़ पर सी न होइ।

ऐसे संत अपने में ही रमे रहते हैं- वे सर्व तंत्र स्वतंत्र और सभी बंधनों से परे स्वाधीन चेता होते हैं।

पूरे मध्यकाल के भक्ति आन्दोलन में चाहे निर्गुनिए संत हों या रामकृष्ण के भक्त कवि हों या सूफी संत और महाकवि हों, सभी स्वाधीन चेतना के प्रहरी थे और अपने-अपने ढंग से सबने अपनी आजादी के साथ समाज को आजादी का संदेश दिया। सूरदास का कृष्ण चरित्र उनकी भक्ति के साथ कंस के तानाशाही शासन के विरुद्ध जन विद्रोह का प्रतीक भी था जिसके नेता थे वासुदेव श्रीकृष्ण। मलिक मुहम्मद जायसी ने अपना पूरा महाकाव्य ही रत्नसेन पद्मिनी की निजी स्वतंत्रता, मातृभूमि चित्तौड़ की स्वतंत्रता और सामाजिक स्वतंत्रता का आख्यान है। अपने दीन का पाबंद मुसलमान होते हुए जायसी एक प्रतापी मुसलमान बादशाह के काले कारनामे की भर्त्सना करते हैं- यह युगधर्म उस समय के सभी संत भक्त कवियों का हो गया था।

कृष्ण भक्त कवियों में कुम्भनदास, स्वामी हरिदास सभी को अकबर अपने दरबार में आमंत्रित करके महिमान्वित होना चाहता था। कुम्भनदास तो शाही फरमान पर फतेहपुर सीकरी तक चले गये पर जब वहाँ जाने पर उनकी प्रतिक्रिया पूछी गयी तो उन्होंने साफ उत्तर दिया-

संतन सो कहाँ सीकरी सो काम।
आवत जात पनहिया टूटी बिसरि गयो हरिनाम।

लेकिन इससे भी निर्भीक और स्वाधीन चेतना के स्वर में उन्होंने आगे कहा-

जाके मुख देखत दुःख उपजत, ताकों करिबे परी सलाम।।

जिसका मुख देखने से ही दुःख होता है उसे सलाम करनी पड़ी। मुख देखकर दुःख होने में बड़ी दूरगामी व्यंजना है, वह यह कि शाहंशाह बादशाह उपाधिधारी उस शासक को देखकर अपनी स्वाधीनता के ऊपर लगे ग्रहण का स्मरण करके दुःख हुआ।

स्वामी हरिदास का संगीत सुनने के लिए तो अकबर को तानसेन के साथ उसका भृत्य बनकर वृंदावन जाना पड़ा था। इतने स्वाभिमानी और स्वाधीन हमारे संत थे।

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत स्वामी रामदासजी छत्रपति शिवाजी के गुरु ही नहीं, मार्गदर्शक और स्वराज्य स्थापना के मंत्रद्रष्टा थे। कहते हैं कि स्वामीजी भ्रमण करते हुए शिवाजी के स्वातंत्र्य अभियान में सूचना देकर उनकी सहायता भी करते थे। जीते हुए किलों और सैनिकों की कुशलता का संदेश वे पत्थर के कुछ टुकड़ों और घोड़ों की लीद बाँधकर प्रसाद रूप में भेजकर देते थे; संकेत था कि तुम्हारे किले और घुड़सवार सुरक्षित हैं। इसी प्रकार बुन्देलखंड में स्वराज्य स्थापना करने वाले बुन्देला वीर छत्रसाल के गुरु प्राणनाथ थे। स्वामी प्राणनाथ उस युग के प्रसिद्ध संत थे। उन्होंने जंगलों में अपने शिष्यों से छत्रसाल की सहायता ही नहीं करायी बल्कि उनका स्वतंत्र राजा के रूप में अभिषेक भी स्वयं उन्होंने ही किया था।

प्रतिरोध की धारा और स्वधर्म, स्वराष्ट्र, स्वातंत्र्य और स्वाधीनत्व का जो अन्तर्प्रवाह संत-भक्तों ने प्रवाहित किया था, उसी के परिणामस्वरूप आगे चलकर जब राजशेखर और पंडित जगन्नाथ जैसे लोग दिल्लीश्वरों व जगदीश्वरों की विरुदावली गा रहे थे, गंग जैसे कवि अपनी स्वतंत्र आवाज के लिए हाथी के पैरों तले कुचलने के आदेश को सिरमाथे ले रहे थे। श्रीधर कवि ने लिखा है कि सच्चे साधु राजदरबार में नहीं जाते थे जो जाते थे वे-

राजदुलारे साधुजन तीन वस्तु को जॉय।
कै मिठा, कै मान को, कै माया को चाह।

अकबरी दरबार में समस्या पूर्तियाँ होती थीं, उनमें पूर्ति का विषय ऐसा रखा जाता था कि राजा या इस्लाम की प्रशस्ति समस्यापूर्ति में की जाय। श्रीधर कवि कभी चाटुकारिता की समस्यापूर्ति नहीं करते थे। सारी समस्याओं की पूर्ति में वे अपने भगवान की महत्ता का बखान करते थे।

उनकी परीक्षा लेने के लिए समस्या रखी गयी- 'करो मिलि आस अकबर की' श्रीधर ने छंद बनाया-

अब के सुलतान भए फुहियान, से बाँधत पाग अटब्बर की,
नर की नरकी कविताजु करै, तेहि काटिए जीभ सुतब्बर की,
इक श्रीधर आस है श्रीधर की, नहि त्रास अहै कोई बब्बर की
जिनको नहिं आस कछू जग में, सो करो मिलि आस अकब्बर की।

इसी प्रकार एक बार स्वाभिमानी कवि को झुकाने के लिए समस्यापूर्ति का विषय रखा गया- **'हैं वही काफिर कि जो कायल नहीं इस्लाम के।'**

कवि ने पूर्ति का छंद प्रस्तुत किया-

लाम के मानिन्द है गेसू मेरे घनश्याम के।
हैं वही काफिर कि जो कायल नहि इस 'लाम' के।

शहंशाहों, जहाँपनाहों, सुल्तानों के दरबार में हिम्मत से अपनी अस्मिता के लिए सिर कलम कराने से न डरने वाले इन संतों-कवियों, बुद्धिजीवियों ने जो प्रतिरोध की परम्परा विकसित की उसी का परिणाम था, १८५७ का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम और उसी के साथ राजनीति, समाज और साहित्य में नवजागरण के युग का प्रारम्भ हुआ। साहित्य जिसे नवजागरण या पुनर्जागरण कहते हैं, समाज में जिसे सुधार-आन्दोलन कहते हैं और राजनीति में जिसे स्वतंत्रता-संघर्ष कहते हैं, उनका भी संदेश संतों और संन्यासियों ने दिया। स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण, विवेकानन्द, अरविन्द, रामतीर्थ आदि की एक लम्बी संत-शृंखला ही थी जिसने इस सुषुप्त भारत की अस्मिता को जाग्रत किया और उसी की फलश्रुति में स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा गाँधी और संत विनोबा तथा न जाने कितने स्थानीय संत हुए, जिन्होंने स्वाधीन चेतना के इस स्वर को परवान चढ़ाया। स्वाधीनता के क्रमिक

होती है। अन्य दस नाड़ियों में वामनेत्र में गांधारी, दक्षिण नेत्र में हस्तिजिह्वा, दक्षिण कर्ण में पूषा, दक्षिण वाम कर्ण में यशस्विनी और मुख में अलम्बुषा है। लिंग देश में कुहू और मूलस्थान में संखिनी ये दो उस कन्द से अधोमुख होकर नीचे को गयी हैं और ऊर्ध्वमुख होकर ऊपर को हैं। इस प्रकार उक्त दस नाड़ियाँ प्राणवायु के एक-एक मार्ग में स्थित हैं।[९७] यहीं नाथयोग में वर्णित दस वायुओं का भी परिचय प्राप्त कर लेना चाहिए। इनके नाम हैं प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय। हृदय में प्राण, गुदामण्डल में अपान, नाभि स्थान में समान, कंठमध्य में उदान, और सम्पूर्ण शरीर में व्यान का संचार है। ये पाँच ही प्रधान नाड़ियाँ हैं। शेष प्राणों के स्थान क्रमशः डकार में नाग, नेत्रों के उन्मिलन में कूर्म, छींक में कृकल और जम्हाई लेने में देवदत्त वायु का निवास बताया गया है। धनञ्जय वायु के बारे में बताया गया है कि यह सारे शरीर में व्याप्त रहता है और मृत शरीर में भी चारघटी पर्यन्त स्थित रहता है। ऊपर से आज्ञाचक्रगत प्राणवायु नीचे मूलाधार स्थित अपान वायु को तथा मूलाधारगत अपान वायु आज्ञाचक्र स्थित प्राणवायु को परस्पर आकृष्ट करते हैं। योगाभ्यासी पुरुष प्राणायाम से इन्हीं को जोड़ता है। इसी योग को हठयोग कहते हैं जो सूर्य और चन्द्रमा का योग भी कहलाता है। कहा गया है कि हकार से श्वास बाहर निकलता है और सकार से पुनः प्रविष्ट होता है। इस प्रकार श्वासोच्छ्वास की क्रिया से जीव हमेशा हंसमंत्र (अजपागायत्री) का जप करता रहता है। सूर्योदय से सूर्यास्त तक ६० घड़ी में इस मंत्र की जप संख्या २१,६०० होती है इतना जप जीव स्वयं करता है। यह अजपा गायत्री योगियों के लिए मोक्षदायिनी कही गयी है। इसकी जैसी न कोई विद्या है न इसका जैसा कोई जप और ज्ञान है। कुण्डलिनी महाशक्ति से उत्पन्न हो रही तथा प्राणवायु को धारण करने वाली यह अजपा गायत्री जीवात्मा की शक्ति प्राणविद्या स्वरूप भी है जो इस महाविद्या को जानता है वही वेदविद् है।[९८] ७२ हजार नाड़ियों के उत्पत्ति स्थान पूर्वोक्त कन्द के ऊपर मणिपूरचक्रकर्णिका में आठ वृत्त करके वेष्ठित हो रही कुण्डलिनीशक्ति ब्रह्मरंध्र द्वार के मुख को रोककर स्थित है। जिस मार्ग द्वारा जन्म-मरण के दुःख हरण करने वाला अखण्ड ब्रह्मानन्द पद मिलता है उस मार्ग को रोककर सोयी हुई कुण्डलिनी प्राण वायु के उत्तेजित करने से प्रबुद्ध होकर मन एवं प्राणवायु सहित सुषुम्ना नामक मध्य नाड़ी से ऊ की ओर जाती है। जैसे कुञ्जी से ताला खोलने पर कपाट खुल जाता है वैसे ही कुण्डलिनी द्वारा योगी मोक्षद्वार को खोल देता है।[९९] कुण्डलिनी जागरण द्वारा शक्ति का शिव से सामरस्य रूप संगम प्राप्त करने के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए मुद्रा और बंध का ज्ञान और इनका अभ्यास भी हठयोग साधना का अनिवार्य अंग है। गुरु की कृपा से जब कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो जाती है तब शरीर में स्थित समस्त षट्चक्रों का भेदन करती हुई वह परमशिव के निवास स्थान सहस्रारचक्र तक पहुँचने की स्थिति में होती है; किन्तु ब्रह्मद्वार के मुख के अग्रभाग में सोती हुई कुण्डलिनी को जगाने के लिए साधक को मुद्राओं का अच्छी तरह अभ्यास करना चाहिए। मुद्राएँ महामुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी, उड्डयान, मूलबंध, जालन्धरबंध, विपरीतकरणी, वज्रोली और शक्तिचालन नाम से दस प्रकार की हैं। इन मुद्राओं का विशेष विवरण सम्प्रदाय के आकर ग्रंथों में द्रष्टव्य है। महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने इस संदर्भ में चन्द्र और सूर्य को प्रकृति और पुरुष मानते हुए इसे प्रकृति और पुरुष का आलिंगन बताया है। इसी आलिंगन से शून्य पथ या सुषुम्ना का पथ खुलता है। इस शून्यता की कई कोटियाँ हैं- शून्य, अतिशून्य, महाशून्य आदि विशुद्ध शून्य ही निर्वाण पद है। इसी अवस्था को सिद्धों ने तत्त्वातीत की अवस्था माना है। इसी से शिवशक्ति की समरसता की बात भी है। यही सहज साधना है। यही अवस्था पूर्ण सिद्धि, निर्वाण महामुख, सुखराज तथा मुद्रा का साक्षात्कार आदि है।[१००] पतञ्जलि ने जहाँ चित्तवृत्ति के निरोध को योग माना है वहाँ नाथों ने अलखनिरञ्जन पद में आत्मा को विलीन

करने की बात कही है जिसका माध्यम कायायोग या हठयोग है। यहीं प्रसंगतः नाथयोगियों के कायागढ़ विजय पर भी प्रकाश डालना उचित है। यदि योग से यह विजय प्राप्त नहीं होती तो सब व्यर्थ है।[१०१] गोरखनाथजी ने गोरखवाणी में कहा है निरञ्जननाथ की दुहाई है मेरा आवागमन मिट गया है, हमने पिण्ड में ब्रह्माण्ड को ढूँढ़कर सब सिद्धि प्राप्त कर ली है। कायारूप गढ़ के भीतर ६ लाख खाइयाँ (नवरंध्र) हैं अथवा ८४ लाख योनियों के संस्कार जिन्हें पाटकर दशम द्वार (ब्रह्मरंध्र) तक पहुँचा जाता है, वहाँ ताला लगा हुआ है (जिसे कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा खोलना आवश्यक है) देवालय और तीर्थ सब इसी शरीर रूपी गढ़ के भीतर है। वहीं अविनाशी परमात्मा सहज स्वभाव से मुझे मिले हैं। कायागढ़ को कोई बिरला ही जीत सकता है।[१०२] कायागढ़ विजय की यह कल्पना नाथयोगियों ने तांत्रिक बौद्धसाधकों से ली है किन्तु इसका स्वरूप निरूपण उनका अपना है। हठयोग पिण्ड ब्रह्माण्डवाद और कायागढ़ विजय तथा कुण्डलिनी जागरण के अतिरिक्त गुरुवाद भी नाथ योगसाधना का महत्त्वपूर्ण अंग है। गुरु की कृपा के बिना नाथपंथी साधना में सिद्धि की कोई कल्पना नहीं की जा सकती। बारंबार विभिन्न प्रसंगों में साधना के विभिन्न स्तरों पर गुरु के मार्गदर्शन और प्रसाद से ही सिद्धि की बात कही गयी है।

नाथयोग एक साधनापरक तत्त्वचिंतन है; तर्क और समीक्षा तथा तुलना का इसमें बहुत स्थान नहीं है; वह बौद्धिकता की विडम्बना में भी नहीं पड़ता। वह तो मानता है कि पिण्ड ही पृथ्वी आदि पंचभूतों का केन्द्र है। ब्रह्माण्ड और पिण्ड की एकता के लिए सदा प्रयास करता है, इसी में परम शिव रहता है; वह स्वयं प्रकाशित एवं स्फुरित होता है। महापिण्ड ज्ञान की निधि है। इन्द्रियाँ समुद्र में नदी की तरह इसमें समाहित होती हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध सहित पंचभूत इसी में रहते हैं। यह शरीर स्वयं में एक महापीठ है।[१०३]

सन्दर्भ-सूची

१. द्रष्टव्य- गोरखनाथ एण्ड द कनफटा योगीज, जार्ज वेस्टन ब्रिग्स, पृ० १५०-१५१ तथा १२५

२. द्रष्टव्य- गोरखनाथ, अक्षय कुमार बनर्जी, पृ.सं. ३३,३४,३५

३. द्रष्टव्य- गोरखनाथ, बस्ती न शून्यं, शून्यं न बस्ती, आगम अगोचर ऐसा।
गगन शिखर महि बालक बोलै, ताका नाव धरहू गे कैसा ।।१।।

४. द्रष्टव्य- गोरखदर्शन, पृ.सं. ४३

५. द्रष्टव्य- गोरखवाणी, दोहा संख्या-१

६. द्रष्टव्य- भावभावविनिर्मुक्तम् नाशोत्पत्ति विवर्जितम्।
सर्वसंकल्पनातीतम् परब्रह्म तदुच्यते।।

७. द्रष्टव्य- सिद्धसिद्धान्त पद्धति १/२

८. द्रष्टव्य- कुलंशक्तितिप्रोक्तम्

९. द्रष्टव्य- अकुलंशिवउच्चयते

१०. द्रष्टव्य- सिद्धसिद्धान्त पद्धति- यदानास्तिस्वयं कर्ता कारणं न कुलाकुलम्।
अव्यक्तं च परमब्रह्म अनामा विद्यते तदा।। पृ.३ पर उद्धृत

११. द्रष्टव्य- सिद्धसिद्धान्त पद्धति, पृ.४

१२. द्रष्टव्य- वही, पृ.४ तस्येच्छामात्रधर्मा धर्मिणी निजाशक्तिः प्रसिद्धा।

१३. द्रष्टव्य- शिवस्याभ्यनतरेशक्ति शक्तेरभ्यन्तरेशिवः।
अन्तरनैवजानन्ती चन्द्रचन्द्रिकयोरिव।।- नाथयोग, हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा उद्धृत

१४. द्रष्टव्य- सिद्धसिद्धान्त पद्धति, पृ.४ तस्योन्मुखमात्रेण पराशक्तिरुत्थिता।
१५. द्रष्टव्य- वही, पृ.४
१६. द्रष्टव्य- वही, पृ.४
१७. द्रष्टव्य- वही, पृ.४
१८. द्रष्टव्य- वही, पृ.५
१९. द्रष्टव्य- वही, पृ.६
२०. द्रष्टव्य- निजाऽपरापरासूक्ष्मा कुण्डलिन्यासुपञ्चधा।
शक्तिचक्रक्रमेणोत्थो जातःपिण्डःपरःशिवः।। वही, पृ.६ पर उद्धृत
२१. द्रष्टव्य- सिद्धसिद्धान्त पद्धति, पृ.६
२२. द्रष्टव्य- गोरखदर्शन, अक्षय कुमार बनर्जी, पृ.
२३. द्रष्टव्य- सिद्धसिद्धान्त पद्धति, पृ.७
२४. द्रष्टव्य- वही, पृ.७
२५. द्रष्टव्य- वही, पृ.७ से ९ तक
२६. द्रष्टव्य- वही, पृ.९
२७. द्रष्टव्य- वही, पृ.९
२८. द्रष्टव्य- वही, पृ.११
२९. द्रष्टव्य- वही, पृ.११-१२
३०. द्रष्टव्य- वही, पृ.१२
३१. द्रष्टव्य- वही, पृ.१३
३२. द्रष्टव्य- वही, पृ.१४
३३. द्रष्टव्य- वही, पृ.१४-१५
३४. द्रष्टव्य- वही, पृ.१५,१६,१७
३५. द्रष्टव्य- गोरखदर्शन, अक्षय कुमार बनर्जी, पृ.७०
३६. द्रष्टव्य- वही, पृ.७२
३७. द्रष्टव्य- सिद्धसिद्धान्त पद्धति, पृ.
३८. द्रष्टव्य- गोरखदर्शन, पृ.९४
३९. द्रष्टव्य- वही, पृ.११५ से १२५ तक
४०. द्रष्टव्य- वही, पृ.१३६
४१. द्रष्टव्य- वही, पृ.१३७
४२. द्रष्टव्य- सिद्धसिद्धान्त पद्धति- पिण्डे नव चक्राणि। आधारे ब्रह्मचक्रं त्रिधावर्तं भंगमण्डलाकारम्। तत्र मूलकन्दः। तत्र शक्तिं पावकाकारां ध्यायेत्। तत्रैव कामरूपपीठं सर्वकामफलप्रदं भवति।, पृ.२८
४३. द्रष्टव्य- वही, पृ.२८
४४. द्रष्टव्य- वही, पृ.२९
४५. द्रष्टव्य- वही, पृ.२९
४६. द्रष्टव्य- वही, पृ.३०

४७. द्रष्टव्य- वही, पृ.३०

४८. द्रष्टव्य- वही, पृ.३१

४९. द्रष्टव्य- वही, पृ.३१

५०. द्रष्टव्य- वही, पृ.३१

५१. द्रष्टव्य- षट्चक्रं षोडशाधारं द्विलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।
स्वदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्धयन्ति योगिनः।। - गोरक्षशतक १३

५२. द्रष्टव्य- 'गोरक्षशतक' में षडंगयोग का वर्णन है जबकि 'सिद्धसिद्धान्त पद्धति' में अष्टांगयोग का वर्णन है।

५३. द्रष्टव्य- नाथ सम्प्रदाय ग्रंथ में पृ. १३८ पर उद्धृत - द्विधा हठः स्यादेकस्तुगोरक्षादिसुसाधितः।
अन्योमृकण्डुपुत्राद्यैः साधितो हठसंज्ञकः।।

५४. द्रष्टव्य- नाथ सम्प्रदाय, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. १३७

५५. द्रष्टव्य- हकारः कथितः सूर्यः ठकारस्चन्द्र उच्चयते।
सूर्योचन्द्रमसोर्योगात् हठयोगोनिगज्यते।।

५६. द्रष्टव्य- नाथ सम्प्रदाय, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. १३७ तथा हठयोग प्रदीपिका ३/१५

५७. द्रष्टव्य- नाथ सम्प्रदाय, पृ. १३७

५८. द्रष्टव्य- प्राणतोषिणी, पृ. ८३५, नाथ सम्प्रदाय, पृ. १३७ पर उद्धृत

५९. द्रष्टव्य- वही, पृ.१३७

६०. द्रष्टव्य- प्राणतोषिणी, पृ.८३५

६१. द्रष्टव्य- नाथ सम्प्रदाय, पृ.१३८ एवं १३९

६२. द्रष्टव्य- हठयोग प्रदीपिका, १/२

६३. द्रष्टव्य- शिवसंहिता, पृ.५/२१७

६४. द्रष्टव्य- हठयोग प्रदीपिका, श्लोक सं.१/१७

६५. द्रष्टव्य- वही, पृ.१/१८

६६. द्रष्टव्य- हठयोग स्वरूप एवं साधना, योगी आदित्यनाथ पृ.२४

६७. द्रष्टव्य- वही

६८. द्रष्टव्य- वही

६९. द्रष्टव्य- वही, पृ.३०

७०. द्रष्टव्य- हठयोग प्रदीपिका, श्लोक सं.२/२५

७१. द्रष्टव्य- वही, श्लोक सं.२/३१

७२. द्रष्टव्य- हठयोग स्वरूप एवं साधना, योगी आदित्यनाथ पृ. ४३

७३. द्रष्टव्य- हठयोग प्रदीपिका, श्लोक सं.२/३३-३४

७४. द्रष्टव्य- वही

७५. द्रष्टव्य- सिद्धसिद्धान्त पद्धति- आसनमिति सदा स्वस्वरूपे समासन्नता

७६. द्रष्टव्य- घेरण्डसंहिता- सिद्धं पद्मं तथा भद्रं मुक्तं वज्रं च स्वस्तिकम्।
सिहं च गोमुखं वीरं धनुरासनमेव च।।

मृतं गुप्तं तथा मत्स्यं मत्स्येन्द्रासनमेव च।
गोरक्षं पश्चिमोतानं उत्कटं संकटं तथा
मयूरं कुक्कुटं कूर्मं तथा चोत्तानकूर्मकम्।
उत्तानमण्डुकं वृक्षं मण्डूकं गरुडं वृषम्।।
शालभं मकरं चोष्ट्रं भुजंगं योगमासनम्।
द्वात्रिंशदासनानि तु मर्त्ये सिद्धि प्रदानि च।।-हठयोग स्वरूप एवं साधना, पृ.सं.४७ पर उद्धृत

७७. द्रष्टव्य- हठयोग प्रदीपिका, श्लोक सं. २/१

७८. द्रष्टव्य- वही, श्लोक सं. २/२

७९. द्रष्टव्य- वही, श्लोक सं. २/३

८०. द्रष्टव्य- वही, श्लोक सं. ४,५,६

८१. द्रष्टव्य- हठयोग स्वरूप एवं साधना, योगी आदित्यनाथ पृ.११४

८२. द्रष्टव्य- सिद्धसिद्धान्त पद्धति, द्वितीय उपदेश, पृ.४२

८३. द्रष्टव्य- वही, पृ.४८

८४. द्रष्टव्य- वही, पृ.४९-५० पर उद्धृत - चरतां चक्षुरादीनां विषयेषु यथाक्रमम्।
तत्प्रत्याहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते।।६।।
यथा तृतीयकालस्थो रविः प्रत्याहरेत्प्रभाम।
तृतीयाङ्गस्थितो योगी विकारं मानसं तथा।।७।।
अङ्गमध्ये यथाङ्गानि कूर्मः सङ्कोचमाहरेत्।
योगी प्रत्याहरेदेवमिन्द्रियाणि तथात्मनि।।८।।

८५. द्रष्टव्य- योगपद्धति, पृ.७६, श्लोक सं. २/३०

८६. द्रष्टव्य- वही

८७. द्रष्टव्य- सिद्धसिद्धान्त पद्धति, पृ.५१ पर उद्धृत श्लोक

८८. द्रष्टव्य- वही, पृ.५१

८९. द्रष्टव्य- वही, पृ.५२

९०. द्रष्टव्य- गोरक्षपद्धति, पृ.८२, द्वितीय शतक

९१. द्रष्टव्य- वही

९२. द्रष्टव्य- सिद्धसिद्धान्त पद्धति, पृ.५४, द्वितीय प्रकरण में उद्धृत विवेकमार्तंड के श्लोक

९३. द्रष्टव्य- गोरक्षपद्धति, द्वितीय शतक, पृ.९१-९२

९४. द्रष्टव्य- सिद्धसिद्धान्त पद्धति, पृ.५७ से ६९ तक तृतीय उपदेश

९५. द्रष्टव्य- गोरक्षपद्धति, प्रथम शतक, श्लोक सं. १४

९६. द्रष्टव्य- वही

९७. द्रष्टव्य- गोरक्षपद्धति, प्रथम शतक, श्लोक सं. ५१

९८. द्रष्टव्य- वही, पृ.२५

९९. द्रष्टव्य- गोरक्षपद्धति, प्रथम शतक, श्लोक सं. ५१

१००. द्रष्टव्य- भारतीय साधना की धारा, पृ. ८५ से ८७

१०१. द्रष्टव्य- गोरक्षनाथ और नाथसिद्ध, पृ. ३५६

१०२. द्रष्टव्य- योगवाणी, पद सं. २३- आऊं नहीं जाऊं निरंजन नथ की दुहाई।
प्यंड ब्रह्मण्ड योजंता, अन्हें सब सिधि पाई।। टेक।।
काया गढ़ भीतर नव लष खाई।
दसवै द्वारि अवधू ताली लाई।।१।।
काया गढ़ भीतरि देव देहुरा कासी।
सहज सुभाइ मिले अबिनासी।।२।।
बदंत गोरषनाथ सुणौ नर लोई।
काया गढ़ जीतैगा बिरला कोई।।३।।२३।।

१०३. अण्डमए णिअपिण्ड पीठम्मि पुरन्ति कलणदेवीओ।
पप्फुरइ अ परमसिवो णाणणिही ताण मन्झआरम्भि।। - महार्थमञ्जरी सपरिमला, पृ. ७६

नाथ परम्परा में दीक्षा

-डॉ. चन्द्रमौलि मणि त्रिपाठी*

नाथ शब्द अति प्राचीन है। वैदिक साहित्य में इसका प्रयोग विभिन्न अर्थों में होता आया है; ऋग्वेद में नाथ शब्द कर्ता, ज्ञाता तथा सृष्टि के निमित्त रूपों में हुआ है।[१] अथर्ववेद में नाथित एवं नाथ शब्दों का उल्लेख मिलता है।[२] 'राज गुह्य' के अनुसार 'नाथ' वह तत्त्व है जो अनादि रूप है तथा भुवनत्रय-स्थिति का कारण है। संस्कृत टीकाकार मुनिदत्त ने नाथ शब्द को सद्गुरु के अर्थ में ग्रहण किया है।[३] हठयोग प्रदीपिका की टीका में ब्रह्मानन्द का कथन है कि सब नाथों में प्रथम आदिनाथ हैं जो स्वयं शिव हैं।[४] गोपीनाथ कविराज ने 'न' का अर्थ अनादि रूप और 'थ' का अर्थ भुवनत्रय से स्थापित माना है।[५] शक्ति संगम तंत्र के अनुसार 'न' का तात्पर्य उस नाथ के ब्रह्म से है जो मोक्षद् (मोक्ष दान) में दक्ष है, ज्ञात और ज्ञेय दोनों है और 'थ' का अर्थ है अज्ञान को नष्ट करने वाला, अर्थात् **नाथ वह तत्त्व है, जो मोक्ष प्रदान करता है और ज्ञान को स्थापित करता है।**[५] इसी कारण श्रीगोरक्ष को नाथ कहा जाता है और उनके मतावलम्बी और सम्प्रदाय को नाथ सम्प्रदाय। दूसरे शब्दों में नाथ सम्प्रदाय उन साधकों का सम्प्रदाय है जो नाथ को परम तत्त्व के रूप में स्वीकार करके उसकी प्राप्ति के लिए योगसाधन करते हैं तथा इस सम्प्रदाय में दीक्षित होकर नामान्त में नाथ उपाधि धारण करते हैं। इस सम्प्रदाय को सिद्धमत, सिद्धमार्ग, योगमार्ग अथवा अवधूतमत भी कहा जाता है। डॉ. नागेन्द्र उपाध्याय ने नाथ को नाथपंथ का मान्य परम तत्त्व स्वीकार किया है।[७] आचार्य परशुराम शर्मा चतुर्वेदी का मत है कि नाथ शब्द भले ही कभी प्रभु व स्वामी जैसे कतिपय अर्थों का सूचक हो पर बाद में ये ऐसे महापुरुषों का बोधक मान लिया गया, जिन्हें अतिमानवत्व तथा देवत्व पद भी प्रदान किया जा सकता था,[८] अर्थात् परमात्मतत्त्व का अनुभव उसके तद्रूप तक पहुँचने वाला योगी साधक ही सिद्ध के नाम से अभिहित किया जाता है। वर्तमान समय में योगी एक दूसरे के लिए नाथजी शब्द का व्यवहार करते हैं अतः इस अर्थ में आज नाथ शब्द सम्प्रदाय में उनके अनुयायी जनों के लिए प्रयुक्त होता है।

गोरक्ष-सिद्धान्त-संग्रह में शंकराचार्य के अद्वैत मत के पराभव की कथा मिलती है। नाथ सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है कि शंकराचार्य अंत में नाथ सम्प्रदाय के अनुयायी हो गये और इसी अवस्था में उन्होंने 'सिद्धसिद्धान्तबिन्दु' नामक ग्रंथ की रचना की।[९] शाबर-तंत्र में कापालिकों के बारह आचार्यों में प्रथम नाम आदिनाथ का ही है, और उनके बारह शिष्यों में से कई नाथ मार्ग के प्रधान आचार्य हैं। इसके अतिरिक्त शाक्त मार्ग, जो तंत्रमत को मानता है उसके उपदेष्टा भी नाथ ही थे, और उन्होंने ही तंत्रों की रचना की है, क्योंकि षोडशनित्यांतंत्र में शिव ने कहा है कि मेरे कहे हुए तंत्रों का ही नव नाथों ने लोक में प्रचार किया। शाक्त आचार भी चार भागों में विभक्त है- वामाचार, दक्षिणाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार; यह कौलमार्ग भी अवधूत मार्ग है। इस प्रकार स्पष्ट है कि समस्त शाक्त तंत्र भी नाथ परम्परा का अनुयायी है। कौलज्ञाननिर्णय नामक ग्रंथ में योगिनी कौलमत का उल्लेख मिलता है। गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ का सम्बन्ध इसी योगिनी कौल मार्ग से माना जाता है। त्रिपुरा सम्प्रदाय के अनेक सिद्धों के नाम वे ही हैं जो नाथपंथियों के हैं। त्रिपुरा मत के तांत्रिकों के आचार्य अपने को नाथ मतानुयायी ही मानते हैं। महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री ने 'बौद्ध गान ओ दोहा' नामक ग्रंथ की रचना की, इसमें चौरासी सिद्धों के रचित पद संगृहीत हैं। इन सिद्धों में कान्हपाद या कृष्णपाद का नाम आता है, वे अपने को कापालिक कहते हैं। उन्होंने अपने गुरु का नाम जालन्धरपाद दिया है, यह

*निदेशक, जन शिक्षण संस्थान बस्ती, स्कूल शिक्षा एवं साक्षरता विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

जालंधरपाद नाथपंथ के प्रसिद्ध आचार्य थे। स्कन्दपुराण के काशी खंड में नवनाथों का उल्लेख किया गया है, जिनमें से एक जालंधरनाथ हैं।[१०]

नाथ सम्प्रदाय की साधना पद्धति का मूल रूप औपनिषदिक योग धारा तथा आगम धारा में सन्निहित है। यौगिक प्रक्रिया तर्कसम्मत रूप में मुनि परम्परा से ही श्रमण धारा व आगम धारा के रूप में विभाजित हुई। ऋग्वेद के व्रात्य योगी, रुद्र की उपासना करते थे तथा प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाओं को महत्त्व देते थे तथा अपनी साधना के बल पर मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेते थे तथा यज्ञादि कर्मों से दूर किसी अरूप वस्तु के ध्यान व चिन्तन में निरत रहते थे।[११] इन योगियों की तुलना उपनिषदों के ऋषियों से की जा सकती है। योग साधना के लिए मन और चित्त की निर्मलता का जो विधान नाथ योग में प्राप्त होता है वह किसी न किसी रूप में उपनिषद् और गीता में भी मान्य है। नाथ योगियों में शिव और शक्ति के स्वरूप का जिस अर्थ में निर्वचन किया गया है लगभग उसी रूप में वेदान्त में 'ब्रह्म और माया', सांख्य में 'प्रकृति और पुरुष' तथा वैष्णवागम में 'नारायण एवं लक्ष्मी', 'कृष्ण व राधा', 'राम एवं सीता' के स्वरूप में निर्वचन होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि परम तत्त्व के स्वरूप को जो चिन्तन उपनिषदों में दिया गया है वही नाथ योगियों के चिन्तन का आधार है। योगधर्म वास्तव में एक ऐसा उदारतापूर्ण विराट धर्म है कि उसमें सभी धर्म समाविष्ट हो जाते हैं। वैदिक व्रात्यों की साधना पद्धति, नाथ योगियों की साधना पद्धति से बहुत कुछ मिलती है। संन्यास प्रारम्भ में शैवमत से सम्बद्ध था और नाथपंथी साधुओं के लिए भी संन्यासी शब्द व्यवहृत होता था। श्री घुरे ने नाथ लोगों को प्राचीन माहेश्वर, पाशुपत, कापालिक संन्यासियों का विकसित रूप स्वीकार किया है। घेरेण्ड संहिता के आधार पर नाथ योगियों का पाशुपतों, कापालिकों एवं अघोरियों से घनिष्ठ सम्बन्ध की सूचना मिलती है। विल्सन का मत है कि कापालिक लोग विशेषकर कनफटा सम्प्रदाय (नाथ) में अन्तर्भुक्त हुए। त्रिपुरा मत के आचार्य स्वयं को नाथपंथी कहते हैं। गोरक्ष-सिद्धान्त-संग्रह के अनुसार नाथ मार्ग यद्यपि विशुद्ध साधनापरक है तथापि कौल, कापालिक आदिमार्ग नाथ द्वारा ही प्रकटीकृत है। आचार्य विनय मोहन शर्मा ने नाथ मत को शैवधर्म से उद्भूत बताया है। ग्रियर्सन ने गोरखनाथ को शैवधर्म का श्रेष्ठ दीक्षागुरु स्वीकार किया है।[१२] पंचकड़ी बन्द्योपाध्याय का मत है कि बंगाल में गोरखनाथजी ने शैवधर्म का प्रचार-प्रसार किया।[१३] डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का अनुमान है कि गोरक्ष से पहले दो प्रकार के मत रहे होंगे, एक जो योगमार्गी है किन्तु शैव व शाक्त नहीं थे। दूसरे जो शैवागमवादी थे किन्तु योगमार्गी नहीं थे। दोनों ही प्रकार के कई सम्प्रदाय (जो पूर्ववर्ती थे) गोरक्षनाथ संगठन में सम्मिलित हो गये और उनके प्रवर्तकों को गोरक्षनाथ का शिष्य समझा जाने लगा।[१४] इसमें से वाममार्गी शाक्त, बौद्ध, अघोर, आदि सम्प्रदाय भी रहे होंगे। औघड़मत गोरखनाथ व दत्तात्रेय दोनों के बीच की एक ही कड़ी है, इसकी सैद्धान्तिक पीठिका बाबा किनाराम की विचारधारा है। अपने विचित्र विचारधारा के कारण इनका सम्बन्ध कापालिकों से अधिक निकट दिखाई पड़ता है। इस पंथ के पूर्व तक किनाराम के गुरु कालूराम थे। अवधूत परम्परा के प्रभाव से टेकमनराम तथा भीखमराम जैसे संतों की वाणियों में हठयोग की शब्दावली का प्रयोग मिलता है। सरभंग सम्प्रदाय, अवधूत या औघड़ परम्परा का ही एक रूप है इसका निकटतम सम्बन्ध शैव मत के शाक्त शाखाओं से है। भरत सिंह उपाध्याय का मत है कि औघड़ प्राचीन कापालिकों का अवशिष्ट रूपान्तरित मत है, यह नाथपंथियों का दूसरा वर्ग है जो नाथ सम्प्रदाय की सम्पूर्ण दीक्षा प्रक्रिया में सम्मिलित नहीं होते फिर भी अपने को नाथपंथी स्वीकार कर गुरु गोरखनाथ के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करते हैं।[१५]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वेदवाह्य साधनाएँ नाथपंथ में योग के माध्यम से एकीकृत हुईं। डॉ. मलिक

का मत है कि नाथ सम्प्रदाय धर्म उपनिषदों का धर्म है। इसमें जैनों का जत नामक चूड़ान्त ब्रह्मचर्य, बौद्धों का विज्ञान, एवं शून्यवाद तथा वज्रयान व तंत्र का लय तथा कुण्डलिनी योग सहजिपा मत, कौल मत, हठयोग साधना का अपूर्व मिश्रण है। डॉ. ईश्वरदत्त राकेश का मत है कि ज्ञान योग प्रधान ईश्वरवादी संयमपूर्ण साधना नाथयोगी सम्प्रदाय के रूप में विकसित हुई और गोरखनाथ ने कायाशोधन, मनोकारण आत्मचिन्तन, तथा रासायनिक सिद्धि के आधार पर नाथ सम्प्रदाय की पुनर्संरचना की और बारह सम्प्रदायों को भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में स्थापित कर सम्पूर्ण वृहत्तर भारत में योगी सम्प्रदाय का प्रभाव फैला दिया।[१६]

गोरखनाथ ने जिस नाथ सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया उसमें शैव, शाक्त, बौद्ध, जैन व वैष्णव आगमों के न्यूनाधिक तत्त्व किसी न किसी रूप में अवशिष्ट हुए हैं। तंत्रागमों का प्रभाव अपरिहार्य था, अतः सभी धर्मों में उनके तत्त्व अनुस्यूत (बिखरे) दिखाई पड़ते हैं, पर गोरखनाथ द्वारा नाथ सम्प्रदाय की पुनर्संरचना में शैवोपासक व्रात्य मुनियों की परम्परा को दृढ़ आधार दिया गया। यही कारण है कि नाथ सम्प्रदाय के योगियों ने मानव समाज में बिखरी हुई कुप्रथाओं, कुसंस्कारों एवं विकृत मान्यताओं को नष्ट करने का संकल्प किया। कालान्तर में इस प्रकार के छोटे-छोटे सम्प्रदाय नाथ सम्प्रदाय में विलीन होते गये। इस प्रकार नाथ सम्प्रदाय उन सभी साधकों का सम्प्रदाय है जो नाथ को परमपद स्वीकार कर उसकी प्राप्ति के लिए योग साधना करते हैं तथा इस सम्प्रदाय में दीक्षित होकर नामान्त में 'नाथ' उपाधि जोड़ते हैं।

गोरखवानी में नाथ के दो अर्थ प्रयोग मिलते हैं- एक जगह नाथ का प्रयोग रचयिता के रूप में हुआ है तो दूसरी जगह परमब्रह्म या परमतत्त्व के लिए।[१७] नाथेत्तर साहित्य में नाथ का प्रयोग मायाजेता के रूप में किया गया है, वहीं पर उन्हें त्रिभुवनयती भी माना गया है और उन्हें ब्रह्मा, विष्णु, महेश के क्रम में स्वीकार किया गया है परन्तु योगशास्त्र में इसकी महत्ता और क्रम इस प्रकार बताया गया है-

शिव, भैरो, श्रीकंठ, सदाशिव, ईश्वर, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा, सृष्टि। इससे स्पष्ट होता है कि नाथ इस सृष्टि क्रम से पूर्णतया परे हैं। वहीं पर इस बात का उल्लेख मिलता है कि सिद्धों के इष्ट नाथ हैं जिन्होंने स्त्री व उसकी सत्ता को स्वीकार नहीं किया। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि देवता तथा अण्डज, पिण्डज, उष्मज (नभचर, जलचर, थलचर) सभी स्त्रियों द्वारा विजित हैं, लेकिन नाथ ही मायाजेता है। नाथेत्तर साहित्य में यह शंका स्वाभाविक ही है कि नाथ शब्द का प्रयोग नाथ सम्प्रदाय के सिद्धों के लिए किया गया है जबकि नाथ शब्द एक उपाधि है। बंगाल के योगी लोग भी अपने-अपने नामों के अन्त में नाथ शब्द का प्रयोग करते हैं और अन्य व्यवसायी भी। नाथ सम्प्रदाय के विभिन्न नाम अन्य क्षेत्रों में भी प्रचलित दिखाई पड़ते हैं यथा योगी, कनफटा, दर्शनी और गोरखनाथी। इस परम्परा के भिक्षु और संन्यासी तथा गृहस्थ पंजाब से लेकर बंगाल और नेपाल तक मिलते हैं और ये सभी गोरखनाथ को अपना गुरु मानते हैं। किन्तु इसी के साथ यह भी सत्य है कि बहुत सी तांत्रिक साधना परम्परा में जो सीधे नाथ परम्परा में नहीं आते वहाँ पर भी नाथ उपाधि लगायी जाती है। उदाहरण के लिए श्रीविद्या परम्परा में साधना करने वाले व्यक्ति की अभिषेक (दीक्षा) होती है इसके बाद नाथ उपाधि को वे अपने नाम के आगे लगा सकते हैं। ललितासहस्रनाम के प्रसिद्ध टीकाकार भास्करानन्दनाथ इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त गृहस्थों में भी नामान्त के रूप में कहीं-कहीं नाथ शब्द का प्रयोग मिलता है यथा पूर्वी उत्तर प्रदेश के सिद्धार्थनगर जनपद में पंक्तिपावन ब्राह्मणों का एक प्रसिद्ध गाँव है चेतिया। जहाँ के ब्राह्मण परिवारों में कुल नाम के रूप में 'नाथ' शब्द का अनिवार्यतः प्रयोग होता है। जबकि यह ज्ञात तथ्य है कि ये लोग नाथ सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं होते। इन विभिन्न प्रान्तों में नाथपंथी लोगों के अनेक नाम मिलते हैं। ब्रिक्स के अनुसार ये लोग पंजाब, हिमाचल प्रदेश, बम्बई (महाराष्ट्र) आदि प्रदेशों

में नाथ नाम से पश्चिमी भारत में प्रायः 'धर्मनाथी' नाम से तथा अन्य भागों में यह 'गोरखनाथी' व 'कनफटा' नाम से संबोधित किये जाते हैं। पंजाब में मुस्लिम योगी भी मिलते हैं जिन्हें 'रावल' नाम से पुकारा जाता है।[१८]

इन नामों पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि ये नामकरण विभिन्न दृष्टियों से किये गये हैं, यह नाम कहीं सम्प्रदायगत है तो कहीं विशिष्टता के कारण। हठयोग की साधना के कारण उन्हें योगी कहा जाता है। यहाँ योगी शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त है, उसमें ऐसे भी योगियों को समाहित किया जाता है जो कनफटे नहीं हैं, संन्यासियों के लिए भी योगी शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार कनफटा, दर्शनी और गोरखनाथी योगी में ही आते हैं। नाथपंथियों का मुख्य सम्प्रदाय गोरखनाथी योगियों का है जो मुख्यतः बारह शाखाओं में विभक्त है। अनुश्रुति के अनुसार स्वयं गोरखनाथ ने परस्पर विच्छिन्न नाथपंथियों का संगठन करके इन्हें बारह शाखाओं में विभक्त कर दिया था जो इस प्रकार है-[१९]

१. सत्यनाथी	२. धर्मनाथी	३. रामपंथ	४. नटेश्वरी
५. कन्नड़	६. कपिलानी	७. वैराग	८. माननाथी
९. आईपंथ	१०.पागलपंथ	११.धजपंथ	१२.गंगानाथी

इन्हीं बारह पंथों के कारण शंकराचार्य के दसनामी संन्यासियों की भाँति इन्हें बारह (द्वादश) पंथी योगी कहा जाता है। प्रत्येक पंथ का एक विशेष स्थान है जिसे ये लोग अपना पुण्य क्षेत्र मानते हैं साथ ही यह पंथ किसी पौराणिक देवता या महात्मा को अपना आदि प्रवर्तक मानता है। एक अन्य अनुश्रुति के अनुसार शिव ने बारह पंथ चलाये थे और गोरखनाथ ने भी, दोनों दल आपस में झगड़ते थे; अतः स्वयं गोरखनाथ ने छः अपने और छः शिवजी के पंथों को जोड़ दिया, वही आजकल नाथपंथियों की बारहपंथी शाखा बनी।[२०] इन अनुश्रुतियों से शिव का बारहपंथी शाखा से संबद्ध होना सिद्ध है। साम्प्रदायिक ग्रंथों में शिव के दो प्रधान शिष्य बताये गये हैं - मत्स्येन्द्रनाथ और जालंधरनाथ। मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ हैं और जालंधरनाथ के शिष्य बारह कापालिक हैं-

१.आदिनाथ	२.अनादि	३.काल	४.अतिकाल	५.कराल	६.विकराल
७.महाकाल	८.कालभैरवनाथ	९.बटुकनाथ	१०.वीरनाथ	११.भूतनाथ	१२.श्रीकंठ

इन शाखाओं की बहुत सी उपशाखाएँ हैं। गोरखपुर व आसपास के परिक्षेत्र में धर्मनाथ शाखा का प्राधान्य है। इनका मुख्य स्थान उत्तर प्रदेश के गोरखपुर शहर में गोरक्षनाथ पीठ है जहाँ के वर्तमान महंत श्री अवेद्यनाथजी हैं।

वेशभूषाः

नाथ योगी को स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है। मेखला, जनेव, शृंगी, सेली, कंथा, गुदरी, खप्पर, कर्णमुद्रा, धंधारी बाघम्बर झोला, डण्डा आदि चिह्न ये लोग धारण करते हैं। इनके वस्त्र भगवे, श्वेत तथा काले होते हैं पर अधिकांशतः भगवे वस्त्र ही पहनते हैं तथा कुछ नंगे सिर भ्रमण करते हैं, तो कुछ केश व दाढ़ी रखते हैं। नाथ योगियों की मुख्य विशेषता यह है कि ये लोग कान के मध्य भाग में कुण्डल पहनते हैं। यह प्रथा किस प्रकार प्रारम्भ हुई, इस विषय पर नाना प्रकार की दंत-कथाएँ प्रचलित हैं। जिनमें एक तो यह है कि भगवान शिव के आदेश से मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने कान में कुण्डल पहने और अपने शिष्यों को कुण्डल पहनाये। यह कुण्डल सामान्यतया हाथी के दाँत, विलोर पत्थर, गैंडों के सींग व सोने व अन्य धातुओं के होते हैं। दूसरी अनुश्रुति यह है कि गोरखनाथ ने भरथरी का कान फाड़कर मिट्टी के कुण्डल पहनाये पर मिट्टी के कुण्डल के टूटने की आशंका बनी रहती है इसलिए धातु या हिरण के सींग की कर्णमुद्रा धारण की जाती है। विधवा

स्त्रियाँ तथा गृहस्थ योगियों की पत्नियाँ भी इसे धारण करते देखी जाती हैं।[२१]

गोरखनाथी लोग एक विशेष शुभ मुहूर्त (विशेषतः वसंत पंचमी को) पर कान को चिरवा कर मंत्र के संस्कार के साथ इस मुद्रा को धारण करते हैं। कुछ ऐसे नाथपंथी हैं जो आजीवन कर्णमुद्रा धारण ही नहीं करते। कहा जाता है कि हिंगलाज में दो सिद्ध एक शिष्य का कान चीरने लगे, पर हर बार यह छेद बंद हो जाता था। तभी से औघड़ लोग कान नहीं चिरवाते। कुछ उदारवादी योगियों का मानना है कि श्रीनाथ ने यह प्रथा इसलिए चलायी होगी कि कान चिरवाने की पीड़ा के भय से अनधिकारी लोग इस सम्प्रदाय में प्रवेश नहीं कर सकेंगे। नाथ-पंथ के अनुयायी मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं; दर्शनी और औघड़। दर्शनी (अघोरी) उसे कहते हैं जिसने कान फड़वाकर कुण्डल धारण कर लिया हो तथा औघड़ केवल नादजनेऊ धारण करते हैं। इसके अतिरिक्त योगियों के पास पहनने के लिए पीली अथवा भगवी धोती, कमीज, जैकेट तथा सिर पर टोपी अथवा पगड़ी एवं भगवे रंग का थैला भी रहता है जो भिक्षा के सामग्री संचयन में प्रयुक्त होता है, साथ ही एक डंडा व लोहे का चिमटा भी रहता है।

नाथ सम्प्रदाय में जनेऊ (यज्ञोपवीत) का विशेष महत्त्व है। यह जनेऊ काले भेड़ के ऊन से बनाये जाते हैं। कहा जाता है कि जनेऊ बनाने के लिए भेड़ की ऊन भी किसी कुवांरी कन्या द्वारा संचित किया जाता है और उसे कातने के पश्चात जनेऊ तैयार किया जाता है; उससे जुड़ी हुई एक पवित्री होती है जो गोलाकार छल्ले की भाँति होती है। पवित्री के साथ ही सूत के धागे से बँधी नादि होती है जो एक विशेष प्रकार की आवाज निकालती है। यह नादि साधारणतया काले हिरण की सींग या बारहसिंहे की सींग की बनी होती है। कुछ योगियों के पास पत्थर, लकड़ी या अन्य सस्ती धातुओं से बनी पायी जाती है। काले हिरण की सींग की नादि अधिक पवित्र मानी जाती है। इस नादि को योगी पूजा करते समय बजाते हैं, इसके अतिरिक्त जब भी कोई योगी गुरु से भेंट करता है तो एक हाथ से नादि पकड़कर बजाता है और दूसरा हाथ गुरु के चरणों में रखता है एवं गुरु की आँखों में आँखें मिलाकर आदेश-आदेश शब्द का उच्चारण करता है। यह शब्द इस सम्प्रदाय में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। नाथ सम्प्रदाय में सामान्य शिष्टाचार में भी इसी शब्द का प्रयोग किया जाता है।

नादि के बारे में यह धारणा प्रचलित है कि राजा भर्तृहरि ने काले हिरण का शिकार को सोचा पर कोई हिरण हाथ नहीं आया पर एक हिरण इस शर्त पर शिकार बनने के लिए तैयार हुआ कि उसके मृत्यु के उपरान्त उसके सींग की नादि बनायी जाय, जिससे गुरु गोरक्षनाथ की पूजा हो सके, तबसे नाथ सम्प्रदाय में काले हिरण का छाल तथा इसके सींग का कुंडल तथा नादि अत्यंत पवित्र माना जाता है। नादि के साथ बँधा हुआ रुद्राक्ष का मनका होता है जो इस सम्प्रदाय में अत्यन्त पवित्र माना जाता है। रुद्राक्ष एकमुखी से लेकर इक्कीसमुखी तक होता है। कुछ योगी अपने माथे पर त्रिपुण्ड भी बनाते हैं। त्रिपुण्ड की तीन रेखाएँ होती हैं ये रेखाएँ या तो राख (भस्म) की अथवा मिट्टी व चन्दन की भी होती हैं। काल भैरव के पुजारी काले रंग की रेखाएँ तथा हनुमान के पुजारी लाल रंग की रेखाएँ लगाते हैं; कई योगी पूरे शरीर में भस्म लगाये रहते हैं। नाथपंथियों की भस्म धूनी से ली जाती है। प्रत्येक मठ में एक धूनी अवश्य होती है जिसे श्रीनाथजी की धूनी कहा जाता है। धूने में एक या अधिक त्रिशूल भी रखे रहते हैं। प्रसाद के रूप में धूने से भस्म दी जाती है। ऐसा लोक विश्वास है कि धूने की भस्म कई प्रकार के रोगों के उपचार व बाधाओं के शमन के लिए शक्तिशाली होती है। यह दैहिक, दैविक, भौतिक ताप भय विनाशी है। कई कनफटे योगी स्थान-स्थान पर छोटे मन्दिरों में डेरे लगाये बैठे मिलते हैं, ये तंत्र विद्या में भी निपुण होते हैं, जिसके द्वारा अनेक रोगों के साथ-साथ भूत-प्रेतादि बाधाओं से मुक्ति मिलती है, कुछ साँप के काटे का भी इलाज मंत्र द्वारा करते हैं। इनके बारे में

प्रचलित है कि यह योग द्वारा प्रकृति पर भी विजय प्राप्त करते हैं। (योगस्तुप्रकृतोपरः)।

नाथ-पंथ में कुछ अघोरी भी होते हैं जो सामान्यतया मुर्दाघाट पर होते हैं यह लोग आम तौर पर अग्नि से शव निकालकर खा जाते हैं। यह लोग अधिकतर जंगलों में अथवा रात्रि के समय श्मशान घाट पर भ्रमण करते हैं। कहा जाता है कि इनके पास कई प्रकार की सिद्धियाँ होती हैं और यह असाधारण कार्य भी कर सकते हैं। इसलिए इन्हें शव-साधक भी कहा जाता है।

दीक्षा-प्रक्रियाः

किसी भी बड़े मठ में किसी भी नये व्यक्ति को सम्प्रदाय में प्रवेश करने के पूर्व उसके चरित्र के विषय में पूर्णरूपेण जाँच करायी जाती है। शिष्य की योग्यता भी इस प्रकार परमार्थ के मार्ग में कम महत्त्व नहीं रखती। यह मार्ग केवल शूर के लिए है, जिसमें अदम्य बल, उत्साह, त्याग, वितिक्षा, विवेक और वैराग्य हो। परमार्थ का साधन दिन-रैन का जूझना है यह मैदान शूर के ही हाथ रहता है।[२२]

शिष्य में यदि आवश्यक योग्यता नहीं है तो उसे शिष्य नहीं बनाना चाहिए। इस तरह की योग्यता सहस्रों में से किसी एक के पास होती है। अतः नाथ-पंथ में अधिक शिष्य बनाने का निषेध किया गया है। अयोग्य को शिष्य बनाने में गुरु को दोष लगता है। ऐसे शिष्य भ्रष्ट हो जाते हैं। स्त्रियों के भ्रष्ट हो जाने पर जिस प्रकार से पति को लज्जित होना पड़ता है, उसी तरह शिष्य के भ्रष्ट हो जाने पर गुरु को लज्जित होना पड़ता है। नाथपंथ में शिष्य के बत्तीस लक्षण कहे गये हैं।[२३]

ज्ञान परीक्षा	-	निरालम्ब, निर्भ्रम, निवासी, निःशब्द
विवेक परीक्षा	-	निर्मोह, निर्बन्ध, निर्शंक, निर्विषय
निरालम्ब परीक्षा	-	निष्प्रपञ्च, निरुतरंग, निर्द्वन्द्व, निर्लेय
संतोष परीक्षा	-	अचानक, अवांछक, अभान, अस्थिर
शील परीक्षा	-	शुचि, संयमी, शान्त, श्रोता
बमेक परीक्षा	-	सर्वांगी, सावधान, सन सारग्राही
सहज परीक्षा	-	सुहृदय, शीतल, सुखद, स्वभाव
शून्य परीक्षा	-	जय, लक्ष्यम्, ध्यानम्, समाधि

नाथपंथियों में अनजान बने रहना उचित बताया गया है। इस सम्प्रदाय की मान्यता है कि तत्त्वविद् होते हुए भी संसार में इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए कि जैसे कि कुछ नहीं जानते हों। गुरु के बनाने से लाभ होता है परन्तु शिष्य (चेले) बनाने से सदैव हानि की सम्भावना रहती है।[२४]

अंधकार को प्रकाश में, अज्ञान को सुज्ञान में, मृतत्त्व को अमृतत्व में, आत्मा को परमात्मा में, अनिश्चय को निश्चय में, अशिव को शिव में, जर को अजर में, अनाथ को नाथ में परिणत करके सच्चिदानन्द में सुस्थिर होना नाथ गुरुओं का लक्ष्य व उद्देश्य है।

आत्मेति परमात्मेति जीवात्मेति विचारतः। भयाणाभैक्य संभूतिरादेश परिकीर्तितः।।

केन उपनिषद् में कहा गया है कि-

'यस्यैष आदेशो यदेतद् विद्युतो व्यद्यु तदा इदीन्य मीभिषदा इत्यादि देवतम्'

अर्थात् उस ब्रह्मा का सांकेतिक उपदेश है जो कि बिजली का चमकना-सा है; नेत्रों का झपकना-सा है, इस प्रकार यह अधिदैविक उपदेश है। इस आदि उपदेश में दीक्षा प्राप्त नाथ योगी जब आपस में मिलते हैं तो आदेश-आदेश अथवा 'ॐ नमः शिवाय' आदि से अभिवादन करते हैं।[२५] नाथ सम्प्रदाय में प्रवेश के लिए सर्वप्रथम

उसको नाद जनेऊ पहनाया जाता है तथा वह औघड़ कहलाता है। यह संस्कार सामान्यतः मठ अथवा आश्रम में ही किया जाता है। इस संस्कार के समय गुरु शिष्य की चोटी अपने हाथ से काटता है; पुनः स्नान कराया जाता है, साथ ही उसके शरीर पर भस्म लगाया जाता है; अब वह औघड़ हो जाता है। इन सब क्रिया के बाद वह गुरु-सेवा करने लगता है। उसके योगाभ्यास तथा नवनाथ का बहुत महत्त्व बताया गया है, शरीर के नव द्वार को नवनाथ माना गया है। यह नवनाथ का क्रमवार वर्णन इस प्रकार है-

१. ज्योति स्वरूप ॐकार महेश्वर - आदिनाथ
२. धरणी स्वरूप पार्वती - उदयनाथ
३. जल स्वरूप ब्रह्मा - सत्यनाथ
४. तेज स्वरूप विष्णु - संतोषनाथ
५. वायु स्वरूप शेषनाग - अचलनाथ
६. आकाश स्वरूप गणेश - गजकैथाड़ीनाथ
७. वनस्पति स्वरूप चन्द्रमा - चौरंगीनाथ
८. माया स्वरूप करुणामय - मत्स्येन्द्रनाथ
९. अलक्ष्य स्वरूप आयोनिशंकर - त्रिनेत्र गोरक्षनाथ

इसके साथ ही योग साधना के क्रमशः आठ अंगों का भी उल्लेख किया गया है- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि। नाथ सम्प्रदाय में दो प्रकार के शिष्यों का उल्लेख दिखाई पड़ता है; पहला प्रवर्जित- जो ज्ञान होने पर घर त्यागकर योग दीक्षा लेते हैं, और दूसरा प्रत्यार्पित- जो कि बालक के रूप में ही योगी की याचना से अर्पित किया जाता है। प्रत्यार्पित बालक योग के लिए सर्वश्रेष्ठ अधिकारी होता है। इससे जारणा योग और कुण्डल्युत्थान की आशा लेती है। प्रवर्जित शिष्य केवल श्वास और घट विचार का ही अधिकारी होता है हठ योग का प्रत्याशी नहीं हो सकता; किन्तु बल, अबल, कर्मठता आदि के विचार से वह भी योग्य ठहरे तो उसके लिए भी द्वार खुले होते हैं।

गुरु अपने शिष्य की कई प्रकार की परीक्षाएँ लेते हैं। यदि गुरु शिष्य के चरित्र या अन्य उपलब्धियों से सन्तुष्ट हो तो अन्त में कर्ण बेधकर कुण्डल धारण कराया जाता है। कर्ण बेध के पश्चात नये नाथ को कुछ दिन भिक्षाटन के लिए समीप के नगर में जाना पड़ता है। इस अवसर पर गुरु के आश्रम में नवनाथ एवं चौरासी सिद्धों के साथ बालसुन्दरी की पूजा की जाती है, तथा आरती, हलवा एवं लड्डू की भेंट भी चढ़ायी जाती है। इसके उपरान्त भण्डारा का आयोजन किया जाता है। कर्ण कुण्डल पहनने पर दीक्षित शिष्य उस पंथ का सदस्य मान लिया जाता है जिससे उसका गुरु सम्बन्धित हो। नाथ सम्प्रदाय में बारह पंथों का उल्लेख मिलता है।

१. सत्यनाथ - सत्यनामी पंथ
२. रामनाथ (रामचन्द्र) - रामपंथ या रामनामी पंथ
३. धरमनाथ (युधिष्ठिर) - धर्मनाथी पंथ
४. लक्ष्मणनाथ (लक्ष्मण) - नटेश्वरी पंथ या लक्ष्मणनाथी पंथ
५. दरियानाथ - दरियानाथी पंथ
६. गंगानाथ (भीष्म) - गंगानाथी पंथ
७. वैरागनाथ, विचारनाथ - वैरागी या वैरागीनाथ पंथ
८. रावल, नागनाथ - रावल पंथ

९. जालंधरनाथ - जलंधर पंथ
१०.आईनाथ (विमला) - आई पंथ
११.कपिलनाथ - कपिलनाथी पंथ
१२.धजनाथ (हनुमान) - धजनाथी पंथ

इस सम्प्रदाय में मुख्यतः पाँच गुरु माने जाते हैं-

१. **चोटी गुरु**- चोटी गुरु उसे माना जाता है जो प्रथमतः शिष्य की चोटी काटता है। शिष्य का पंथ भी चोटी गुरु के नाम से चलता है और वही अपने गुरु का हकदार भी होता है।
२. **चीरा गुरु**- यह उस गुरु को कहते हैं जिसने औघड़ के कान में चीरा दिया हो।
३. **विभूति गुरु**-वह है जो औघड़ शरीर पर कुण्डल पहनने से पहले प्रथम विभूति लगाता है।
४. **उपदेशो गुरु**-इसका तात्पर्य उस गुरु से है जो शिष्य को कान छेदने के समय उपदेश देता है।
५. **शिक्षा गुरु**- यह गुरु योगाभ्यास तथा अन्य प्रकार की शिक्षा देता है।

नया योगी कुण्डल धारण करने के पश्चात गुरु के आश्रम में ही रहता है जब तक उसकी दीक्षा पूर्ण न हो जाये। कालान्तर में गुरु शिष्य को तमाम व्यावहारिक शिक्षा देकर तीर्थाटन के लिए भेज देता है जिससे वह अपना स्वतंत्र रूप से जीवन शुरू कर सके। इस प्रकार दीक्षा के लिए चार संस्कारों की व्याख्या की गयी है जो शिखा, वेध, त्याग, उपदेश नाम से जाना जा सकता है। ऐसे योगी मन-पवन को वश में करके श्वासोच्छवास द्वारा अजपा जाप का पाठ करते हैं और अन्दर-बाहर से सेली, सिंगी, नाद, मुद्रा, रुद्राक्ष, त्रिपुण्ड, गैरिकाम्बर, विभूत्याम्बर, बाघम्बर धारण करके निश्चयात्मक वृत्ति में रहते हैं, ये नाथ योगी दर्शनी भी कहलाते हैं।[२६] योगी पुरुष नादि, मुद्रा, सेली, सिंगी आदि जो बहिरंग का भूषण बनाकर धारण करते हैं, उपदेश विधि संस्कार में भी सेवक को इन भूषणों को अंतरंग का भूषण बनाकर पहनने की आज्ञा देते हैं। योगी नादि मुद्रादि को अन्दर-बाहर से धारण करते हैं और सेवक को अन्तःकरण में धारण कराते हैं और समझात हैं कि यह नादि मुद्रा तुम्हारे घट के भीतर मौजूद है।[२७] नाथपंथी साहित्य में कहा गया है कि मत्स्येन्द्रनाथ को अपना स्वरूप प्रदान करते समय महादेवजी ने स्वरूप का जो महत्त्व समझाया है, वह इस प्रकार है।[२८]

विभूति स्नान अभिप्राय :

श्री महादेवजी बालक तपस्वी सहित कैलास आये और अगले दिन अपना वेश स्वीकृति कराने लगे। प्रथम सिर में विभूति डालकर विभूति स्नान कराने के साथ-साथ उसका महत्त्व अर्थात् अभिप्राय भी समझाया कि 'हे शिष्य! हमने जो तेरे सिर पर डाला है यह भस्म अर्थात् मृत्तिका है। अतएव इसके डालने के द्वारा हम तुम्हें यह उपदेश देते हैं कि तुम आज से पृथ्वीवत हो जाना और जिस प्रकार अच्छी व बुरी वस्तु रखने से यह पृथ्वी कभी प्रसन्नता अप्रसन्नता नहीं प्रकट करती उसी प्रकार कोई भी सांसारिक मनुष्य अपने ज्ञान से व अज्ञान से तुम्हारे साथ अच्छा या कुत्सित व्यवहार करे, तुम पृथ्वी की तरह सदा एक रस ही बने रहना अर्थात् पृथ्वी तुल्य जड़ हो जाना। चेतनता केवल अलक्ष पुरुष का प्रिय बनकर आत्मोद्धार के लिए समझना अथवा इस भस्मी को डालने के द्वारा हमारा यह अभिप्राय मानना कि अग्नि के संयोग के पहले जिसकी यह भस्मी बनी है वह काष्ठ था। जिससे काठिन्यादि अनेक गुण थे और उसकी व्यावहारिक अनेक वस्तु भी बन सकती थी। परन्तु अग्नि के संयोग होने पर काष्ठ की यह दशा हो गयी कि इसके वे काठिन्यादि कुत्सित गुण न जाने कहाँ चले गये। अब इसमें से उन अनेक वस्तुओं का बनना भी संभव नहीं रहा। ठीक उसी प्रकार हमारे संयोग के पहले सम्भव है कि तुम अनेक सांसारिक व्यापार भी कर सकते थे परन्तु हमारे संयोग से

प्राप्त कर अब ऐसा हो जाना कि उसमें काष्ठ की तरह उन कुत्सित कृत्यों को भस्मसात् कर डालना।'

जल स्नान अभिप्राय :

महादेवजी ने जल स्नान का अभिप्राय समझाया कि 'हे शिष्य! जिसको हम तुम्हारे ऊपर छोड़ रहे हैं उसे वर्षाने वाला मेघ है। इस जल को सिर पर छोड़ने का हमारा यह अभिप्राय है कि तुम आज से वर्षाने वाला मेघ बन जाना और जिस प्रकार वह मेघ स्थल का भेद नहीं करता उसी प्रकार संसार के सभी श्रेणी के लोगों के साथ तुम्हारा समान बर्ताव होना चाहिए। अतएव तुम आज से जल बन जाना और जिस प्रकार हजार बार तपने पर भी यह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता तथा ऊपर डालने पर शीतलता प्रदान करता है ठीक इसी प्रकार कोई सांसारिक पुरुष तुम्हारी परीक्षा के अभिप्राय में अथवा अपने कुत्सित स्वभाव के अनुरोध से तुम्हारे अनेक तर्क न लगाये तो भी तुम जल की तरह अपना स्वभाव नहीं छोड़ना अर्थात् अपने सात्विक आत्मबल द्वारा उसको शान्त कर देना।

नाद जनेऊ का अभिप्राय :

यह काष्ठादि का बना हुआ यह नाद है, इसका दूसरा अर्थ शब्द है जो गुरु समझा जाता है अतएव आज से तुम नाद अर्थात् शब्द से अपनी उत्पत्ति समझना। नाद से उत्पन्न होने के कारण तुमने नूतन जन्म प्राप्त किया है। यह नाद जिसमें अवलम्बित है वह उर्णादि में निर्मित किया हुआ जनेऊ नाम से व्यवहृत किया जाता है। यह जिस प्रकार सांसारिक लोगों के जनेऊ से भिन्न है उसी प्रकार आज से अनेक अतथ्य व्यवहार परिणति सांसारिक व्यवहार में प्रवृत्त हो गये, तो कल्याण पथ प्राप्त करना तो दूर रहा तुम्हें अधिक हानि उठानी पड़ेगी। अतएव सदा अपने स्वच्छ उद्देश्य से मतलब रखना। इस अभिप्राय की आत्मा से जो दूर रहे वे भी व्यवहार में उपदेशी विधान के अवसर पर धातु की या बाँस की नली से शिष्य के कान में मंत्र फूँकते हैं। कान में मंत्र फूँकने की यह नली भी नाद संसर्ग के कारण 'नाद' कहलाती है।

भिक्षा का महत्त्व :

नाथ योगी की भूख निवृत्ति के लिए भिक्षावृत्ति करनी होती है, अलख भैरव रूप में भिक्षावृत्ति के लिए जाने का विशेष महत्त्व है; भैरव, छोली, बटुआ, भभूत, घुंघरू, नगीने, सेली आदि आवश्यक उपकरण हैं। उनकी चौबीस हाथ की सेली कमर से छाती तक बँधी रहती है। नौ हाथ की सेली गले में बँधी रहती है। दोनों भुजाओं में रंग-बिरंगे रुमाल बँधे रहते हैं। घुंघरुओं की ध्वनि गृहस्थों को योगी के आने की सूचना देती है। घंटे की आवाज सुनकर दरवाजे व रास्ते में भीख ले खड़े रहते हैं। योगी कहीं नहीं रुकता, झोली में प्राप्त एक दिन की वस्तु दूसरे दिन के लिए नहीं रखता क्योंकि यह कहा गया है कि- **आज खाय कल को रखै, ताको गोरख साथ न रखै।**

नाथपंथ में औघड़ शिष्य के लिए तीन दीक्षाएँ रह जाती हैं- बेध, उपदेश और त्याग।

चीरा बेध :

बेध अर्थात् कर्ण भेदन, यह बड़ी कठिन क्रिया है। इसके लिए अनुभवी गुरु और अनुकूल देश-काल की आवश्यकता होती है, बड़ी योग्यता से सावधान होकर शिष्य को उत्तरामुखी के रूप में समक्ष बैठाकर नीम के पानी से पकायी गयी दुधारी पतली छुरिका से कर्ण बेध किया जाता है। इस क्रिया के बाद वह नया नाथ बन जाता है। नया नाथ को चालीस दिन तक लम्बा सोना वर्जित है। यदि बैठे हुए नींद आ जाय तो कोई आपत्ति नहीं पर इसमें चीरा गुरु और नया नाथ दोनों को विशेष सावधानी रखनी पड़ती है। नया नाथ के इन चालीस दिनों को चीला कहा जाता है। इसके पूर्व में बतायी गयी यौगिक क्रिया करायी जाती है और पथ्य की

आवश्यकता पर जोर दिया जाता है। उचित उपचार होने पर बीस-पच्चीस दिनों में यह ठीक हो जाता है लेकिन इस प्रकार का बंधन चालीस दिन तक विद्यमान रहता है। सुधाकर चन्द्रिका में कहा गया है कि गोरखनाथियों का यह विश्वास है कि स्त्रियों के दर्शन से घाव पक जाता है, इसलिए जब तक घाव अच्छा नहीं हो जाता तब तक स्त्री दर्शन से बचने के लिए किसी कमरे में बंद रहते हैं और फलाहार करते हैं।[२९] जिस योगी का कान खराब या फट जाता है, वह सम्प्रदाय से अलग हो जाता है और पुजारी बनने का अधिकार खो देता है।

उपरोक्त विवरण से नाथ सम्प्रदाय में 'कुण्डल मुद्रा' का महत्त्व स्पष्ट होता है। इस पंथ में कर्णकुण्डल चलाने की प्रथा का श्रेय मत्स्येन्द्रनाथ व गोरखनाथ को दिया जाता है तथापि कर्णकुण्डल की प्रथा प्राचीन है। कुण्डलधारी शिव-मूर्तियाँ प्राचीन काल से ही बनती हैं। एलोरा गुफा के कैलास मन्दिर में शिव की एक महायोगी मुद्रा की मूर्ति पायी गयी है जिसके कान में बड़े-बड़े कुण्डल हैं। यह मन्दिर व मूर्ति आठवीं सदी ई. की है परन्तु यह कुण्डल कनफटा योगियों की भाँति नहीं पहने गये हैं। ब्रिग्स ने आठवीं सदी की सालसेटी, एलोरा, एलीफैण्टा की मूर्तियों के कुण्डल को कनफटा योगियों के कुण्डल जैसे बताया है।[३०] इसके अतिरिक्त मद्रास के उत्तरी आर्काट जिले के परशरामेश्वर का जो मन्दिर है उसके भीतर स्थापित लिंग पर शिव की एक मूर्ति है जिसके कानों में कनफटा योगियों के समान कुण्डल धारण कराया गया है। इस मन्दिर का पुनर्संस्कार ११२६ ई. में हुआ है; अतः निश्चय ही यह मूर्ति बहुत पुरानी होगी, पुरातत्त्वविद् टी.ए. गोपीनाथ राव ने इस मूर्ति की तिथि दूसरी, तीसरी सदी ई. माना है।[३१] इससे स्पष्ट होता है कि मत्स्येन्द्रनाथ के पूर्व भी शैव मूर्तियाँ कुण्डलधारी होती थीं पर इससे इस परम्परा का विरोध नहीं होता क्योंकि नाथपंथी साहित्य में कहा गया है कि शिवजी ने अपना वेश ज्यों-का-त्यों मत्स्येन्द्रनाथ को दिया था, जिसके लिए उन्हें कठोर तपस्या करनी पड़ी थी।

उपदेश :

यह योगिधर के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण विधि है। यह मात्र योगियों के लिए ही नहीं, अपितु प्रत्येक शिखा-सूत्रधारी के लिए भी है। इस विधान में सिद्ध नाथसाधकों द्वारा वाणी गायी जाती है। कभी-कभी तो प्रश्नोत्तर में मजबूत मण्डली जुट जाय तो दो-दो दिन भी बीत जाता है। कब रात हुई, कब दिन हुआ, इसका भी ध्यान नहीं रहता है। शब्दगान की शैली, चाल-ढाल, लय, ध्वनि आदि का पता ही नहीं चलता है। शब्द गाने वाले को शब्दी या मुनिवर कहते हैं। जब ये रस में या जिद में आ जाते हैं तो अपने शब्दों की अनवरत चाल को नहीं छोड़ते हैं। ऐसे मौकों पर इनके गले का ध्यान रखना बहुत आवश्यक होता है, इसके लिए केसर, पिस्ता, बादाम मिला गर्म दूध पिलाया जाता है। काली मिर्च, इलायची, मिश्री बार-बार काम में आते हैं जिससे गले व मुख में खुश्की नहीं होती है। इस विधान में उसी के शब्द गाये जाते हैं जो इस दीक्षा से दीक्षित हो। कबीर के शब्द गाये जायं या न गाये जायं इस बात पर कभी-कभी उपदेशी विधान में विवाद खड़ा हो जाता है। विधान में मर्मज्ञ और रसास्वादी होते हैं, तो ज्ञान की अमृत वर्षा होती है। बाह्य रूप से स्थान खूब सजा रहता है, समय-समय पर फूलों की भी वर्षा की जाती है। अभिमानी लोगों को बाहर कर दिया जाता है। मण्डलाचार्य विवेकी हों तो, स्वर्ग के द्वार खुल जाने का वास्तविक आनन्द इन मण्डलियों में आता है। वार्षिकोत्सव या किसी के जन्मोत्सव के अवसर पर भी मण्डल रचाया जाता है यह मेल कहलाता है, मेल में किसी के लिए विवाद नहीं होता है। कबीर, तुलसी, सूर, नानक आदि भक्तों के भी शब्द गाये जाते हैं। टोली में जिद होने पर शब्दी शब्दकर्ता और प्रसंग को नहीं बदल सकता, प्रश्नोत्तर प्रासंगिक होना चाहिए। जिसने जिस कवि को अथवा कवि के विषय को बदला तो वह हार जाता है। प्रायः इन मण्डलों में निर्गुणीशब्दों का ही प्रयोग होता है; सितार, तम्बूरा, कुर्जी, मंजीरा, तबला, ढोलक आदि खुल जाते हैं और गानवाद्यों का धूम

मच जाता है। सवाल-जवाब शुरू होने लगते हैं, रंग जम जाता है; हार-जीत के अवसर पर लोग हो-हो कर कर कल होनी की उपदेश का विधान किसी मठ में या मढ़ी में रचा जाता है। यह विधान अपनी सामर्थ्य के आधार पर ही अवलम्बित होता है क्योंकि इसमें खर्च अधिक होता है। एक दिन पहले मठ-मढ़ी के अधिपति जो इस विधान के आचार्य होते हैं, मुनवरों सहित निमंत्रित किये जाते हैं; निमंत्रण में निधानाचार्य अपने-अपने मठ के मुनवरों को साथ लेकर ठीक समय पर आ जाते हैं। दीक्षा-क्रम आरम्भ होने पर मानधारी निमंत्रित महंत साखी कहने के बाद शब्द चढ़ाता है। प्रथम शब्द गणेश की स्तुति का होता है। शब्दों के गाने में काफी समय लगता है, स्वर के साथ स्वर मिलाना पड़ता है। स्वर टूटना नहीं चाहिए अतः तीन-चार मुनवर मिलकर शब्द गाते हैं तो अटूट आनंद आता है। मनुष्यों की सम्पूर्ण बाह्य वृत्ति का शमन हो जाता है। शास्त्रीय संगीत का उपयोग यह लोग करते हैं इसलिए यह गायन मार्गी-गायन भी कहलाता है। गायन के शास्त्रों के तीन भेद मिलते हैं- साम गायन, शैव गायन, गंधर्व गायन। इन लोगों के संगीत में शैव गायन और गंधर्व गायन के तत्त्वों का योग मिलता है। एक शब्द को गाने में एक घंटे से कम नहीं लगता है, लेकिन आमंत्रित प्रत्येक महंत को समय मिलता है।

इनके यहाँ दीक्षा क्रम को विवाह से अधिक महत्त्व दिया जाता है। यह जनेऊ (यज्ञोपवीत) के बाद की दीक्षा है, अतएव इसका आयोजन बड़े सजधज के साथ होता है। गुरु पीठ का मंडप विशेष सजा रहता है। पाँच, सात, नौ संख्या के गुरु पीठ शिवनगरी जाग्रत स्थान की पूजा मंत्रों के साथ होती है। ज्योति, कला, पाठ, पूजा, नाद, मुद्रा का रहस्य प्रत्यक्ष उदाहरणों से समझाते हैं। कान में मंत्र फूँका जाता है। कहीं भटकने की आवश्यकता नहीं ज्योति कला आदि के दर्शन घट भीतर ही होते हैं। शिष्य को दृढ़ रहने का उपदेश मिलता है। दर्शनी योगी को जब उपदेश दिया जाता है तो उसे नाद मुद्रा नहीं देते हैं। अन्य सबको सेली, सिंगी पहनाकर दीक्षा देते हैं। दीक्षा क्रिया की समाप्ति पर भोजन प्रसाद देते हैं, आमंत्रित महंतों, ब्राह्मणों, भट्टों आदि को चीपी (दक्षिणा) दी जाती है। इस दीक्षा के आचार्य को सतगुरु या शब्द गुरु कहा जाता है।

नाथ सम्प्रदाय में सम्यक साधना का अनुष्ठान मुख्य माना जाता है इसीलिए इनकी साधना प्रणाली सर्वांगीण तथा विविधता लिये हुए होता है क्योंकि यहाँ रुचिभेद से जिस साधक को जो रुचे, वह उसी में प्रवृत्त हो। नाथ मतानुसार परम पद पूर्णत्व अथवा शिवत्व लाभ का अधिकार जीव मात्र से है। परिश्रम करने पर फल लाभ अवश्यम्भावी है, और चेष्टा करने पर मनुष्य के लिए कोई भी वस्तु असाध्य नहीं है। यही चेष्टा अथवा परिश्रम पुरस्कार है जिसकी आवश्यकता साधना मार्ग की यात्रा में सर्वप्रथम अपेक्षित है।[३२]

नाथ सम्प्रदाय गुरु के अतिरिक्त अन्य किसी कृपा को नहीं मानता। इस पंथ में गुरु की बड़ी महिमा बतायी गयी है। गुरु ही समस्त श्रेयों का मूल है और एक मात्र अवधूत ही गुरुपद का अधिकारी हो सकता है। वह अवधूत जिसके प्रत्येक वाक्य में वेद निवास करता है और प्रत्येक पद में तीर्थ बसते हैं, प्रत्येक दृष्टि में कैवल्य या मोक्ष विराजमान होता है जिसके एक हाथ में त्याग है और दूसरे हाथ में भोग, फिर भी जो त्याग और भोग दोनों में अलिप्त है;[३३] और जैसा कि सूत्रसंहिता में कहा गया है, वह वर्णाश्रम से परे है और समस्त गुरुओं का साक्षात् गुरु है न उससे कोई बड़ा है और न बराबर।[३४] इसी प्रकार विनिर्मुक्त योगेश्वर को भी नाथ पद की प्राप्ति होती है क्योंकि सप्तधातु भय काया के पिंजरे में योग मुक्ति न जानने से जीव सुए की भाँति बद्ध पड़ा हुआ है, सतगुरु ही अपने कृपा-कटाक्ष से उबार सकते हैं, इसके अलावा अन्य कोई उपाय नहीं है। गुरु की आवश्यकता के विषय में नाथपंथी गण कठोपनिषद् का सहारा लेते हैं कि आत्म तत्त्व, अल्पज्ञ मनुष्य की शिक्षा से एवं बहुत प्रकार से स्व चिन्तन करने पर भी विज्ञेय नहीं हैं। इसलिए दूसरे ज्ञानी पुरुष के द्वारा उपदेश

न किये जाने पर इस विषय में मनुष्य का प्रवेश नहीं होता है क्योंकि यह अत्यन्त सूक्ष्म और तर्कातीत तत्त्व है। वह ज्ञानी तत्त्ववेत्ता भी धन्य है और जिज्ञासु शिष्य भी धन्य है जो परस्पर इसका कथन करते हैं।[३५] नाथमतानुसार संसार में भटकते हुए तृषित जीव को एक मात्र सतगुरु का करुणावारि ही परमशान्ति दे सकता है, दूसरी कोई वस्तु नहीं। गुरु का मूड़ा हुआ गुण में रहता है, जिसे गुरु नहीं मिला वह अवगुणों के गहन गर्त में भ्रमित हुआ जीवन यापन करता है।[३६] पूरा गुरु अगर नहीं मिला तो इस मार्ग पर पैर रखकर अपने कुल का नाश न करे। नाथ वाणियों की यह स्पष्ट उक्ति है ऐसा न होने पर न परमार्थ की सिद्धि होगी और संसार की।[३७]

गुरु-शिष्य का सम्बन्ध पिता-पुत्र सम्बन्ध से भी अधिक घनिष्ठ प्रेमयुक्त निःस्वार्थ और महत्त्व का है। पुत्र लौकिक पिता की बिन्दु संतान है और शिष्य गुरु की नाद संतान है। पिता स्थूलदेह का जन्मदाता है और गुरु ज्ञानदेह का। शास्त्रों में जन्म को नेत्रोन्मीलन कहा गया है। मातृगर्भ से बाह्य संसार में पदार्पण करने के पश्चात वैष्णवी वायु के सम्पर्क से शिशु का प्रथम नेत्रोन्मीलन उसका जन्म कहलाता है। यह नेत्र खोलना ही जन्म है और लौकिक पिता इसी का दाता है। पिता भी नेत्रोन्मीलन रूपी जन्म का दाता है, परन्तु गुरु पिता ज्ञान नेत्रोन्मीलन रूपी जन्म का दाता है, गुरु अपनी कृपा शिष्य को चैतन्य का बोध कराकर आज्ञा चक्र स्थित उसके प्रज्ञाचक्षु को खोलता है। तब शिष्य के आध्यात्मिक जन्म का आरम्भ होता है। यह जीवन परमार्थ के संसार का जीवन है इसमें जरा-मृत्यु, रोग-शोक, अज्ञान और अबोध के लिए कोई स्थान नहीं है। गुरु इसका दाता है अतएव परात्पर पिता है।

नाथ साहित्य में जिस प्रकार शिष्य के लिए आवश्यक योग्यता व गुण की चर्चा की गयी है और अयोग्य शिष्य से जिस प्रकार नाथ सिद्ध गुरु को सावधान रहने के लिए कहते हैं शिष्य को भी अयोग्य गुरु के प्रति सचेत रहने के लिए कहना वे नहीं भूले। अयोग्य गुरु से योग के स्थान पर रोग मिलता है। अतः गुरु परखकर करना चाहिए। चेलों का दल बल बाँधकर भिक्षा से अघाकर खाने वाले असंयमी गुरुओं की सिद्ध चर्पटीनाथ ने बड़ी ही स्पष्टोक्ति में खबर ली।[३८] ध्यान की अवस्था में केवल ध्यान मात्र का ही संधान शेष रह जाता है। ध्यान के शास्त्र में सोलह भेद कहे गये हैं। साधारणतया दो निर्गुण एवं सगुण ध्यानों का ही उल्लेख मुख्य रूप से मिलता है। ध्यान की परिपक्व अवस्था में एक मात्र ध्येय का संधान जिसका स्वरूप अनिर्वचनीय कहा गया है, समाधि कहलाती है। समाधि के भी सवितर्क, सविचार, संप्रज्ञात, सविकल्प, जड़, असंप्रज्ञात, निर्वितक, निर्विकार, निर्विकल्प, नित्यचैतन्य, अस्पर्श इत्यादि कई नामों का उल्लेख है। मंत्र योग का नाथ सम्प्रदाय की विभिन्न साधना पद्धति में विशिष्ट स्थान है। प्राण वायु टंकार से बाहर जाता है, और सकार के भीतर प्रवेश करता है, श्वास, प्रश्वास की इसी गति के मध्य जीव 'हंस' मंत्र का सर्वदा जाप करता है। गुरु कृपा से प्राण की विपरीत भावपन्न अवस्था में जब यह मंत्र सोऽहं के रूप में परिणत हो जाता है तब मंत्र योग आख्या इसे दी जाती है। यही नाद महान अनहद नाद में लीन होकर साधक जीव को आज्ञा चक्र में लाता है। वहाँ बिन्दु स्थान भेदकर सहस्रारस्थ महाबिन्दु पर्यन्त पहुँचा होता है। हंस मंत्र का सोऽहं में परिणत होना नाथ मतोपदिष्ट मंत्रों की पूर्णाहुति यही है।[३९]

संदर्भ

१. ऋग्वेद - १०.१३०, सिद्धनाथ संहिता विवेक सागर भाग-१, पृष्ठ-११

२. वही- पृ.१६

३. राजगुह्य- नाकारोऽनादि रूपं थकारः स्थाप्यते सदा। भुवनत्रयमेवैकः श्री गोरक्ष नमोऽस्तुते।।

४. हठयोग प्रदीपिका- आदिनाथः सर्वेषां नाथानां प्रथमः, ततौ नाथ सम्प्रदायः प्रवृत्त इति नाथ संप्रदायिनो वदन्ति।

५. गोरक्षसिद्धान्त संग्रह- महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज, पृ.१८

६. शक्ति संगम तंत्र- श्री मोक्षदानदक्षत्वात् नाथ ब्रह्मानुबोधनात्। स्थागिताज्ञान विभवात् श्रीनाथ इति गीयते।।

७. गुरु गोरखनाथ- डॉ. नागेन्द्र नाथ उपाध्याय।

८. गोपीनाथ कविराज अभिनन्दन ग्रंथ- आचार्य श्री परशुराम चतुर्वेदी

९. गोरक्षसिद्धान्त संग्रह- वही, पृ.१८

१०. दे. स्कन्द पुराण (काशी खंड)

११. दे. प्राचीन भारतीय संस्कति में व्रत- डॉ. चन्द्रमौलि मणि त्रिपाठी (१९८९)(गोरखपुर वि.वि.का अप्रकाशित शोध प्रबन्ध), प्राचीन भारतीय समाज, अर्थ एवं धर्म- प्रो. रमानाथ मिश्र, पृ.३०,३१

१२. गोरखनाथ और उनकी परम्परा का साहित्य- डॉ. दिवाकर पाण्डेय

१३. वही

१४. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, खंड ६- हजारी प्रसाद द्विवेदी

१५. बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन- भरत सिंह उपाध्याय, पृ.६८

१६. नाथ सम्प्रदाय का इतिहास और दर्शन- डॉ. कल्याणी मलिक, पृ.१९१-१९३

१७. गोरक्षसिद्धान्त संग्रह- नाथ कहें तुम आपा राखै, नाथ कहें तुम सुनहु रे अवधू
गोरखवाणी- डॉ. बड़थ्वाल, ते निश्चल सदा नाथ के संग, नाथ महंता सब जग नाथ्या

१८. गोरखनाथ एण्ड दी कनफटा योगीज- जी. डब्ल्यू. ब्रिग्स
नाथ सम्प्रदायेत्तर इतिहास दर्शन और साधन प्रणाली- डॉ. कल्याणी मलिक

१९. गंभीरनाथ प्रसंग- पृ.५०,५१

२०. ब्रिग्स- वही, पृ.६३, हजारी प्रसाद द्विवेदी का सुझाव है कि यह सर्वसम्मत सूची नहीं समझनी चाहिए।

२१. वही- हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.३३,३४

२२. गोरखवानी- पृ.१८५, सूर मांहि चंद महि सूर, चंदहि तीनि तेहुणा बाजल तूर।
मणंत गोरखनाथ एक पर पूरा मांजन भौदू सांघति सूरा।

२३. वही, पृ.२४९ एती अष्टांग जोग पारछया, भगति का लक्षनं।
सिधापाई, साधिका पाई, जे जन उतरे पारं।।

२४. दत्त की सब्दी- जान तै अन्जान होइवा, तत लेबा छाणि।
गुरू किया लाभ है अवधू, चेला किये हाणि।।

२५. आदेश का अर्थ और अभिप्राय बताते हुए देवी पाटन मन्दिर, उ.प्र. के योगी सूर्यनाथ ने बताया कि यह समस्त गुरुओं को आदेश, सदगुरु को आदेश, मेरी भक्ति आपकी शक्ति प्राप्त हो को मन में पढ़कर नादि बजाकर आदेश करें।

२६. दर्शनी योगी शिव की काया, जोगी जोग जुगुत की राशि।

२७. मन, मदुरा, सत गुरू छुरी, शवन्दा वेध्या कान जोगी का घर कण्णा है कहवे क आसान।।

२८. 'योगिसंप्रदायाविष्कृत'

२९. इस अवधूत की संगत करना, इस अवधूत से पार उतरना।

सून्य मंडल में इसकी फेरी, काली नागिन इसकी चेरी।।
बटुआ भीतर नागन आई, नागन मार तले विधाई।
तब जोगी ने जुगुत कमाई, सलक भिष्य मांगू, घर पर मांगू।।
कर पर खाऊ भले बुरे के संग न जाऊं।

३०. ब्रिग्स, वही

३१. इण्डियन एण्टिक्वैरी भाग-४, नाथ सम्प्रदाय- द्विवेदी, पृ.२७

३२. गोरखवाणी- चार पहर आलंगन निंद, संसार जाई विषया वाही।
उमी वॉह गोरखनाथ पुकारे झूलम हारौ म्हारा भाई।।

३३. गोरक्षसिद्धान्त संग्रह- पृ.१
वचने वचने वेदास्तीर्थानि च पदे पदे। दृष्टौ दृष्टौ च कैवल्यं सोवधूतः श्रियेस्तुनः।
एक हस्ते धृतस्त्यागो योगश्चैककरे स्व्यम्। अलिप्त स्तत्याग योगाभ्यां सोवधूतः श्रियेस्तु।।

३४. अष्ट.- पृ.४५६
अतिवर्णाश्रमी साक्षात् गुरूणां गुरु रुच्यते। न तत्समोधिको वास्मिन लोकेस्त्येव न संशयः।।

३५. वही- न नरेणा वरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेय बहुधा चिन्तयमान अनन्य प्रोक्ते
गतिरन्त्र नास्ति अणीयान हय तकर्पमण प्रमाणायात्।

३६. वही- सांच का शब्द सोना का रेख, निगुरा को चाणक सशुरा को उपदेश
गुरु का मुड्या गुण में रहे। निगुरा भ्रमे औ गुज नाहै।

३७. गोरखवानी- काज न मिट्या जंजाल न छुट्या, तब करि हुआ न सूरा,
कुल का वास करे मति मति कोई जे गुरु मिलै न पूरा।

३८. नाथ सम्प्रदाय- द्विवेदी, पृ.१६३

३९. गोरखवानी- ऐसा जाप करो मन लाई, सोऽहं अजपा गाई आसण दृढ़ करि धरो धियानं।

स्वाधीन चेतना के विकास में संतों की भूमिका

-डॉ. कन्हैया सिंह*

'मानव पहला स्वाधीन पशु है; और स्वाधीन होने के नाते पशु नहीं है। मानवेतर सभी प्राणियों के जीवन की चरम संभावनाएँ उनकी शरीर संरचना से मर्यादित हैं; मानव पहला ऐसा प्राणी है जो भाषा पाकर, अवधारणा की शक्ति पाकर, प्रतीकों का स्रष्टा होकर पूर्व-कल्पना से परे चला गया है, अकल्पनीय और असीम संभावनाओं से संपन्न हो गया है। एक परोक्ष सत्ता से जुड़ गया है, स्वाधीन हो गया है। वह मूल्यों की अवधारणा करता है, सृष्टि करता है और स्वाधीनता उसका सबसे पहला, सबसे आधारभूत मूल्य है; क्योंकि यही उसके मानवत्व की कसौटी है। इसके बिना वह पशु है।' **-अज्ञेय**

जिस पर किसी का नियंत्रण न हो, मन, वाणी, कर्म में वह 'स्व' विवेक से कर्म करने को स्वतंत्र हो, वह स्वाधीन कहा जाता है, अर्थात् जो पराधीन नहीं है, वही स्वाधीन होता है। आन्तरिक स्वाधीनता और बाह्य स्वाधीनता की दृष्टि से आन्तरिक स्वाधीनता अपनी सोच समझ और इन्द्रिय संयम आदि द्वारा कछुए की तरह अपने को समेटने की सिद्धि या स्थितिप्रज्ञता में तथा बाह्य स्वाधीनता कार्यव्यवहार की स्वतंत्रता में होती है। इस दृष्टि से बुद्ध, शंकराचार्य, गोरखनाथ से लेकर स्वामी रामानन्द तक ने अन्तर्बाह्य स्वाधीनता का मार्ग प्रशस्त किया। स्वामी रामानन्द ने स्वाधीनता के आयाम को व्यापक बनाया। छूत-अछूत के बंधन को तोड़कर, सगुण-निर्गुण के भेद को पाटकर उन्होंने एक ऐसा भक्ति-प्रवाह चलाया जो कबीर-तुलसी जैसे स्वाधीन, स्वाभिमानी, स्वतंत्र और समन्वयी संतों-भक्तों को एक साथ लेकर चला। संत-भक्ति आन्दोलन जो १२वीं शताब्दी से लगभग ४०० वर्ष तक संतों और कवियों की वाणी में गूँजता रहा, वह उत्तर से दक्षिण, पूरब से पश्चिम सम्पूर्ण देश में व्याप्त वैचारिक आन्दोलन था, जिसके मूल में धार्मिक आध्यात्मिक स्वाधीनता, सामाजिक स्वाधीनता तथा राजनीतिक स्वाधीनता के स्वर गुंफित थे। यह वह समय था जब देश पर इस्लाम धर्मावलम्बी विभिन्न वंशवालों का शासन चलता रहा था। इस रक्तहीन वैचारिक क्रान्ति ने इस देश की संस्कृति और धार्मिक आध्यात्मिक विशेषता को बचा लिया।

डॉ. इकबाल ने लिखा :

ईरान, मिस्र, रोमॉ सब मिट गए जहाँ से,
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।

तो उनका संकेत इसी आन्तरिक स्वाधीन चेतना की ओर था।

अल्ताफ हुसेन हाली ने अपने मुसद्दस में इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया :

जो दीने हजाजी का बेबाक बेड़ा, निशां जिसका अक्साए आलम में फहरा
मुजाहिम हुआ कोई खतरा न जिसका, न अम्मान में खटका न कुलजुम में झचका
किए पै सिपर जिसने सातो समन्दर, वो डूब दहाने में गंगा में आकर।

मौलाना हाली का बयान सही है क्योंकि अरब में यहूदी धर्म-संस्कृति को मिटाकर इस्लाम छा गया और ईराक, इरान, अफगानिस्तान सब में यहूदी-पारसी धर्म-संस्कृतियों को मिटाकर इस्लाम का परचम लहराया पर लगभग ५०० वर्ष के शासन के बाद भी भारत में इस्लाम फैला तो काफी, पर हिन्दू धर्म-संस्कृति को मिटाने में न उनकी तलवार कारगर हुई, न उनकी राजनीति और न ही उनका सुलह-कुल या सूफीमत कामयाब हुआ।

*राहुल नगर, मड़या, आजमगढ

इसका मूल श्रेय मध्यकालीन संतों-भक्तों और उनके वैचारिक आन्दोलन को ही है।

इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि में सहजिया सिद्धों, जैनों और नाथयोगियों के धार्मिक आन्दोलन थे। उन विविध सुधारवादी आन्दोलनों से बहुत कुछ लेकर और उसमें से बहुत कुछ छोड़कर भक्ति आन्दोलन का प्रवाह चला। इतना बड़ा यह आन्दोलन भारत में दूसरा कोई नहीं हुआ। इसके मूल में साधना और भक्ति तो थी ही पर साथ ही इसमें तत्कालीन राजसत्ता के मानसिक प्रतिरोध का स्वर भी मुखर था। संत कबीर जब अपने को बादशाह कहते हैं तो वह यह भी साधो, भाई, अवधू, काजी, पंडित को संबोधित करके कहना चाहते हैं कि संत स्वयं अपने तन का और मन का बादशाह है। कोई और उसके लिए बादशाह नहीं। तुलसी बादशाहत और साहिबी केवल अपने आराध्य राम की स्वीकारते हैं। 'राम के गुलाम' तुलसी किसी और के गुलाम नहीं हैं। वे साफ कहते हैं-

हम चाकर रघुवीर के पट्यो लिख्यों दरबार।
तुलसी अब का होंहिंगे नर के मनसबदार।।

जब बड़े-बड़े कवि दरबार की चाकरी कर रहे थे और पुरस्कार तथा मनसब प्राप्त कर रहे थे तुलसी जैसे मुक्तसंत अपनी स्वाधीन चेतना की अलख जगाते हुए कहते थे कि 'मैं राम का गुलाम हूँ। राम बोला नाम ही मेरा है।' वे देश की जनता को बता रहे थे कि सबसे बड़ा दरबार राम का है और उसको छोड़कर किसी और की गुलामी का क्या अर्थ है? पूरी 'रामचरितमानस' उसी स्वाधीन चेतना की जागृति का संदेश देता है। वनवासी राम को देखकर तुलसी के समकालीन इतिहास की झलक मिलने लगती है। राम लंका के महाप्रतापी रावण से लड़ने जा रहे हैं। जंगल में कुटी बनाकर रहते हैं। कंदमूल-फल खाते हैं। बन्दर, भालुओं की सेना जोड़ते हैं-दिग्विजयी रावण से लड़ने के लिए। उधर राणा प्रताप जंगल में घूमते फिरते हैं। घास की रोटी खाते हैं। कोल भीलों की फौज सजाते हैं और दिल्लीश्वर अकबर से लड़ने के लिए साधनहीन थे उनके पास शौर्य और धैर्य के पहिए का रथ है और प्रताप के पास भी यही सहारा है। लेकिन तुलसी अपने आख्यान में युग के राम को यह संदेश देना चाहते हैं कि हे नवयुग के राम! यदि तुमने कंचन और कामिनी की लालच की तो तुम्हारी भी वही दशा होगी जो कंचन मृग के पीछे दौड़ने वाले स्त्री की आकांक्षा में वशीभूत राम की हुई थी। मानव को कौन कहे पशु-पक्षी भी मानो उन पर व्यंग्य कर रहे हैं 'तुम आनन्द कारहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ये आए।' इतना ही नहीं कि तुलसी पुराण की कथा द्वारा समकालीन इतिहासबोध को जगा रहे थे, अपितु अपने समाज की पराधीन मनोवृत्ति को कोसते भी थे। वे बहराइच में सैयद सालार मसूद गाजी की मजार पर लगने वाले मेले में जाने वाले अंधविश्वासी समाज को सचेत करते हैं-

लही आँख कब आंधरे बांझ पूत न जाय।
कब कुष्टी काया लही जग बहराइच जाय।।

कबीर स्वाधीन थे-स्वतंत्र थे। पंथ से, स्वभाव से, जाति से, जड़ता से, पाखंड से, पण्डित से, मुल्ला से और राजा या बादशाह से। कहते हैं कि सिकन्दर लोदी ने उन्हें हाथी के पैरों तले कुचलवा देने का आदेश दिया। पागल हाथी आया, कबीर ने हँस दिया मतवाला हाथी कबीर के सामने से मुड़कर भाग चला।

इस सम्बन्ध में रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' ने 'ज्योति पुरुष' में लिखा है-

भागा मतवाला हाथी पीछे की ओर दहलता।
शाही खेमे को घेरे रक्षकदल को रौंद कुचलता।
लोई-कमाल ने देखा, अब थमने लगी लड़ाई।

घन गर्जन सी जयध्वनि कबीर की पड़ने लगी सुनाई।।

थी जय मानवता की ही यह हत्यारी पशुता पर
थी जय पवित्रता की मद से अंधी पामरता पर
थी जय जनता की यह अधर्म पर, अत्याचार अन्याय पर
थी जय कबीर की नहीं, जीत थी अडिग अभय भी भय पर।।

इतने अडिग अभय कबीर स्वाधीनता के भावी आन्दोलन के प्रथम पुरुष थे, जिन्हें लोदी ने बोरे में बाँधकर गंगा में बहा दिया था- धर्मदास उस बहते हुए बोरे के साथ-साथ गंगा के किनारे-किनारे चलते गये और किसी घाट पर बोरे से उन्हें निकाल लाये। ये ही कारण थे कि कबीर को काशी छोड़कर मगहर जाना पड़ा। कबीर ने सूफी मैसूर हल्ला की तरह मरना स्वीकार किया पर अपने स्वतंत्र स्वाधीन विचारों और सिद्धान्तों को नहीं छोड़ा। संतों की यही कहानी विश्वभर में व्याप्त है। वह मंसूर हो या ईसा मसीह। आजादी के लिए फाँसी चूमने का भाग्य संतों का ही है। इसीलिए मुहावरा बन गया- **यह मुँह और मसूर की दाल।**

कबीर हों, मंसूर हों, ईसा हों या कोई संत भक्त हो, वह क्यों किसी से डरे- वह तो अमर है, मरजिया है, उसे सिर की चिन्ता नहीं, वह तो पहले ही सिर उतार चुका है। धरमदास कहते हैं-

सूँघत के बौरा गए पीयत के मरि जोइ।
नाम रस सो जन पिए धड़ पर सी न होइ।

ऐसे संत अपने में ही रमे रहते हैं- वे सर्व तंत्र स्वतंत्र और सभी बंधनों से परे स्वाधीन चेता होते हैं।

पूरे मध्यकाल के भक्ति आन्दोलन में चाहे निर्गुनिए संत हों या रामकृष्ण के भक्त कवि हों या सूफी संत और महाकवि हों, सभी स्वाधीन चेतना के प्रहरी थे और अपने-अपने ढंग से सबने अपनी आजादी के साथ समाज को आजादी का संदेश दिया। सूरदास का कृष्ण चरित्र उनकी भक्ति के साथ कंस के तानाशाही शासन के विरुद्ध जन विद्रोह का प्रतीक भी था जिसके नेता थे वासुदेव श्रीकृष्ण। मलिक मुहम्मद जायसी ने अपना पूरा महाकाव्य ही रत्नसेन पद्मिनी की निजी स्वतंत्रता, मातृभूमि चित्तौड़ की स्वतंत्रता और सामाजिक स्वतंत्रता का आख्यान है। अपने दीन का पाबंद मुसलमान होते हुए जायसी एक प्रतापी मुसलमान बादशाह के काले कारनामे की भर्त्सना करते हैं- यह युगधर्म उस समय के सभी संत भक्त कवियों का हो गया था।

कृष्ण भक्त कवियों में कुम्भनदास, स्वामी हरिदास सभी को अकबर अपने दरबार में आमंत्रित करके महिमान्वित होना चाहता था। कुम्भनदास तो शाही फरमान पर फतेहपुर सीकरी तक चले गये पर जब वहाँ जाने पर उनकी प्रतिक्रिया पूछी गयी तो उन्होंने साफ उत्तर दिया-

संतन सो कहाँ सीकरी सो काम।
आवत जात पनहिया टूटी बिसरि गयो हरिनाम।

लेकिन इससे भी निर्भीक और स्वाधीन चेतना के स्वर में उन्होंने आगे कहा-

जाके मुख देखत दुःख उपजत, ताकों करिबे परी सलाम।।

जिसका मुख देखने से ही दुःख होता है उसे सलाम करनी पड़ी। मुख देखकर दुःख होने में बड़ी दूरगामी व्यंजना है, वह यह कि शाहंशाह बादशाह उपाधिधारी उस शासक को देखकर अपनी स्वाधीनता के ऊपर लगे ग्रहण का स्मरण करके दुःख हुआ।

स्वामी हरिदास का संगीत सुनने के लिए तो अकबर को तानसेन के साथ उसका भृत्य बनकर वृंदावन जाना पड़ा था। इतने स्वाभिमानी और स्वाधीन हमारे संत थे।

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत स्वामी रामदासजी छत्रपति शिवाजी के गुरु ही नहीं, मार्गदर्शक और स्वराज्य स्थापना के मंत्रद्रष्टा थे। कहते हैं कि स्वामीजी भ्रमण करते हुए शिवाजी के स्वातंत्र्य अभियान में सूचना देकर उनकी सहायता भी करते थे। जीते हुए किलों और सैनिकों की कुशलता का संदेश वे पत्थर के कुछ टुकड़ों और घोड़ों की लीद बाँधकर प्रसाद रूप में भेजकर देते थे; संकेत था कि तुम्हारे किले और घुड़सवार सुरक्षित हैं। इसी प्रकार बुन्देलखंड में स्वराज्य स्थापना करने वाले बुन्देला वीर छत्रसाल के गुरु प्राणनाथ थे। स्वामी प्राणनाथ उस युग के प्रसिद्ध संत थे। उन्होंने जंगलों में अपने शिष्यों से छत्रसाल की सहायता ही नहीं करायी बल्कि उनका स्वतंत्र राजा के रूप में अभिषेक भी स्वयं उन्होंने ही किया था।

प्रतिरोध की धारा और स्वधर्म, स्वराष्ट्र, स्वातंत्र्य और स्वाधीनत्व का जो अन्तर्प्रवाह संत-भक्तों ने प्रवाहित किया था, उसी के परिणामस्वरूप आगे चलकर जब राजशेखर और पंडित जगन्नाथ जैसे लोग दिल्लीश्वरों व जगदीश्वरों की विरुदावली गा रहे थे, गंग जैसे कवि अपनी स्वतंत्र आवाज के लिए हाथी के पैरों तले कुचलने के आदेश को सिरमाथे ले रहे थे। श्रीधर कवि ने लिखा है कि सच्चे साधु राजदरबार में नहीं जाते थे जो जाते थे वे-

राजदुलारे साधुजन तीन वस्तु को जॉय।
कै मिठा, कै मान को, कै माया को चाह।

अकबरी दरबार में समस्या पूर्तियाँ होती थीं, उनमें पूर्ति का विषय ऐसा रखा जाता था कि राजा या इस्लाम की प्रशस्ति समस्यापूर्ति में की जाय। श्रीधर कवि कभी चाटुकारिता की समस्यापूर्ति नहीं करते थे। सारी समस्याओं की पूर्ति में वे अपने भगवान की महत्ता का बखान करते थे।

उनकी परीक्षा लेने के लिए समस्या रखी गयी- 'करो मिलि आस अकबर की' श्रीधर ने छंद बनाया-

अब के सुलतान भए फुहियान, से बाँधत पाग अटब्बर की,
नर की नरकी कविताजु करै, तेहि काटिए जीभ सुतब्बर की,
इक श्रीधर आस है श्रीधर की, नहि त्रास अहै कोई बब्बर की
जिनको नहिं आस कछू जग में, सो करो मिलि आस अकब्बर की।

इसी प्रकार एक बार स्वाभिमानी कवि को झुकाने के लिए समस्यापूर्ति का विषय रखा गया- **'हैं वही काफिर कि जो कायल नहीं इस्लाम के।'**

कवि ने पूर्ति का छंद प्रस्तुत किया-

लाम के मानिन्द है गेसू मेरे घनश्याम के।
हैं वही काफिर कि जो कायल नहि इस 'लाम' के।

शहंशाहों, जहाँपनाहों, सुल्तानों के दरबार में हिम्मत से अपनी अस्मिता के लिए सिर कलम कराने से न डरने वाले इन संतों-कवियों, बुद्धिजीवियों ने जो प्रतिरोध की परम्परा विकसित की उसी का परिणाम था, १८५७ का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम और उसी के साथ राजनीति, समाज और साहित्य में नवजागरण के युग का प्रारम्भ हुआ। साहित्य जिसे नवजागरण या पुनर्जागरण कहते हैं, समाज में जिसे सुधार-आन्दोलन कहते हैं और राजनीति में जिसे स्वतंत्रता-संघर्ष कहते हैं, उनका भी संदेश संतों और संन्यासियों ने दिया। स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण, विवेकानन्द, अरविन्द, रामतीर्थ आदि की एक लम्बी संत-शृंखला ही थी जिसने इस सुषुप्त भारत की अस्मिता को जाग्रत किया और उसी की फलश्रुति में स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा गाँधी और संत विनोबा तथा न जाने कितने स्थानीय संत हुए, जिन्होंने स्वाधीन चेतना के इस स्वर को परवान चढ़ाया। स्वाधीनता के क्रमिक

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में नाथपंथ

-डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद*

समालोचकों द्वारा किंचित् उपेक्षित ऐतिहासिक उपन्यासों में भारत के बहुआयामी जीवन को हम एक कलात्मक कथानक में तत्युगीन पात्रों की चिंतना, क्रियाशीलता तथा अभिव्यक्ति के द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में देख सकते हैं, समझ सकते हैं और अनुभूत कर सकते हैं। युग का जीवन उपन्यास में जीवंत हो उठता है। इतिहास में समाधिस्थ नायक जागृत हो जाता है। उस युग की सारी स्थितियाँ आँखों के सामने आ जाती हैं। उपन्यास के माध्यम से पाठक वर्तमान में रहकर अतीत में प्रवेश कर जाता है। हम कभी-कभी उस युग की गतिविधि और संघर्ष में सम्मिलित-से हो जाते हैं। वर्तमान का यथार्थ अतीत के यथार्थ के निकट आ जाता है। यह भविष्य की दृष्टि की ओर संकेतित कर देता है। यह ऐतिहासिक उपन्यास की सार्थकता है।

प्राचीन भारत वैदिक युग से चिंतन, मनन, अनुसंधान, उपासना एवं नवनिर्माण में रत रहा है। चिंतन और उपासना की स्वतंत्रता के कारण विभिन्न साधकों द्वारा अनेक साधना पद्धतियाँ उद्‌भूत हुई हैं। द्वन्द्व के साथ समन्वय होता रहा है। ईसा से पहले श्रमण-जैन और बौद्ध चिंतना एवं साधना आ गयी थीं। बाद में बौद्ध चिंतना एवं साधना हीनयान, महायान, वज्रयान, तंत्रयान और सहजयान में बदलती रही है। वैदिक-अवैदिक जनजीवन में शिव का स्थान रहा है। शिव के साथ योग जुड़ा हुआ है। ईसा से डेढ़ सौ वर्ष पहले पतञ्जलि ने योग के सिद्धान्त एवं साधना को 'योगसूत्रम्' में प्रस्तुत कर दिया। योग प्राणतत्त्व (वायुतत्त्व) की शक्ति-साधना है। इसके द्वारा कुण्डलिनी को जागृत करके योगी ऊर्ध्वआरोहण करता है। वह शिवमय हो जाता है। यह विश्व को भारत का विशिष्ट अवदान है।

नाथपंथ इसी योग पर आधारित है। गुरु मत्स्येन्द्रनाथ और गुरु गोरखनाथ ने इस नाथपंथ को प्रतिष्ठित किया था। बौद्ध महायान के वज्रयान-तंत्रयान-सहजयान की पंचमकार साधना के कामपरक रूप से क्षुब्ध साधक ने योग पर आधारित नाथपंथ के शुद्ध सात्त्विक रूप को समाज के समक्ष रखा। आदिनाथ शिव से जुड़ा नाथपंथ तेजस्वी रूप में प्रकट हो गया था।

औपनिवेशिक लेखनी से प्रस्तुत और वामपंथी विरोध एवं विकृति से रचित भारतीय इतिहास नाथपंथ के योगदान को भूल सकता है। पर हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने नाथपंथ के साधनामय एवं संघर्षमय जीवन को अपने उपन्यासों में दिखा दिया है। इस आलेख ने ऐतिहासिक उपन्यासों में चित्रित नाथपंथी साधना के बहुआयामी अवदानों का विवेचन किया है।

सर्वश्री रांगेय राघव, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, शिव प्रसाद सिंह और शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों में नौवीं सदी से लेकर पन्द्रहवीं सदी तक भारतीय जीवन में नाथपंथ की साधना एवं सामाजिक-राष्ट्रीय क्रियाशीलता को देखकर हम अनुप्राणित हो सकते हैं। यह कालखंड नाथपंथ के प्रभाव का काल है।

प्रसिद्ध चिंतक और कथाकार रांगेय राघव ने नौवीं-दसवीं सदी में साधनारत गुरु गोरखनाथ को 'धूनी का धुआँ', तेरहवीं सदी के चर्पटनाथ को 'जब आवेगी कालघटा' और चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी के निर्भीक योगियों को 'लखिमा की आँखें' में प्रस्तुत किया है।

डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने नौवीं-दसवीं सदी के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ तथा गुरु गोरखनाथ- दोनों को 'जाग

*त्रिपाठी भवन, राजेन्द्रनगर, पथ-१३ ए, पटना-१६

मछन्दर गोरख आया' में चित्रित कर जनजीवन में व्याप्त कहावत के अर्थ को स्पष्ट कर दिया है।

डॉ. शिव प्रसाद सिंह ने १३वीं-१४वीं सदी से सम्बद्ध महाकाव्यात्मक उपन्यास 'दिल्ली दूर है' में नायक आनन्द बाशेक के माध्यम से सूफी सीदी मौला और बाबा फरीद के साथ नाथपंथी रावलपीर की सांस्कृतिक ऐक्यसाधना को वर्णित किया है। चित्तौड़ के राजवंश की स्थापना के मूल में नाथयोगी के योगदान के अर्द्धज्ञात इतिहास की झलक मिल जाती है। आज 'रावलपिण्डी' नाम शेष है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तेरहवीं सदी से सम्बद्ध उपन्यास 'चारुचन्द्रलेख' में नागनाथ और विद्याधर- यह दोनों की द्विविध साधना को चित्रित कर दिया है।

शत्रुघ्न प्रसाद ने १२वीं सदी के मगध के बौद्ध पाल वंश के राजकुमार महेन्द्र पाल देव को बख्तियार खिलजी के आक्रमण से उदन्तपुरी की रक्षा के लिए पाटलिपुत्र के मार्ग में गंगा तट पर नाथ योगी से प्रेरणा दिलवायी है। १५वीं सदी से सम्बद्ध 'सुनो भाई साधो' में कबीरदास के युग में नाथपंथ के प्रभाव को दिखाया है।

भारतीय इतिहास के तुर्क-मुगल आक्रमण, फतह और हुकूमत की रोमांचकारी घटनाओं पर लघु उपन्यास शृंखला के उपन्यासकार रांगेय राघव ने मार्क्सवादी प्रतिबद्धता का त्याग कर प्रगतिशील भारतीयता की दृष्टि को अपनाया है। इसलिए इन उपन्यासों में भारतीय जीवन का यथार्थ साकार हो गया है। इसी दृष्टि से सन् १९५९ ई. में उन्होंने 'धूनी का धुआँ' लिखा है। 'धूनी का धुआँ' योग साधक के तपोमय जीवन का प्रतीक है। इसमें गुरु गोरखनाथ के जीवन के तीनों महत्त्वपूर्ण प्रसंगों के आधार पर उपन्यासकार ने उनके तेजस्वी एवं क्रान्तिकारी व्यक्तित्व को आकलित कर दिया है। उन्होंने भूमिका में लिखा है- "भारत के भविष्य में संभवतः संसार को पथ दिखाने वाली ज्योति उदय होगी, जो रूस के अनुभवों की अच्छाइयाँ लेगी, अपनी परम्परा से मानवतावाद को लेगी और देशी योग में निहित मानव जाति की अपार शक्ति को। और नये समाज, संसार और व्यक्ति का उदय होगा जिससे समाज के विकास के साथ व्यक्ति घुटेगा नहीं, विकास करेगा।"

उपन्यासकार ने अपने उपन्यास में दिखाया है कि गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) नाथपंथी साधना के पहले बौद्ध अनंगवज्र थे। वे बौद्ध वज्रयान-तंत्रयान साधना के पतनशील रूप से क्षुब्ध हो गये थे। वे पंचमकार कामपरकता से विद्रोह कर नाथ-पंथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के पास आ गये। वे अनंगवज्र से गोरक्षनाथ हो गये। उन्होंने हठयोग अपनाया। व्यष्टि और समष्टि के जीवन में ब्रह्मचर्य एवं योग से नया तेज जगाया। साथ ही उन्होंने सिन्ध प्रदेश में विदेशी अरबों के आधिपत्य के बाद राजस्थान की ओर उन्हें बढ़ते देखा। इधर गुरु मत्स्येन्द्रनाथ असम की ओर चले गये थे। अतः वे असम के स्त्रीप्रधान क्षेत्र के कामपरक केन्द्र में पहुँच गये। उन्हें पता लग गया कि गुरु मत्स्येन्द्रनाथ कामपरक साधना में लीन हैं। उन्होंने मृदंग की थाप पर गुरु को सावधान किया। और फिर अरब आक्रमण के विरुद्ध संपूर्ण पश्चिम भारत में जागरण का शंखनाद-शृंगीनाद किया।

रांगेय राघव ने अरब-तुर्कों के आक्रमण को साम्राज्यवादी आक्रमण माना है। उनकी सांस्कृतिक चेतना ने राष्ट्रबोध का रूप ग्रहण कर लिया है। यह सांस्कृतिक राष्ट्रबोध इस लघु उपन्यास शृंखला का प्राणतत्त्व बन गया है। इस रूप में भारतीय इतिहास के एक सांस्कृतिक क्रांतिकारी साधक की साधना का सच सामने आ गया है।

डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने मार्क्सवादी प्रतिबद्धता से मुक्त होकर 'जाग मछन्दर गोरख आया' का लेखन किया है। उन्होंने भूमिका में लिखा है- "मत्स्येन्द्रनाथ ही उपन्यास के केन्द्रीय पात्र हैं, नायक भी कह सकते हैं। उनका विरोधी पक्ष प्रस्तुत करने के लिए गोरक्षनाथ हैं, अतः उनको कम स्थान दिया गया है ताकि मत्स्येन्द्र की साधना को पूरे रंगरोगन के साथ पेश करने से गोरक्ष के हस्तक्षेप की आवश्यकता महसूस हो। तथापि गोरख

के पक्ष की साधना, दर्शन और तर्क की भी प्रस्तुति आवश्यक थी अन्यथा दोनों पक्षों का रूप खड़ा नहीं होता और कला की दृष्टि से भी न्यूनता-सी रहती; अतः गोरक्ष के व्यक्तित्व और भूमिका को पर्याप्त मात्रा में उभारा गया है।

दूसरा आयाम इतिहास का है। डॉ. गोपीनाथ शर्मा-प्रसिद्ध राजस्थान इतिहासविद् के नवीनतम इतिहास (राजस्थान का इतिहास) को पढ़ते समय मुझे आठवीं शताब्दी के अन्त और नौवीं शताब्दी के प्रारम्भ में राजस्थान के शासक समुदाय के द्वारा अरब आक्रमणकारियों के प्रतिरोध के विषय में नये तथ्य मिले। बस, इतना करना था कि गोरक्ष को मैं एकता-प्रेरक के रूप में चित्रित कर देता।"

डॉ. उपाध्याय ने अपने उपन्यास में बताया है कि मछली के चंचल स्वभाव के समान जल में छिपकर गुरु से योग का रहस्य समझने वाले का नाम मत्स्येन्द्रनाथ हो गया था। मत्स्येन्द्रनाथ ने नर्मदा तट पर धीवर कन्या (मूलतः राजकन्या) नर्मदा के साथ वामा साधना आरम्भ की। जाबालपुर (जबलपुर) में यह साधना आगे बढ़ी। स्त्रियाँ आकृष्ट हुईं। उन पर आरोप लगा। वे अपनी विशिष्ट शक्ति से आरोप मुक्त हुए। उधर उदयपुर की पहाड़ी पर गोरखनाथ के नेतृत्व में योगियों ने अरबों के आक्रमण के प्रति अपनी चिंता व्यक्त की। गुरु गोरखनाथ ने योग साधना और देश रक्षा- दोनों का संदेश दिया। उनकी दृष्टि में युद्ध भी योग है। उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ ने गोरखनाथ के हठयोग में विराग मानकर अपनी योगिनी कौलसाधना में जीवन के मूलराग को सही घोषित किया। और वे नर्मदा के साथ असम के स्त्रीराज्य के लिए चल पड़े।

उपन्यासकार ने उपन्यास के मध्य में गया के क्षेत्र में शाक्त कापालिक कालघंट से चमत्कारपूर्ण संघर्ष का रोचक वर्णन किया है। वहाँ तांत्रिक कालघंट और योगी मत्स्येन्द्र का मुकाबला हुआ है। मत्स्येन्द्रनाथ विजयी हुए। वे नर्मदा के साथ राजवधू प्रियम्वदा को भी लेकर कामरूप पहुँच गये।

इधर रमणवज्र से गोरखनाथ बनकर मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य ने उदयपुर क्षेत्र के सभी क्षत्रियों तथा मीणा वनवासियों के आपसी विरोध को दूर किया। और प्रत्येक घर से एक-एक नवयुवक को योगी सेना में आने का आह्वान किया जिससे विदेशी आक्रमणकारियों से संघर्ष हो सके। यह उनकी समष्टि चेतना और राष्ट्र चेतना का परिचायक है। पर गुरु मत्स्येन्द्रनाथ तो दूर चले गये थे। उनकी उपस्थिति आवश्यक थी। अतः वे स्त्रीवेश में अन्य के साथ कामरूप के कदलीवन में जा पहुँचे। वहाँ गुरु मत्स्येन्द्र ललिता के साथ वामा साधना में लीन थे। गोरखनाथ ने अपने गीत से गुरु को सावधान किया। 'जाग मछन्दर गोरख आया' नामक गीत गूँज उठा। सभी देश रक्षा के लिए पंचनद की ओर चल पड़े।

डॉ. उपाध्याय ने पहले गया की शाक्त कापालिक साधना और फिर कामरूप की वामा साधना का विस्तृत वर्णन कर हमें विस्मय विमुग्ध कर दिया है। उपन्यासकार विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने उपन्यास के अठारहवें अध्याय में गुरु गोरखनाथ के सांस्कृतिक और राष्ट्रीय अवदान को उपस्थित किया है। वे लिखते हैं- "गुरु गोरखनाथ ने महाराष्ट्र से नेपाल तक और पुष्कलावती (पेशावर) से अंग-बंग तक वाममार्गियों को उखाड़ा, समाज में भेदभाव, बाह्याचार, आडम्बर, पांडित्याभिमान और पदसोपान क्रमवाली सामाजिक संरचना और जाति-पाँति के आग्रहों के विरुद्ध एक चेतना फैलाई और साधना में आंतरिक तथा कठोर अनुशासन का चमत्कारी आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने आक्रान्ताओं-आततायियों के विरुद्ध जनयोग को सफल करने के लिए नाथानुशासन को कई अखाड़ों में बाँटा।"

उपन्यास में आये चिंतनकण से नाथपंथ का स्वरूप सामने आ जाता है। (क) गोरक्ष ने सृष्टि रहस्य को नादघोष में पाया। प्रपञ्च के मूल में नाद है। नाद ॐकार रूप है। अतः ॐ से सारा जगत् बना है। (ख)

मत्स्येन्द्रनाथ ने कहा है- "योग में भेदभाव नहीं होता" -अध्याय १३। यहाँ द्वैत नहीं, जाति नहीं, ऊँच-नीच, छुआछूत नहीं- यहाँ तक कि जड़-चेतन भी नहीं। सब शिवमय है।" -अध्याय २. (ग) गोरक्ष ने गजनी में पहुँचकर एक मुल्ला से कहा- "हम योगी हैं और हम ना हिन्दू ना मुसलमान का नारा देते हैं। योग किसी सम्प्रदाय का नाम नहीं, यह कोई मजहब नहीं, यह तो शरीर की साधना है। चेतना का ऊर्ध्व विकास है। . ....हम भी एक ईश्वर को मानते हैं जो निराकार है।" -अध्याय १३। (घ) गुरु गोरक्ष के योगपरक राष्ट्रभाव की हम अनुभूति करें- "मैं जम्मू द्वीप की कल्पना एक सम्पूर्ण हठयोगी के रूप में करता हूँ; दादा गुरु! इस महायोगी का शीश कश्मीर है, दाहिने हाथ का कमण्डल, माला और भुजा में पड़ी शृंगी अंग-बंग-उड्डीयमान हैं। बायें हाथ में त्रिशूल, उसके ऊपर स्थित डमरू और असि है, अगल-बगल परशु, भुजाली और धनुष बाण है, यही तो गुर्जर, सिंध, राजपुत्रस्थान, पंचनद और मेरी जन्मभूमि पश्चिमोत्तर के प्रदेश हैं...।"-अध्याय-५।

ग्यारहवीं सदी के कथानक पर आधारित 'नीला चाँद' में उपन्यासकार डॉ. शिव प्रसाद सिंह ने शील और शक्ति से सम्पन्न नायक कीर्ति वर्मा को प्रस्तुत किया है। यह उपन्यास गजनवी के आक्रमण के बाद के भारत के पूर्वी एवं मध्य भारत के राजाओं के आपसी संघर्ष से संबद्ध है। इसमें नायक कीर्ति वर्मा ने विंध्याचल की सिद्धयोगिनी शीलभद्रा माँ से आशीष पायी है। बंगीय योगिनी देवी की उपासिका हैं। वैष्णवी भी हैं। पर ये योग साधिका हैं। इसी रूप में कीर्ति वर्मा का मार्गदर्शन करती हैं।

शत्रुघ्न प्रसाद लिखित 'सिद्धियों के खंडहर' में बारहवीं सदी के मगध (उदन्तपुरी) के अन्तिम बौद्ध राजा गोविन्द पाल देव के समय बख्तियार खिलजी के आक्रमण, युद्ध और पराजय की मर्मान्तक गाथा है। बौद्ध राजा को बौद्ध सिद्धों की सिद्धियों पर विश्वास था; सैन्य संगठन कमजोर था। परन्तु राजकुमार महेन्द्र सैन्य संगठन चाहता था। इसी स्थिति में महेन्द्र पाल का पाटलिपुत्र में आना हुआ। मार्ग में विकटनाथपुर में नाथयोगी का साधना केन्द्र था। महेन्द्रनाथ योगी के पास पहुँचा। नाथयोगी ने मगध की दुःस्थिति पर कहा- "कुमार महेन्द्र! तंत्रसाधना में तन्मय होना सो जाना ही कहलायेगा। ये सहजयानी सिद्ध महामुद्रा से सिद्धियाँ प्राप्त कर रहे हैं। वासना की गाढ़ी नींद में सो रहे हैं। फलतः मगध में न चरित्र रह गया है और न देश की चिन्ता है। सेना की शक्ति भी दुर्बल है। .....पश्चिम भारत में सेना थी। शौर्य था तो भी वे अपने को बचा नहीं सके।"

"कुमार! गुरु गोरखनाथ ने ब्रह्मचर्य, योग और शिव को लेकर धर्म को पवित्र तथा तेजस्वी बनाने का प्रयत्न किया था। उसी पवित्रता तथा तेजस्विता को लेकर हमेन देश-धर्म के लिए संघर्ष किया है।....आप चरित्र और सैन्य शक्ति के द्वारा सफल संघर्ष कर सकते हैं।"-अध्याय ३।

'सिद्धियों के खंडहर' में बारहवीं सदी के पूर्वी भारत का मर्मान्तक यथार्थ हमारे सामने आ गया है। पर नाथयोगी का संदेश गूँजता रहता है।

रांगेय राघव ने १३वीं सदी की नाथ परम्परा के चर्पटनाथ की साधना तथा उनके संघर्ष को 'जब आवेगी कालघटा' में प्रस्तुत किया है। उपन्यासकार के अनुसार चर्पटनाथ अपने पंथ के आडम्बर को देख क्षुब्ध हो उठे थे। वे अपने पंथ के बाह्याडम्बर से विद्रोह कर फक्कड़ बनकर भटकने लगे थे। उधर तुर्क सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी का अत्याचार बढ़ रहा था। उसकी निरंकुश सत्ता का अट्टहास सुनायी पड़ रहा था। चित्तौड़ में रानी पद्मिनी का जौहर हो चुका था। इसी स्थिति में चर्पटनाथ ने अपने पंथ के महंतों के विरोध के बावजूद खिलजी के अत्याचार के खिलाफ योगीसमूह का सैन्यीकरण किया। अपने पंथ से बहिष्कृत और तुर्क सुल्तान से प्रताड़ित चर्पटनाथ ने पंथ को शुद्ध सात्त्विक बनाते हुए तुर्कों का सामना किया। तुर्कों ने गुरु गोरखनाथ के मन्दिर पर आक्रमण किया। युद्ध में योगियों ने रक्ततर्पण किया। घायल चर्पटनाथ मन्दिर की रक्षा करने में

असमर्थ हुए। पर वे भीतर से टूट नहीं सके। पुनः गोरखनाथ मन्दिर का नवनिर्माण हुआ। महंत का दबाव समाप्त हुआ। चर्पटनाथ की साधना सफल हुई।

इस प्रकार रांगेय राघव ने गुरु गोरखनाथ और बाद के चर्पटनाथ की शुद्ध सात्त्विक साधना तथा तुर्कों से देश रक्षार्थ युद्ध-जीवन के दोनों पक्षों का प्रभावी वर्णन कर नये भारत के लिए सम्यक् जीवन दर्शन प्रस्तुत किया है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'चारुचन्द्रलेख' में तेरहवीं सदी के तुर्कों के आक्रमण के बढ़ते संकट को दिखाते हुए उस युग के द्वन्द्व का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। अवन्तिका की रानी चन्द्रलेखा पद्मिनी नारी थीं। इनके सहयोग से राजा सातवाहन चक्रवर्ती हो सकते थे। अतः रानी चन्द्रलेखा देशरक्षा तथा प्रजा-कल्याण के लिए योगी नागनाथ के सहयोग से कोटिवेधी रस की साधना में संलग्न हो गयी। राजा रानी की इस स्थिति से द्वन्द्वग्रस्त हो गये। और वे मैना की ओर आकृष्ट हुए। इधर नर समाज संघर्ष के लिए सन्नद्ध हो गया। तुर्कों की फौज बढ़ती रही। उसने उदन्तपुरी को जीत लिया। लेकिन तुर्क सिपहसालार शाह अपने सुल्तान से नाराज हो गया। वह अक्षोभ्य भैरव की अपहृता पुत्री भद्रकाली का प्रेमी बन गया। राजा की सेना ने मैना के नेतृत्व में उसे घेर लिया। शाह को भद्रकाली का अपहरणकर्ता समझकर प्रहार कर दिया। भद्रकाली हाहाकार कर उठी। अतः राजा सातवाहन और मैना ने संग्राम को रोक दिया। पर इस स्वातंत्र्य संग्राम का रुक जाना इतिहासविरुद्ध और अस्वाभाविक है। सिद्धि के लिए साधना उस युग की विशेषता है।

डॉ. शिव प्रसाद सिंह ने तेरहवीं सदी के बहुआयामी संघर्ष को अपने महाकाव्यात्मक उपन्यास-'कुहरे में युद्ध' और 'दिल्ली दूर है'- दो खंडों में प्रस्तुत किया है। इसमें जुझौती (जैजाक मुक्ति) के स्वातंत्र्य संघर्ष की भीषणता तथा सांस्कृतिक ऐक्य-साधना की गंभीरता- दोनों का प्रभावी वर्णन है। इसमें आज के लिए महत्त्वपूर्ण संकेत है। उपन्यासकार ने अतीत और वर्तमान का गहन अध्ययन-मनन कर पूर्णतः प्रगतिशील राष्ट्रीय दृष्टि का उपन्यास लिखा है जिसकी आलोचना भी हुई है। राजा त्रैलोक्यमल्ल देव और उनका नया सेनापति आनन्द बाशेक- मुख्यतः आनन्द के जीवनव्यापी संघर्ष को बुन्देलखंड से लेकर दिल्ली और पंजाब तक दिखाया है। आनन्द नयी रणनीति से 'कुहरे में युद्ध' में जीत गया। पर एक भूल से वाग्दत्ता देविका का अपहरण तुर्क सिपहसालार द्वारा हो गया। आनन्द दिल्ली पहुँचा। देविका अपने को तुर्क बीवी मानकर पास नहीं आ सकी। आनन्द ने तुर्क मल्लिका रजिया सुल्तान को सहयोग देकर देश को हिन्दू प्रजा को अत्याचार से बचाने का प्रयत्न किया। असफल हुआ, और तब आनन्द सूफी सीदी मौला के साथ नाथ योगी रावलपीर के पास पहुँचा। चिंतन के साथ सांस्कृतिक ऐक्य साधना आरम्भ हुई। तुर्क सुल्तान ने इसे भी ठुकरा दिया। आनन्द हताश हो गया। हताशा में मृत्यु बड़ी मार्मिक है।

डॉ. शिव प्रसाद सिंह ने ऐक्य साधना के मध्य नाथपंथी रावलपीर और चित्तौड़ राजवंश की कहानी उपस्थित की है। अतः यह उपन्यास नाथपंथ के महत्त्वपूर्ण अवदान को अंकित कर देता है।

'दिल्ली दूर है' के अध्याय २५ में लेखक ने वर्णन किया है- ''चित्तौड़ की पहाड़ी पर एक शैव संन्यासी रहते थे। बप्पा नामक एक गरीब राजपूत चरवाहा गाय चराता था। एक गाय एक स्थान पर रुककर थन से दूध गिरा देती थी। हारीतराशि ने बताया कि वहाँ पर शिवजी की पिंडी है। खुदाई में पिंडी निकल आयी। योगी ने चरवाहे से कुछ माँगने को कहा। बप्पा ने एकलिंग महादेव के राज्य का सेवक बनना चाहा। संन्यासी ने कह दिया कि चित्रकूट यानी चित्तौड़ में इस राज्य की राजधानी होगी। वही बप्पा रावल उस राजवंश का प्रथम शासक बना। (पृष्ठ ३६७)। गुरु गोरखनाथ ने रावलों से कहा था कि हर पीढ़ी का एक लड़का नाथयोगी बनना

चाहिए। वे ही रावल पीर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

आनन्द बाशेक, सोमन बारी, बाबा फरीद और सूफी सीदी मौला के साथ रावलपीर के पास पहुँचा। वे आनन्द की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने चारों को अतिथि देवता मानकर स्वागत किया। सीदी मौला इस भारतीय धारणा एवं सत्कार पर मुग्ध हो गये।

रावलपीर ने उनके समक्ष गीता दर्शन की चर्चा की कि जन के न्याय और अधिकार के लिए लड़ना धर्म है। उन्हें ज्ञात था कि पारसियों पर बहुत अत्याचार हुआ है। तभी तो सीदी मौला पारसी सूफी हो गये हैं। पारसी तो हिन्दुओं के भाई-बन्धु रहे हैं। यदि बाबा फरीद के लिए सारी दुनिया में सिर्फ रब है तो रावलपीर की दृष्टि में यह दुनिया शिव-शक्ति की लीला है। (पृष्ठ ३७३)

आनन्द ने रावलपीर के नाथ सिद्धान्त को रखा कि योगी समूह शिवजी की बारात है। योगी तीन तरीके -पवन, नाद और विंदु से रब की पहचान करता है। तीनों ईश्वर की देन हैं। पवन (साँस) से साधना करता है। नाद (ॐकार) द्वारा उसे पुकारता है। विंदु (वीर्य) की रक्षा कर शक्ति अर्जित करता है। अतः इन्हें ईश में लगाना है।

आनन्द बाशेक के अनुसार रावलपीर के गुरु गोरखनाथ ने ज्ञान क्षेत्र तथा कर्म क्षेत्र- दोनों को जोड़कर शिवतत्त्व-शिवलोक को जान लिया था। गुरु गोरखनाथ महायोगी थे। सबसे बड़े नेता भी थे। अतः उन्होंने हमारे धर्म के भीतर के मुर्दा हिस्सों को बेरहमी से काट कर फेंक दिया। उन्होंने छुआछूत, छोटा-बड़ा, जात-कुजात- सबको दकियानूसी बताया और उसे लात मारकर तोड़ दिया था। (पृष्ठ ३७७)

रावलपीर ने आनन्द को बताया कि शक्रद्वार-सकरदर्रा आततायी मंगोलों के बर्बर उपानह से मसल कर बालू का टीला बन गया। वहीं स्वात नदी की घाटी है। इसी में अश्वकों के गणतंत्र की राजधानी वरणा स्थित है। ....."क्या तुम्हारे समाज में लड़ने वाले ऐसे हिन्दवासी हैं? अगर नहीं हैं तो अपनी फूट और अनेकता को दार्शनिक आवरण में मत लपेटो। यह आगे और भी संकटपूर्ण घड़ियाँ आमंत्रित करेगा, पुत्र!" आनन्द द्वारा तुर्क आक्रमण और तुर्क शासन की भयानकता के वर्णन करने पर रावलपीर ने कहा- "हमें अभी भी अपनी धरती माँ पर विश्वास है। जो उसे एक बार माँ कहता है, उसकी नदियों को धात्री मानता है, उसके पर्वतों और वृक्षों को पिता कहता है वह बहुत समय तक इनसे खिलवाड़ नहीं कर सकेगा।" (पृष्ठ ३८२)

रावलपीर ने आक्रमण और अत्याचार के परिणाम के बारे में कहा है- "बर्बरता जब दो जातियों के संघर्ष में खुलकर ताण्डव नृत्य करती है तब प्रायः मृदु और उदार संस्कारों वाली उच्च जाति पराजित होती है। तुर्कों की विजय के पीछे इस अमानवीय बर्बरता का भी हाथ रहा है। भारत की पराजय कौम की पराजय नहीं, एक परिष्कृत मानवता की पराजय है।"(पृष्ठ ३८३)

रावलपीर मानवतापूर्ण हिन्दू की विजय का रहस्य बताते हैं- "तुम्हें अगर एक संतुलित मानवता चाहिए तो तुम्हें अपनी शुभ्रता, अपनी मृदुता की, अपनी कोमलता की रक्षा करनी पड़ेगी और वह आधार देती हैं किसी दधीचि की हड्डियाँ। इसी वज्र से आसुर शक्ति खण्डित होती है। ..... जब तक यह समन्वय नहीं होता, भारतभूमि स्वतंत्र नहीं रह पायेगी। तुमने सरस्वती को तो जगाया, तुमने लक्ष्मी की कृपा भी पायी, पर तुम्हारे भीतर की महाकाली सो गयी।.....रक्तबीजों को काटना और रक्त को पीते जाना बहुत दुस्तर कार्य होता है। आनन्द! इसके लिए अहिंसा की माला जपना समस्या का गलत समाधान कहलाता है।.... नम्र बनो अच्छा है; पर अपनी रक्षा में समर्थ बनो ज्यादा जरूरी है।" (अध्याय २५, पृष्ठ ३८५)

उपन्यासकार ने गुरु गोरखनाथ और रावलपीर के द्वारा भारत की दुर्बलता और सबलता, दोनों को स्पष्ट

करते हुए वर्तमान के लिए बहुत कुछ कह दिया है।

रांगेय राघव ने १४वीं सदी की विषम स्थिति में मिथिला के द्वन्द्व, संघर्ष और आस्था को 'लखिमा की आँखों' में उपन्यस्त किया है। विद्यापति की मृत्यु के बाद उनके प्रपौत्र के समय एक बंगीय ब्राह्मण अपने आचार्य से आज्ञा लेकर विद्यापति के पदों को लाने के लिए आया। उसे ज्ञात था कि नालंदा और मिथिला के आसपास तुर्कों का अत्याचार चल रहा है। वह किसी प्रकार विसपी पहुँच गया। पदों की प्रतिलिपि कर लौटने लगा। नाव नदी को पार करने लगी। यात्री की चेतना विद्यापति के युग में पहुँच गयी। कवि विद्यापति के गीतों के माधुर्य में मत्त मिथिला की झलक पाने लगा। तुर्कों ने नाव को घेर लिया। प्रतिलिपि को मिट्टी में फेंककर अट्टहास किया। परन्तु एक योगी ने शंख फूँककर योगियों को एकत्र कर लिया। उसने बंगीय यात्री की रक्षा की। उसे कंधे पर बिठाकर वह गा उठा- 'हम कभी न मरेंगे, न समाप्त होंगे। अक्षय और अमर हैं।'

शत्रुघ्न प्रसाद ने 'सुनो भाई साधो' नामक उपन्यास में कबीर युग के बुनकर समाज में नाथ-पंथ के प्रभाव का मार्मिक वर्णन किया है। अध्याय १५ में उस स्थिति की अनुभूति करें- ''कभी सब तो एक ही थे। सभी कोरी कहलाते थे। कुछ नाथपंथी थे और कुछ सहजयानी। एक शैव थे।....मेरे दादा गांगू तो नाथपंथी ही थे। दीनू चाचा ने कुल-खानदान की कहानी बतायी थी। एक बार एक नाथ जोगी 'अलख निरंजन' बोलता हुआ बस्ती में आ गया। सामने के पेड़ के नीचे खड़ा हो गया। नाथपंथी कोरी घर-घर से निकलकर आ गये। सहजयानी भी थोड़ी दूरी पर खड़े हो गये। जोगी ने 'अलख निरंजन' की आवाज लगायी। सबने आसन लगाने की विनती की। जोगी वहीं बैठ गया।.....वह बोल उठा- ''वह निरंजन अलख है। पर उसे अपने भीतर देख सकते हो। शरीर को साधना पड़ेगा। फिर अलख को लख लो। अनहद नाद सुन लो। कुछ भी पा लो। यह सब तुम्हारे हाथ में है।''

जोगी ने बबूल के काँटे से अपनी जीभ को बींध दिया। आह तक नहीं की। सबकी आँखें टँगी रह गयीं। जोगी की आँखों में चमक दीख पड़ी।....जोगी की अधखुली आँखें सबको देख रही थीं। पल-पल बीत रहा था। आँखें बन्द हो गयीं। और सबने 'अलख निरंजन' की आवाज सुनी।

जोगी ने काँटे को जीभ से निकाल लिया। और कहा- ''कुछ पाने के लिए जोग..साधना..मेरे साथ।'' दादा जोगी के साथ हो गये। कोई रोक नहीं सका।...बाद में वे लौट आये।(पृ. ५६-५७)

कबीर में प्रतीक, उपमान और बिम्ब या तो नाथसाधना से सम्बद्ध है या बुनकर एवं कृषि जीवन से। और मिथक तथा कथासूत्र हिन्दू पुराणों से। सूरदास के ऊधव पर भी नाथसाधना का प्रभाव स्पष्ट है।

इस प्रकार हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में गुरु मत्स्येन्द्रनाथ, गुरु गोरखनाथ, रावलपीर और चर्पटनाथ के तेजस्वी व्यक्तित्व की साधना एवं समर्पण को प्रभावी ढंग से चित्रित किया है। उनका चिंतन आज के भारत के लिए महत्त्वपूर्ण है। यह ऐतिहासिक उपन्यास का उल्लेखनीय अवदान है।

राष्ट्रीय संगोष्ठी : २८-३० अक्टूबर, २०१०

निःशुल्क सिलाई कढ़ाई केन्द्र के उद्घाटन समारोह को सम्बोधित करते पूज्य योगी आदित्यनाथ

महाविद्यालय एवं अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के संयुक्त तत्वावधान में **'नाथ पंथ एवं भक्ति आन्दोलन'** विषय पर त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज के सान्निध्य में आयोजित इस संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र के मुख्य अतिथि पूज्य सन्त श्री विजय कौशल जी महाराज रहे तथा अध्यक्षता गोरक्षपीठ के उत्तराधिकारी एवं महाविद्यालय के प्रबन्धक पूज्य योगी आदित्यनाथ जी महाराज ने की। विषय की प्रस्तावना अभाइसंयो के राष्ट्रीय अध्यक्ष प्रो. शिवाजी सिंह ने किया। विशिष्ट अतिथि के रूप में दिव्य प्रेम सेवा मिशन के अध्यक्ष श्री आशीष जी उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के पूर्व अध्यक्ष डॉ. कन्हैया सिंह ने किया।

राष्ट्रीय संगोष्ठी का उद्घाटन समारोह

संगोष्ठी में कुल २६ शोध पत्रों का वाचन हुआ। तकनीकी सत्रों में

प्रो. वागीश शुक्ल, प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी, डॉ. उदय प्रताप सिंह, डॉ. कुवँर बहादुर कौशिक, डॉ. वेद प्रकाश पाण्डेय, डॉ. रंजीत सिंह, श्री वासुदेवाचार्य, डॉ. चन्द्रमौलि त्रिपाठी, डॉ. विमलेश के शोध-पत्र विशेश रूप से चर्चित रहे।

त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के समापन समारोह के मुख्य अतिथि पूर्व केन्द्रीय गृह राज्यमंत्री स्वामी चिन्मयानन्द जी महाराज थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता गोरक्षपीठ के उत्तराधिकारी एवं सदर सांसद योगी आदित्यनाथ जी महाराज ने की। इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि दिल्ली आई.आई.टी. के प्रो. वागीश शुक्ल एवं डॉ. मयाशंकर सिंह थे।

राष्ट्रीय संगोष्ठी का समापन समारोह

दैनिक जागरण

गोरखपुर, 28 अक्टूबर, 2010

शुभ कार्यों का परिणाम न देखें, प्रयास करें

विजय कौशल ने भक्तों से भजन सुने , शांत की जिज्ञासाएं

कथा वाचक संत विजय कौशल का स्वागत करते लोग। जागरण

महानगर संवाददाता, गोरखपुर : संत विजय कौशल महाराज बुधवार को वक्ता नहीं श्रोता की भूमिका में दिखे। उन्होंने भक्तों से भजन व उनके भाव सुने और प्रश्नों के उत्तर दे लोगों की जिज्ञासाएं शांत की।

देश में हजारों धर्मग्रंथ, जगह-जगह कथा प्रवचन, यज्ञ, हवन व धर्म कार्य के बावजूद समाज में बढ़ रही कुरीतियों संबंधी सवाल के जवाब में उन्होंने कहा- शुभ कार्यों के परिणाम नहीं देखे जाते। शुभकार्य के लिए प्रयास किये जाते हैं। फिर भी धार्मिक आयोजनों और कथा का परिणाम यही है कि भागमभाग व आपाधापी के माहौल में भी लोग भगवत कथा व प्रवचन आदि सुनने जा रहे हैं। जिस प्रकार हम घर की गंदगी साफ करते हैं उसी प्रकार मन के विकार दूर करने के लिए कीर्तन, भजन, कथा-प्रवचन करते रहना चाहिए। बेतियाहाता स्थित डा. उमा सराफ के आवास पर विजय कौशल से इस प्रकार के भाव सुन भक्तजन गदगद हो गये। इसी बीच एक अन्य श्रद्धालु ने पूछ दिया मन की भगवत प्राप्ति व एकाग्रता के लिए क्या करें? विजय कौशल ने कहा- चंचलता मन का स्वभाव है। जिन्हें भगवान का साक्षात्कार नहीं हुआ वही मन भगवान में लगाने की बात करते हैं। मन का सम्बंध एकाग्रता से नहीं क्रिया से है। जिस प्रकार आप भोजन नित्य करते हैं पर यह जरूरी नहीं कि हर दिन मन से करें। मन से भोजन करने पर स्वादिष्ट व अच्छा लगता है पर बेमन से भी हम भोजन करते हैं। जब बिना मन के भोजन हो सकता फिर भजन क्यों नहीं?

इससे पूर्व प्रमोद कुमार खेतान अंकिता दीक्षित, रूपा जालान, आस्था, जूही, श्रद्धा ने संगीतमय भजनों के जरिए सभी को झूमने पर विवश किया। कार्यक्रम में पूर्व कैबिनेट मंत्री एवं भाजपा के प्रदेश उपाध्यक्ष शिवप्रताप शुक्ल, श्याम सुन्दर सराफ, कामेश्वर सिंह, डा. धर्मेन्द्र सिंह, डा. प्रदीप राव, डा. सतीश चन्द्र द्विवेदी, भूपेश जी, विष्णु कांत शुक्ला, निकेत नारायण, सेवक पाण्डेय, राधेश्याम रावत, कनक हरि अग्रवाल आदि मौजूद थे।

भक्तजनों ने किया जोरदार स्वागत

गोरखपुर : संत विजय कौशल के गोरखपुर रेलवे स्टेशन पहुंचने पर भक्तजनों ने गर्मजोशी से स्वागत किया। स्टेशन से काफिला डा. उमा सराफ के आवास पहुंचा जहां उन्होंने सभी को वृंदावन से लाया प्रसाद दिया।

हिन्दुस्तान
गोरखपुर गुरुवार, 28 अक्तूबर 2010 लखनऊ

नाथ पंथ व भक्ति आंदोलन पर मंथन आज से

कार्यालय संवाददाता
गोरखपुर

रामकथा मर्मज्ञ संत विजय कौशल महराज बुधवार को गोरखपुर पहुंचे। संत कौशल गुरुवार को महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़ में आयोजित नाथ पंथ एवं भक्ति आंदोलन पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी का उद्घाटन करेंगे। स्टेशन पर संत को माला पहना कर स्वागत किया गया। इसके बाद उनका काफिला बेतियाहाता के लिए रवाना हो गया। बेतियाहाता में डा. उमा सर्राफ के आवास पर उन्होंने विश्राम किया। स्वागत समारोह एवं सत्संग में डा. प्रदीप राव, फरेन्दा के विधायक बजरंग बहादुर सिंह, कामेश्वर सिंह, डा. धर्मेन्द्र सिंह, इंद्रजीत सिंह, राधेश्याम सिंह, अनिल मिश्र, विश्वजितांशु सिंह व आशू उपस्थित थे।

अमर उजाला कॉम्पैक्ट
गोरखपुर, वृहस्पतिवार, 28 अक्तूबर 2010

कौशल जी के लिए उमड़े भक्त

गोरखपुर। जंगल धूसड़ महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय में 'नाथ पंथ एवं भक्ति आंदोलन' संगोष्ठी का उद्घाटन करने विजय कौशल जी महराज बुधवार को वैशाली एक्सप्रेस से गोरखपुर पहुंचे। यहां पहुंचने पर भक्तों ने रेलवे स्टेशन पर उनका जोरदार स्वागत किया। महराज ने भक्तों का अभिवादन स्वीकार कर उन्हें आशीर्वाद दिया।

कौशल जी महराज

जंगले धूसड़ में विजय कौशल जी महराज द्वारा 28 अक्तूबर को संगोष्ठी 9.30 बजे उद्घाटन करेंगे एवं इसी दिन वे कुशीनगर के धनीपट्ठी गांव में रामकथा के लिए रवाना हो जाएंगे। कौशल जी महराज का काफिला डा. उमा सर्राफ के आवास पर पहुंचा। वहां पर उपस्थित सभी भक्तों को उन्होंने प्रवचन सुनाया और वृंदावन से लाया हुआ प्रसाद दिया गया।

स्टेशन पर राष्ट्रीय संगोष्ठी के संयोजक डा. प्रदीप राव, विधायक बजरंग बहादुर सिंह, कामेश्वर सिंह, डा. धर्मेन्द्र सिंह, इंद्रजीत सिंह, राधेश्याम सिंह, अनिल मिश्रा, विश्वजितांशु सिंह, शार्दूल, अजय गुप्ता, राधेश्याम रावत, अंशुमान त्रिपाठी, पवन यादव, रंजीत कर्नल, विष्णु शंकर त्रिपाठी, अजय पाण्डेय, सुरेश श्रीवास्तव, चंद्रेश गौतम, चंदन आर्या, रामनाथ शर्मा, प्रिंस श्रीवास्तव, अनिल ओझा, राकेश जायसवाल, आदि उपस्थित थे।

'नाथ पंथ एवं भक्ति आंदोलन' संगोष्ठी का उद्घाटन करने गोरखपुर पहुंचे विजय कौशल जी महाराज ने बुधवार को उमा सर्राफ के आवास पर कथा सुनाई। इस दौरान उपस्थित श्रोता भक्तिभाव में डूबे नजर आए।

जंगल धूसड़ में विद्वानों का जमावड़ा आज से

गोरखपुर। महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़ में नाथ पंथ और भक्ति आंदोलन विषय पर 28 से 30 अक्तूबर को राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया है। प्राचार्य डा. प्रदीप राव ने बताया तीन दिवसीय संगोष्ठी को विजय कौशल महाराज, प्रो. शिवाजी सिंह, डा. कन्हैया सिंह, प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी, प्रो. वागीश शुक्ल आदि संबोधित करेंगे। 28 को संगोष्ठी का उद्घाटन सुबह साढ़े नौ बजे गोरखनाथ मंदिर में होगा। जिसके मुख्य अतिथि संत विजय कौशल महाराज होंगे और अध्यक्षता योगी आदित्यनाथ करेंगे। कार्यक्रम में शिरकत करने विजय कौशल महाराज बुधवार को ही गोरखपुर पहुंच गए हैं।

स्वतंत्र चेतना
गोरखपुर, वृहस्पतिवार, 28 अक्टूबर, 2010

संत विजय कौशल का स्वागत

गोरखपुर। महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़ में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी का उद्घाटन करने संत विजय कौशल महाराज आज वैशाली एक्सप्रेस से गोरखपुर पहुंचे। वे कल गोरखनाथ मंदिर में नाथ पंथ एवं भक्ति आंदोलन विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का उद्घाटन करेंगे। उनके भक्तजनों एवं आयोजकों ने रेलवे स्टेशन पर आज पहुंचकर उनका भव्य स्वागत किया। साधु स्वभाव के धनी कौशल जी महाराज आशीर्वाद प्राप्त करने एवं उनकी झलक पाने को बेताब भक्त उनके स्नेहिल स्पर्श से अभिभूत होते रहे। स्टेशन से उनका काफिला डा. उमा सर्राफ के आवास पर पहुंचा जहां देर शाम सत्संग का आयोजन हुआ। भक्तजन देर रात्रि तक सत्संग का आनन्द लेते रहे और धारा प्रवाह में बहकर प्रभु गुणगान का रसपान करते रहे।

- गोरखनाथ मंदिर में आयोजित नाथ पंथ एवं भक्ति आंदोलन विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी का करेंगे उद्घाटन
- उमा सर्राफ के आवास पर देर शाम बही सत्संग की धारा

ज्ञात हो कि गोरक्षपीठाधीश्वर महंत अवेद्यनाथ के सान्निध्य में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में मुख्य अतिथि संत विजय कौशल है तथा अध्यक्षता गोरक्षपीठ के उत्तराधिकारी एवं महाविद्यालय के प्रबंधक योगी आदित्यनाथ कर रहे है। अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के राष्ट्रीय अध्यक्ष प्रो. शिवाजी सिंह एवं उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के पूर्व अध्यक्ष डा. कन्हैया सिंह का भी यहां अपना उद्बोधन देंगे। सभी भक्तों को वृन्दावन से लाया हुआ प्रसाद अपने हाथ से दिया।

रेलवे स्टेशन पर राष्ट्रीय संगोष्ठी के संयोजक डा. प्रदीप राव, फरेन्दा के विधायक बजरंग बहादुर सिंह, जनसम्पर्क अधिकारी राजेश शुक्ल, कामेश्वर सिंह, डा. धर्मेन्द्र सिंह, इन्द्रजीत सिंह, राधेश्याम सिंह, अनिल मिश्रा, विश्वजितांशु सिंह आशु, शार्दूल शिवांशु, अजय गुप्ता बजरंगी, राधेश्याम रावत, अंशुमान त्रिपाठी, पवन यादव, रंजीत कर्नल एडवोकेट, विष्णुशंकर त्रिपाठी, अजय पाण्डेय, सुरेश श्रीवास्तव, चन्द्रेश गौतम, चन्दन आर्या, रामनाथ शर्मा, प्रिंस श्रीवास्तव, अनिल ओझा, राकेश जायसवाल ने माल्यार्पण कर विजय कौशल का स्वागत किया।

राष्ट्रीय सहारा
गोरखपुर • शुक्रवार • 29 अक्टूबर • 2010

गोरखपुर : गोरखनाथ मंदिर स्थित दिग्विजय नाथ सभागार में राष्ट्रीय संगोष्ठी का शुभारंभ करते संत विजय कौशल जी। साथ में हैं महंत अवेद्यनाथ व सदर सांसद योगी आदित्यनाथ। फोटो : एसएनबी

गोरक्षनाथ पर टिका है भक्तिमार्गी दर्शन

■ नाथ पंथ सनातन जीवनधारा, आदिकाल से प्रवाहित : गोरक्षपीठाधीश्वर

गोरखपुर (एसएनबी)। श्रीराम कथा मर्मज्ञ संत विजय कौशल जी ने गोरक्षनाथ की साधना पद्धतियों को सभी भक्तिमार्गी आचार्यों की साधना का केंद्रबिन्दु बताया है। उन्होंने कहा कि भक्तिमार्गी दर्शन का संपूर्ण भवन गुरु गोरक्षनाथ के सिद्धांतों व दर्शन पर टिका है। भक्ति से यदि गोरक्षनाथ के सूत्र निकाल दिए जाएं तो भक्ति का भवन भरभरा कर गिर जाएगा। गुरु गोरक्षनाथ के बिना भारत का धर्म और दर्शन अधूरा है।

संत विजय कौशल जी गुरुवार को गोरक्षनाथ मंदिर परिसर स्थित दिग्विजयनाथ स्मृति भवन में 'नाथ पंथ और भक्ति आंदोलन' विषय पर आयोजित तीन दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्‌घाटन सत्र को बतौर मुख्य अतिथि संबोधित कर रहे थे। संगोष्ठी का आयोजन महाराणा प्रताप महाविद्यालय जंगल धूसड़ ने किया है। श्री कौशल जी ने कहा कि गोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित साधना पद्धतियों से होकर भक्ति पाखंडपूर्ण व आडंबरमुक्त हो जाती है। उनकी साधना पद्धति जीवन में सहजता, विनम्रता, निरंकारिता का पाठ पढ़ाती है, जो भक्ति के लिए जरूरी गुण है। भगवान शिव को भक्ति का ही अवतार माना गया है। गुरु गोरक्षनाथ भगवान शिव के अवतार हैं। अर्थात भक्ति के साक्षात स्वरूप हैं। उनका सिद्ध मार्ग अहंकार विहीन सहजमार्ग है और जबतक अहंकार नहीं भरेगा तब तक ओंकार मात्यार्पण करने नहीं आएगा। 'हँसिबा, खेलिबा धरिबा ध्यानम' गोरक्षनाथ का सूत्र जीवन के इसी सहज मार्ग का संकेत करता है। गोरक्षपीठाधीश्वर महंत अवेद्यनाथ ने कहा कि नाथपंथ की सनातन जीवनधारा आदि काल से प्रवाहित होती आ रही है। गुरु गोरक्षनाथ धार्मिक-सांस्कृतिक संधि काल की महान यौगिक विभूति थे। ऋग्वेद में 'नाथ' शब्द का प्रयोग सृष्टिकर्ता, त्राता तथा सृष्टि के निमित्त रूप में हुआ है। नाथ योगी संकीर्ण साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को त्यागकर 'शिव' और 'विष्णु' तथा 'हर' व 'हरि' में कोई भेद नहीं मानते थे। ऐतिहासिक दृष्टि से गुरु गोरक्षनाथ का आविर्भाव काल सातवीं से तेरहवीं शताब्दी के बीच ठहरता है। भारत में शंकराचार्य के बाद गोरक्षनाथ जैसा प्रभावशाली और युग प्रवर्तक व्यक्ति दूसरा नहीं हुआ। अध्यक्षता करते हुए गोरक्षपीठ के उत्तराधिकारी सांसद योगी आदित्यनाथ ने कहा कि भारतीय धर्म-संस्कृति साधना पद्धतियों में नाथ पंथ और इसके प्रवर्तक गुरु गोरक्षनाथ व अन्य नाथ सिद्धों का प्रमुख स्थान है। महायोगी गोरक्षनाथ ने योग साधना के सैद्धांतिक पक्ष को व्यावहारिक रूप प्रदान कर जन सामान्य तक पहुंचाया। वह समग्र भारत ही नहीं सीमावर्ती देशों कोअपनी योग्य-विभूति से तथा चरित्र चिंतन एवं व्यवहार में बड़ी गहराई तक प्रभावित करने वाले अग्रगण्य महायोगी थे। धार्मिक मानवता उन्हें साक्षात शिव स्वरूप ही स्वीकार करता है। सच्चा आध्यात्मिक जीवन जीने की प्रेरणा देने वाला महायोगी का जीवन चरित्र प्राचीन काल से ही प्रचलित कथाओं, चमत्कारों, विश्वासों व उनकी रचनाओं के माध्यम से प्राप्त होता है। बतौर मुख्य वक्ता गोरखपुर विवि के प्राचीन इतिहास विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो. शिवाजी सिंह ने कहा कि गोरक्षनाथ के बिना योग और कुंडलिनी शक्ति का ज्ञान अधूरा है। गोरक्षनाथ ने साधारण मानव से शिखर तक सबके कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया। गोरक्षनाथ भक्ति और योग साधना के प्रस्थान बिन्दु हैं। उनके द्वारा प्रवर्तित साधना पद्धतियों पर व्यापक शोध की आवश्यकता है। विशिष्ट अतिथि दिव्य प्रेम सेवा मिशन के अध्यक्ष आशीष जी ने कहा कि भारत अपनी सांस्कृतिक विरासत की रक्षा के लिए सदैव नाथ पंथ का ऋणी रहेगा। संचालन डा. श्रीभगवान सिंह व आभार ज्ञापन डा. कन्हैया सिंह ने किया। इस मौके प्रो. सदानन्द प्रसाद गुप्त, डा. प्रदीप राव, पूर्व प्राचार्य डा. योगेन्द्र सिंह, बालकृष्ण सराफ आदि उपस्थित थे।

राष्ट्रीय संगोष्ठी

- सांस्कृतिक साधना पद्धतियों में नाथपंथ का प्रमुख स्थान : योगी
- गुरु गोरक्षनाथ ने सभी के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया : प्रो. शिवाजी

अमर उजाला कॉम्पैक्ट
गोरखपुर, शुक्रवार, 29 अक्टूबर, 2010

गोरखनाथ मंदिर में नाथ पंथ एवं भक्ति आंदोलन राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन अवसर पर मंचासीन मुख्य अतिथि संत कौशल जी महाराज साथ में महंत अवेद्यनाथ, योगी आदित्यनाथ, प्रो. शिवाजी सिंह, बालकृष्ण सर्राफ, सीताराम जायसवाल और अन्य।

हसबा, खेलबा करिबा ध्यान...

कौशल किशोर महाराज बोले अहंकार मरेगा तभी ओंकार मिलेगा

गोरखपुर। मोक्ष, निर्वाण, भक्ति प्राप्त करने का एकमात्र तरीका योग है। भक्ति मार्ग के सभी आचार्यों की साधना के मूल में गुरु गोरक्षनाथ का सिद्धांत है। अगर योग रूपी भवन से गुरु गोरक्षनाथ के सिद्धांत हटा दिया जाए तो यह भवन भरभराकर ढह जाएगा।

- जंगल धूसड़ में तीन दिवसीय राष्ट्रीय सेमिनार प्रारंभ

बृहस्पतिवार को यह विचार श्रीराम कथा मर्मज्ञ संत विजय कौशल महाराज ने गोरखनाथ मंदिर में 'नाथ पंथ और भक्ति आंदोलन' विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन में व्यक्त किए। महाराणा प्रताप कालेज जंगल धूसड़ के तत्वाधान में आयोजित तीन दिवसीय संगोष्ठी में उन्होंने 'हसबा, खेलबा करिबा ध्यान...' का मूल मंत्र दिया। कहा हम वर्तमान में जिए। अहंकार के मरने पर ही ओंकार मिलेगा।

अध्यक्षता कर रहे गोरक्षपीठाधीश्वर महंत अवेद्यनाथ ने गोरक्षनाथ के ज्ञान से सभी ने प्रेरणा प्राप्त की लेकिन उनके जैसा कोई नहीं हुआ। अध्यक्षता कर रहे गोरक्षपीठ उत्तराधिकारी, सांसद योगी आदित्यनाथ ने नाथ परंपरा का विस्तृत व्याख्यान किया। प्रो. शिवाजी सिंह ने भी विचार रखा। पूर्व प्राचार्य कन्हैया सिंह ने धन्यवाद ज्ञापित किया। प्रो. सदानंद गुप्त, प्राचार्य डा. प्रदीप राव, सीताराम, बालकृष्ण सर्राफ, कामेश्वर उपस्थित थे।

समाज के लिए घातक चाइना बुद्धिज्म : आशीष

उद्घाटन सत्र में दिव्य प्रेम सेवा मिशन के अध्यक्ष आशीष ने कहा इस समय नालंदा विवि का विदेशी धन के सहयोग से पुनरोद्धार किया जा रहा है। यहां चाइना का बुद्धिज्म पढ़ाने की तैयारी की जा रही है। जो आगे देश को तोड़ने का काम करेगी।

सूफी, भक्ति आंदोलन का विकृत रुप : योगी

सदर सांसद योगी आदित्यनाथ ने कहा कि सूफी भक्ति आंदोलन का विकृत रूप था। जिसने राम और कृष्ण मंदिर तोड़ने और धर्मांतरण को बढ़ावा देने का काम किया। हालांकि आगे चलकर इन्हें भी नाथ परंपरा ने प्रभावित किया और विकृत रूप को बदला।

गोरक्षनाथ के सिद्धांतों व दर्शन पर टिका है भक्तिमार्ग

संगोष्ठी में मंचासीन बाएं से आशीषजी, योगी आदित्यनाथ, संत विजय कौशल, महंत अवेद्यनाथ, प्रो. शिवाजी सिंह व सीताराम जायसवाल। जागरण

महानगर संवाददाता, गोरखपुर : श्रीरामकथा मर्मज्ञ एवं पूज्य संत विजय कौशल जी महाराज ने कहा कि भक्ति मार्ग के जितने भी आचार्य हैं, सबकी साधना के मूल में गुरु गोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित साधना पद्धतियां हैं। भक्तिमार्गी दर्शन का सम्पूर्ण भवन गुरु गोरक्षनाथ द्वारा प्रस्तुत सिद्धांतों और दर्शन पर टिका है। यदि भक्ति से गोरक्षनाथ के सूत्र निकाल दिये जायं तो भक्ति का भवन भरभरा कर गिर जाएगा। गोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित साधना पद्धतियों से हीन भक्ति पाखण्डपूर्ण, आडम्बरयुक्त हो जाती है। भारत का धर्म और साहित्य गुरु गोरक्षनाथ के बिना अधूरा है।

संत प्रवर गुरुवार को महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़ द्वारा 'नाथ पंथ और भक्ति आंदोलन' विषयक त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन समारोह को बतौर मुख्य अतिथि सम्बोधित कर रहे थे। गोरखनाथ मंदिर सभागार में उन्होंने कहा कि श्री गोरखनाथ की साधना पद्धति जीवन में सहजता, विनम्रता, निरंकारिता का पाठ पढ़ाती है। भक्ति के लिए यह अपरिहार्य गुण है। गोरक्षपीठाधीश्वर महंत अवेद्यनाथ महाराज ने कहा कि नाथ पंथ की प्राचीनता अविवेच्य है। नाथ पंथ की सनातन जीवन धारा आदि काल से प्रवाहित होती आ रही है। भगवान शिव को भक्ति का ही अवतार माना गया और गुरु गोरक्षनाथ भगवान शिवावतार हैं।

संगोष्ठी के मुख्य वक्ता प्रो. शिवाजी सिंह ने कहा कि जिस प्रकार आदि शंकराचार्य के बिना ब्रह्म जिज्ञासा अधूरी है वैसे ही गुरु गोरक्षनाथ के बिना योग और मनुष्य के गुहमतम रहस्यवादी अस्तित्व अर्थात कुण्डलिनी शक्ति का ज्ञान अधूरा है। वस्तुतः गोरक्षनाथ भक्ति और योग साधना के प्रस्थान विन्दु हैं। अध्यक्षीय उद्बोधन में गोरक्षपीठ के उत्तराधिकारी योगी आदित्यनाथ ने कहा कि भारतीय धर्म-संस्कृति व साधना पद्धतियों में नाथ पंथ और इसके प्रवर्तक महायोगी गुरु गोरक्षनाथ का अन्य नाथ सिद्धों में प्रमुख स्थान है। गोरखनाथ ने योग साधना के सैद्धांतिक पक्ष को व्यावहारिक स्वरूप देकर जन सामान्य तक पहुंचाया। विशिष्ट अतिथि दिव्य प्रेम सेवा मिशन हरिद्वार के अध्यक्ष आशीष जी ने कहा कि भारत अपनी सांस्कृतिक विरासत की रक्षा के लिए सदैव नाथ पंथ का ऋणी रहेगा। संचालन डा. भगवान सिंह ने किया। अतिथियों का माल्यार्पण प्रो. सदानन्द प्रसाद गुप्त, प्राचार्य डा. प्रदीप राव, डा. विजय चौधरी, डा. अविनाश प्रताप सिंह, बालकृष्ण सराफ, सीताराम जायसवाल, डा. धर्मेन्द्र सिंह, कामेश्वर सिंह तथा आभार डा. कन्हैया सिंह ने जताया।

नाथ पंथ और भक्ति आंदोलन विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी

- अविवेच्य है नाथ पंथ की प्राचीनता : महंत अवेद्यनाथ
- गोरक्षनाथ भक्ति और योग साधना के प्रस्थान विन्दु : प्रो. शिवाजी
- योग साधना के सैद्धांतिक पक्ष को जन सामान्य तक पहुंचाया : योगी

स्वामी चिन्मयानन्द होंगे समापन समारोह के मुख्य अतिथि

गोरखपुर : संगोष्ठी में शुक्रवार को प्रातः 9.30 बजे पहला तकनीकी सत्र प्रारम्भ होगा। 30 अक्टूबर को प्रातः 9 बजे से ग्यारह तकनीकी सत्र होगा और पूर्वाह्न 11 बजे समापन समारोह में पूर्व गृहमंत्री स्वामी चिन्मयानन्द बतौर मुख्य अतिथि मौजूद रहेंगे। अध्यक्षता सदर सांसद योगी आदित्यनाथ करेंगे।

स्वतंत्र चेतना
गोरखपुर, शुक्रवार, 29 अक्टूबर, 2010

भक्ति मार्ग का दर्शन गोरक्षनाथ के सिद्धान्तों से: विजय कौशल

▶ महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय में 'नाथ पंथ और भक्ति आंदोलन' पर राष्ट्रीय संगोष्ठी

▶ नाथ पंथ की प्राचीनता अविवेच्य: मंहत अवेद्यनाथ

▶ गुरू गोरक्षनाथ के बिना कुण्डलिनी शांति का रहस्य अधूरा: प्रो. शिवाजी

▶ नाथ सिद्धों में गुरूगोरक्षनाथ का प्रमुख स्थान: योगी

संगोष्ठी में मंचासीन सांसद योगी आदित्यनाथ, संत विजय कौशल एवं गोरक्षपीठाधीश्वर महंत अवेद्यनाथ।

गोरखपुर। श्रीराम कथा मर्मज्ञ संत विजय कौशल ने कहा कि भक्ति मार्ग के जितने भी आचार्य हैं, सबकी साधना के मूल में गुरू गोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित साधना पद्धतियां हैं। भक्ति मार्गी दर्शन का सम्पूर्ण भवन गुरु गोरक्षनाथ द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्तों और दर्शन पर टिका है। यदि भक्ति से गोरक्षनाथ के सूत्र निकाल दिया जाय तो भक्ति का भवन भरभरा कर गिर जायेगा। गोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित साधना पद्धतियो से हीन भक्ति पाखण्डपूर्ण, आडम्बरयुक्त हो जाती है। भारत का धर्म और साहित्य गुरु श्री गोरक्षनाथ के बिना अधूरा है।

कौशल महाराज महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जंगल धूसड़ द्वारा नाथ पंथ और भक्ति आन्दोलन विषय पर आयोजित त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन समारोह में बतौर मुख्य अतिथि बोल रहे थे। कौशल ने कहा कि गुरु श्री गोरखनाथ की साधना पद्धति जीवन में सफलता, विनम्रता, निरंकारिता का पाठ पढ़ाती है। भक्ति के लिए यह अपरिहार्य गुण है। भगवान शिव को भक्ति का ही अवतार माना गया तथा गुरु श्री गोरक्षनाथ भगवान शिवावतार है।

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ ने कहा कि नाथ पंथ की प्राचीनता अविवेच्य है। नाथपंथ की सनातन जीवन धारा आदि काल से प्रवाहित होती आ रही है। 'नाथ' शब्द का प्रयोग धार्मिक-सांस्कृतिक सौंदर्य केन्द्र की महान यौगिक विभूति थे। ऋग्वेद में नाथ शब्द का प्रयोग सृष्टि कर्ता, रक्षक तथा सृष्टि के निमित्त रूप में किया गया है। अथर्ववेद में नाथ सृष्टि कर्ता, पालक तथा सृष्टि के निमित्त रूप में किया गया है। नाथ मार्ग योग प्रधान मार्ग है। नाथ योगी सर्व निरपेक्ष अलक्ष्य सत्ता को ही अपने अन्तस में लक्षित करता था। संकीर्ण साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को त्यागकर नाथ योगी शिव और विष्णु तथा हर एवं हरि में कोई भेद नहीं मानते थे। वैसे तो नाथ पंथ की परम्परागत मान्यता के अनुसार महायोगी गुरु गोरक्षनाथ सर्वकालिक एवं अयोनिज है। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से महायोगी गुरु गोरखनाथ का आविर्भाव काल सातवीं से तेरहवीं शताब्दी के बीच ठहरता है। भारत में शंकराचार्य के बाद महायोगी गुरू गोरखनाथ जैसा प्रभावशाली और युग प्रवर्तक व्यक्ति दूसरा नहीं हुआ। गोरखनाथ जी के आविर्भाव काल में वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, शैव मत, पाशुपत, कापालिक, कश्मीरी शैव, वीर शैव एवं रसेश्वर मत आदि अनेक धर्म एवं मत थे। शाक्तमत का एक साधन पंथ वाममार्ग था। इन सभी-पंथो रसेश्वर मत आदि अनेक धर्म एवं मत थे। शाक्तमत का एक साधन पंथ वाममार्ग था। इन सभी पंथों या मतों में कालान्तर में काफी विकृतियां आ गई थी। वैष्णव धर्म का विकास 'भक्ति मार्ग' के रूप में हुआ। परन्तु हमारे इस भक्ति मार्ग को तत्कालीन रूढ़िवादी धार्मिक मान्यताओं, राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के कारण दिशा और दशा दोनों ही विकृत हो गई थी।

उद्घाटन समारोह के मुख्य वक्ता प्रो. शिवाजी सिंह ने कहा कि जिस प्रकार आदिशंकराचार्य के बिना ब्रहम जिज्ञासा अधूरी है वैसे ही गुरू गोरक्षनाथ के बिना योग और मनुष्य के गुहमतम रहस्यवादी अस्तित्व अर्थात कुण्डलिनी शक्ति का ज्ञान अधूरा है। गोरक्षनाथ द्वारा सुविचारित, सुक्षम्पादित यौगिक क्रिया के द्वारा हर प्राणी में सुप्तावस्था में विद्यमान कुण्डली को जागृत कर ब्रहमरन्ध्र तक पहुंचाकर मानव शिव से एकाकार हो सकता है। गोरक्षनाथ ने कहा था कि ब्रह्मज्ञानी असाध्य की साधना करता है।

उदघाटन समारोह की अध्यक्षता करते हुए गोरक्षपीठ के उत्तराधिकारी योगी आदित्यनाथ ने कहा कि भारतीय धर्म -संस्कृति साधना पद्धतियो में नाथ पंथ और इसे प्रवर्तक महायोगी गुरू गोरक्षनाथ जी अन्य नाथ सिद्धों का प्रमुख स्थान है। महायोगी गोरखनाथ ने योग -साधना के सैद्धान्तिक पक्ष को व्यावहारिक रूप प्रदान कर जन सामान्य तक पहुंचाया। समग्र भारत ही नहीं, अपितु सीमावर्ती देशों को अपनी योग्य विभूति से तथा चरित्र, चिंतन एवं व्यवहार से बड़ी गहराई तक प्रभावित करने वाले अग्रगण्य महायोगी गोरक्षनाथ जी ही थे। सम्पूर्ण सन्त साहित्य के चिंतन, मनन से यह स्पष्ट होता है कि गोरखनाथ जी ने अपने सम्प्रदाय से ही नहीं, इतर सम्प्रदायों से भी आचार एवं संयम को लेकर लोहा लिया। तभी तो इन्द्रिय निग्रह तथा "यहु मन सकती, यहु मन सीव, यहु मन पंच तत्त का जीव। यहु मन लै जै उन्मन रहै, तीन लोक की बाता कहै।

विशिष्ट अतिथि दिव्य प्रेम सेवा मिशन हरिद्वार के अध्यक्ष आशीष ने कहा कि बारहवीं शताब्दी में जब तलवार की ताकत के साथ-साथ छदम फकीरों के कारण भारतीय धर्म और संस्कृति पर संकट के बादल मंडरा रहे थे, उस समय नाथ पंथ के रमते योगियों ने ही गांव-गांव में घूमकर भारतीय धर्म-संस्कृति की रक्षा की। भारत अपनी सांस्कृतिक विरासत की रक्षा के लिए सदैव नाथ पंथ का ऋणी रहेगा। राष्ट्रीय संगोष्ठी में समिति प्रो. सदानन्द प्रसाद गुप्त, संचालन डा. भगवान सिंह ने किया। माल्यार्पण प्राचार्य डा प्रदीप राव, डा. किरण चौधरी, डा. अविनाश प्रताप सिंह, बालकृष्ण सराफ, सीताराम जायसवाल, डा. धर्मेन्द्र सिंह, कामेश्वर तथा आभार डा. कल्पना सिंह, स्वागत गीत महाविद्यालय की छात्राओं द्वारा किया गया।

संगोष्ठी में आज

कल प्रातः साढ़े नौ बजे से पहला तकनिकी सत्र प्रारम्भ होगा। कुल चार तकनीकी सत्रों में लगभग दो दर्जन शोधपत्रों पर चर्चा होगी। 30 अक्टूबर को प्रातः नौ से ग्यारह तकनीकी सत्र होगा एवं ग्यारह बजे से समापन समारोह होगा। समापन समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में पूर्व गृह राज्यमंत्री स्वामी चिन्मयानन्द उपस्थित रहेंगे तथा अध्यक्षता सदर सांसद योगी आदित्यनाथ करेंगे।

अमर उजाला गोरखपुर | शनिवार | 30 अक्तूबर 2010

मतभेदों के बाद भी नाथ पंथ की ताकत स्वीकारी

नाथ पंथ और भक्ति आंदोलन विषय पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में रही गहमागहमी

जंगल धुसड़ स्थित महाराणा प्रताप कालेज में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी को सम्बोधित करते डा. उदय प्रताप सिंह व उपस्थित लोग।

गोरखपुर। महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़ में नाथ पंथ और भक्ति आंदोलन विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी का दूसरा दिन गहमागहमी भरा रहा। कुल छह तकनीकी सत्रों में पढ़े गये शोध पत्रों ने सदन का तापमान कई बार बढ़ाया। आलम यह रहा कि सत्र अध्यक्षों को उभरे मतभेदों को सामान्य करने के लिए मशक्कत करनी पड़ी। फिलहाल आम सहमति बनी रही कि महायोगी गुरु गोरक्षनाथ ने योग साधना के सैद्धांतिक पक्ष को व्यावहारिक रूप प्रदान कर जनसामान्य तक पहुंचाया। संगोष्ठी के दूसरे दिन 26 शोध पत्र पढ़े गए।

तकनीकी सत्रों में प्रो. बागीश शुक्ल, प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी, डा. उदय प्रताप सिंह, डा. कन्हैया सिंह, डा. कुंवर बहादुर कौशिक, डा. रणजीत सिंह, वासुदेवाचार्य, डा. चन्द्रमौलि त्रिपाठी व डा. विमलेश के शोधपत्र चर्चित रहे। इस दौरान कई मुद्दों पर नोंक-झोंक की भी स्थिति बनी। सभी वक्ताओं ने स्वीकार किया कि कबीर-तुलसी से लेकर मुहम्मद जायसी तक सभी संतों-साहित्यकारों ने नाथ पंथ की आध्यात्मिक ताकत को स्वीकार किया है। विदेशी विद्वानों ने भी नाथ पंथ पर कार्य करते हुए नाथ पंथ के राष्ट्रीय-सामाजिक प्रयासों को रेखांकित किया है।

निष्कर्ष निकला कि वैदिक साधना पद्धतियों के साथ समानान्तर रूप से प्रवाहित तांत्रिक साधना में सदाचार के घटते प्रभाव को गुरु गोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित साधना पद्धतियों ने रोका। इसका प्रभाव हिन्दी साहित्य के साथ मराठी, तेलगू, उड़िया, बंगाली, तमिल, कन्नड़, मलयालम, तिब्बती व चीनी साहित्य पर भी पड़ा। भारत वर्ष का कोई ऐसा कोना नहीं जहां नाथ पंथ के योगियों की धूनी न रमी हो। संगोष्ठी के संयोजक महाविद्यालय के प्राचार्य डा. प्रदीप राव ने कहा कि संगोष्ठी में विद्वानों द्वारा प्रतिपादित व प्रतिष्ठित मतों को नवंबर माह के अंत तक प्रकाशित कराया जाएगा। साथ ही नाथ पंथ पर निरंतर शोध तथा अध्ययन के लिए पीठ स्थापित करने की योजना भी बनायी जाएगी।

आज होगा समापन

राष्ट्रीय संगोष्ठी में शनिवार को प्रातः नौ बजे से 11 बजे तक तकनीकी सत्र होगा। 11 बजे से समापन समारोह होगा। समापन समारोह में पूर्व गृह राज्यमंत्री स्वामी चिन्मयानंद उपस्थित रहेंगे, जबकि अध्यक्षता सदर सांसद योगी आदित्यनाथ करेंगे।

अमर उजाला
शुक्रवार, 29 अक्टूबर 2010

राष्ट्रीय संगोष्ठी

गोरखनाथ मन्दिर में नाथ पंथ एवं भक्ति आन्दोलन पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन अवसर पर मंचासीन मुख्य अतिथि संत विजय कौशल। साथ में महंत अवेद्यनाथ, सदर सांसद योगी आदित्य नाथ, प्रो. शिवजी सिंह, बाल कृष्ण सर्राफ, सीताराम जायसवाल और अन्य।

शनिवार, 30 अक्तूबर 2010 लखनऊ

हिन्दुस्तान 16

शोध पत्रों में दिखे नाथ पंथ के विभिन्न आयाम

'नाथ पंथ और भक्ति आंदोलन' विषय पर संगोष्ठी में 26 शोध पत्र पढ़े गए

■ कार्यालय संवाददाता

गोरखपुर

महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़ में नाथ पंथ और भक्ति आंदोलन विषय पर चल रही तीन दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में शुक्रवार को छह तकनीकी सत्र में कुल 26 शोध पत्र पढ़े गए। इन शोध पत्रों में नाथ पंथ एवं भक्ति आंदोलन के विभिन्न स्वरूप दिखाई दिए। विद्वानों ने बताया कि महायोगी गोरखनाथ ने योग साधना के सैद्धांतिक पक्ष को व्यावहारिक रूप प्रदान किया जो आज भी आम जन के बीच लोकप्रिय हैं।

गोष्ठी में देशभर से आए कई विद्वानों ने नाथ पंथ एवं भक्ति आंदोलन पर चर्चा की। शोध पत्रों में जिन तथ्यों को उजागर किया गया उसे लेकर कई लोगों में असहमति और नोंक-झोक भी हुई। सभी विद्वानों की एकमत पर सहमति बनी कि भारत में इस्लामी आंधी को रोकने के लिए नाथ पंथ और उसके योगियों तथा उनके द्वारा प्रतिपादित भक्ति दर्शन और व्यवहार पर खड़े भक्तिमार्गी संतों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका रही। कबीर -तुलसी से लेकर मुहम्मद जायसी तक सभी संतों एवं साहित्यकारों ने नाथ पंथ की आध्यात्मिक ताकत को स्वीकार किया है। विदेशी विद्वानों ने भी नाथ पंथ पर कार्य किया है। इसके अलावा वैदिक साधना पद्धतियों के साथ समानान्तर रूप से प्रवाहित तांत्रिक साधना में सदाचार के घटते प्रभाव को गुरु गोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित साधना पद्धतियों ने रोका।

भक्ति मार्ग का प्रस्थान बिंदु प्रतिष्ठित किया और संत साहित्य के नए आयाम प्रस्तुत किए। इस अवसर पर छह तकनीकी सत्रों में प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी, डा. उदय प्रताप सिंह, डा. कुंवर बहादुर कौशिक, डा. रणजीत सिंह, वासुदेवचार्य, डा. विमलेश, डा. कन्हैया सिंह, डा. चंद्रमौलि त्रिपाठी, डा. विमलेश के शोध पत्र चर्चित रहे। गोष्ठी के संयोजक प्राचार्य डा. प्रदीव राव ने कहा कि नाथ पंथ पर निरंतर शोध तथा अध्ययन हेतु पीठ स्थापित करने की योजना बनेगी और नवम्बर माह के अंत तक विद्वानों द्वारा प्रतिष्ठित मतों को प्रकाशित कराया जाएगा।

■ महाराणा प्रताप पीजी कॉलेज,जंगल धूसड़ में वक्ताओं ने नाथ पंथ पर विचार रखे

इन्होंने पढ़ा शोध पत्र

- डॉ. विमलेश मिश्र- भक्ति आंदोलन और सामाजिक-धार्मिक सुधार
- प्रो. वागीश शुक्ल- गुरु गोरक्षनाथ एवं काश्मीर क्रमदर्शन
- डॉ. कुंवर बहादुर कौशिक- नाथ पंथ का उद्भव
- डॉ. बृजभूषण यादव- नाथ पंथ का राष्ट्रीय जीवन पर प्रभाव
- डॉ. हरिकेश प्रसाद- भक्त संतों का लोकमंगल विधायन
- वीणा सिंह- नाथ परंपरा एवं गोरखनाथ, राखी रावत- दक्षिण भारत में नाथपंथ का प्रसार
- डॉ. बलवान सिंह- गोरखनाथ उपदिष्ट अमनस्क योग
- कृतिका शाही- भक्ति आंदोलन के विकास में दीवानी मुगलानी ताज
- रत्ना सिंह- नाथ परंपरा और गुरु श्री गोरखनाथ
- डॉ. कन्हैया सिंह- स्वाधीन चेतना के विकास में संतों की भूमिका एवं गोरखनाथ की समसामयिक साधना पद्धतियाँ
- प्रो. शत्रुघ्न प्रसाद- हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में नाथ पंथ
- राम कुमार- गोरखनाथ के समय की धार्मिक व आध्यात्मिक परिस्थितियाँ
- स्वेजा त्रिपाठी- गोरखनाथ के समय की धार्मिक परिस्थितियाँ
- इंद्रजीत मौर्य- नाथ पंथ के प्रमुख सिद्ध पुरुष
- हरेन्द्र कुमार- नाथ पंथ के प्रथम आचार्य मत्स्येंद्र नाथ
- डॉ. अजय कुमार शुक्ल- गोरखनाथ उपदिष्ट सिद्ध मार्ग और उसकी विशेषताएँ
- डॉ. नरसिंह गणेश जोशी- पथराज के पथद्रष्टा और भक्ति आंदोलन के प्रवर्तक
- डॉ. लोकेश प्रजापति- परवर्ती साधना पद्धतिया और उन पर सिद्ध मार्ग का प्रभाव
- डॉ. आरती सिंह- भक्ति आंदोलन पर सिद्ध मार्ग का प्रभाव
- डॉ. प्रकाश प्रियदर्शी- भक्ति आंदोलन और पुनर्जागरण
- डॉ. वासुदेवाचार्य- भक्ति आंदोलन का विकास क्रम

डॉ. चंद्रमौलि त्रिपाठी- नाथ पंथ में दीक्षा

स्वतंत्र चेतना
www.swatantrachetna.com

गोरखपुर चेतना-महानगर

राष्ट्रीय संगोष्ठी को सम्बोधित करते प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी साथ में डा. उदय प्रताप सिंह, डा. कैन्हया सिंह, डा. कुवंर बहादुर कौशिक व अन्य।

दैनिक जागरण

गोरखपुर, 31 अक्टूबर, 2010

साधना पद्धतियों का क्षितिज है नाथ पंथ

नाथ पंथ के राष्ट्रीय व आध्यात्मिक योगदान पर शोध की आवश्यकता : योगी

'नाथ पंथ एवं भक्ति आंदोलन' विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी का समापन

संगोष्ठी में मंचासीन स्वामी चिन्मयानन्द, योगी आदित्यनाथ व अन्य। जागरण

एक प्रतिनिधि, गोरखपुर : कुरीतियों, कुप्रभावों एवं पंचभकारों से तप्त भारतीय समाज को जब एक सामाजिक क्रांतिकर्ता योगी की आवश्यकता थी तो भगवान शिव स्वयं गुरु गोरखनाथ के रूप में अवतरित हुए। देश के सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विकास की दिशा में नाथ पंथ का योगदान सर्वोपरि रहा। भारत अध्यात्म की भूमि है और एक प्रकार से देखा जाए तो नाथ पंथ यहां की उपासना एवं साधना पद्धतियों का क्षितिज है।

उक्त विचार पूर्व केन्द्रीय गृह राज्य मंत्री स्वामी चिन्मयानंद ने व्यक्त किये। वह शनिवार को महाराणा प्रताप महाविद्यालय जंगल धूसड़ में त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के समापन समारोह को बतौर मुख्य अतिथि संबोधित कर रहे थे। 'नाथ सम्प्रदाय एवं भक्ति आंदोलन' पर प्रकाश डालते हुये उन्होंने कहा कि भक्ति की सभी परंपराओं का उदय असीम शक्तियों की खोज के लिए हुआ। भक्ति भारत की असीम शक्ति का सूचक है। महायोगी गोरखनाथ तथा नाथ संतों की साधना आज भी मनुष्य को सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, मानसिक, शारीरिक एवं सामाजिक रूप से समुन्नत एवं स्वस्थ बनाने में निरंतर क्रियाशील है। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुये गोरक्षपीठ के उत्तराधिकारी एवं सदर सांसद योगी आदित्यनाथ ने कहा कि नाथ योगी सर्व निरपेक्ष अलक्ष्य सत्ता को ही अपने अन्तस में लक्षित रखता है। संकीर्ण साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को त्याग कर योगी हर और हरि में कोई भेद नही मानते थे। योगी ने कहा कि भारत में शंकराचार्य के बाद महायोगी गुरु गोरखनाथ जैसा प्रभावशाली और युग प्रवर्तक महापुरुष दूसरा नहीं हुआ। योगी ने बताया कि नाथ पंथ के अनुयायियों की फेरहिस्त आज देश-दुनिया के कोने-कोने में है। उन्होंने राष्ट्र एवं धर्म के पुनरोत्थान में उल्लेखनीय योगदान देने वाले नाथ पंथ पर विशेष शोध कराए जाने की आवश्यकता पर बल दिया। इससे पूर्व महाविद्यालय के प्राचार्य एवं संगोष्ठी संयोजक डा. प्रदीप राव ने त्रिदिवसीय संगोष्ठी पर संक्षिप्त प्रकाश डाला। अतिथियों का स्वागत समिति के सचिव अवधेश सिंह ने पुष्प गुच्छ देकर किया। स्वामी चिन्मयानंद को योगी ने शिव-पार्वती का स्मृति चिह्न एवं उत्तरीय भेंट किया। इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में प्रो. वागीश शुक्ल एवं डा. मयाशंकर सिंह उपस्थित रहे। आयोजन समिति के सचिव प्रो. सदानंद प्रसाद गुप्त ने आभार ज्ञापन तथा संचालन डा. कन्हैया सिंह ने किया।